निराला की रचनाओं पर स्वामी विवेकानन्द प्र

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल्0 उपाधि
हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

निर्देशिका :-
डॉ० (श्रीमती) शैल पाण्डेय
रीडर, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधकर्त्ता :-
शिव कुमार मिश्र
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
2002
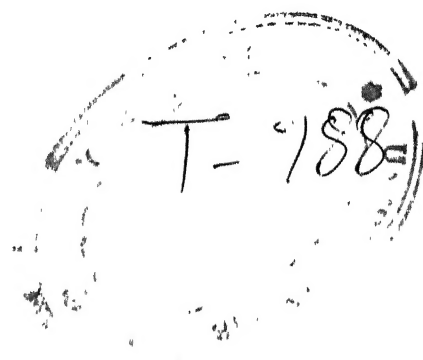
भूमिका

साहित्य समाज का दर्पण होता है । इसके माध्यम से सत्य, शिव और सुन्दर का बोध होता है । सत्य इसलिये कि इसके द्वारा सृजनात्मक भावबोध का प्रत्यक्षीकरण होता है । शिव इसलिए कि गतिशीलता के साथ ही साथ चित्तवृत्तियों का शोधन होता है । सुन्दर इसलिए कि विडम्बनाओं का संस्कार कर समाज के अभिराम स्वरूप को व्यक्त करता है । इस तरह साहित्य समाज की वास्तविक, कल्याणकारी और आनन्दमय प्रक्रिया का अवधारक है । साहित्य का सृजन करने वाला साहित्यिक क्रियाशीलता का प्रतिरूप होता है, जिसे रचनात्मकता का सुख और वेदना साथ- साथ सम्प्राप्त होता है। सुख का कारण अपनी सृजन जन्य परिलब्धि है तो वेदना का कारण यह है कि सृजन का चरम उद्देश्य तो फलीभूत नहीं हो पाया । हिन्दी साहित्य में निराला का साहित्य सृजन इसी का जीवन्त उदाहरण माना जा सकता है । वे सदैव प्रयासरत रहे कि उनका साहित्य सत्य, शिव और सुन्दर का बोधक हो, इसी के साथ ही साथ सृजन जन्य सुख और पीड़ा की अनुभूति भी उन्हें बराबर मिलती रही । निराला के प्रति मेरे असीम आकर्षण का मूल बिन्दु यही से प्रारम्भ होता है । 'राम की शक्तिपूजा', 'सरोज स्मृति' और ' कुकुरमुत्ता' के प्रारम्भिक परिचय ने मुझे अप्रतिम रूप से प्रभावित किया। इस प्रकार के विविधमुखी साहित्यकार निराला की रचनाधर्मिता का सम्पूर्ण अध्ययन करने की महती इच्छा अचेतन मन में जागृत हो चुकी थी। 'शोध विषय' के चयन के समय अचेतन मन की क्रियाशीलता ने जोर पकड़ा और बार-बार मेरे अन्तः करण में एक ही नाम उभर रहा था - सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'। मैंने इस बात का दृढ़ निश्चय किया कि निराला मेरे' शोध प्रबन्ध' के केन्द्र बिन्दु होंगे। मुझे निराला का व्यक्तित्व एक बहुमुखी कवि का ही दिखाई पड़ा था, स्नातकोत्तर के पाठ्यक्रम में उनके सम्पूर्ण साहित्यिक व्यक्तित्व का मैंने प्रथम बार साक्षात्कार किया तो आश्चर्य चकित रह गया । उनका गद्य भी कविता ही की तरह सजीव एवं प्राणवन्त लगा । निराला का सम्पूर्ण रचना संसार मेरा ध्येय बन गया।

भारत एवं विदेशों में अपनी साधुता, विद्वता, स्वदेश- भक्ति, मानवता के उत्थान एवं प्राच्य तथा पाश्चात्य के मध्य भ्रातृभाव के सार्वभौमिक सन्देश के उद्घोषक स्वामी विवेकानन्द

भारतीय इतिहास के उन अन्यतम महापुरुषों में पांक्तेय हैं, जिन्होंने देश के नवनिर्माण में योगदान दिया। भारतीय नवजागरण को अपने विराट व्यक्तित्व से आलोकित करने वाले विवेकानन्द ने भारतीय संस्कृति की व्यापकता से सम्पूर्ण विश्व को चमत्कृत कर दिया। स्वामी विवेकानन्द की ओजस्विता से सारा भारतवर्ष प्रभावित हुआ, मैं भी इसका अपवाद नहीं हूँ। मेरे लिए उनके द्वारा युवकों को किया गया आ`वाहन बहुत उत्प्रेरक दिखाई पड़ता था। विवेकानन्द का सत्य-ज्ञान प्राप्त संन्यासी स्वरूप और देश भक्त व समाज सुधारक का रूप इतना संश्लिष्ट हो गया है कि इस बात का निश्चय कर पाना मुश्किल था कि वे वास्तविक प्रतिनिधित्व किस क्षेत्र का करते हैं। मैं इसी संश्लिष्टता में भारतीय संस्कृति की विविधता को रूपायित करके देखता था।

मैंने जब 'विवेकानन्द संचयनी' का अध्ययन किया तो उनके व्यापक सन्देशों का वास्तविक अवबोध हुआ। इसी भावबोध में जब सम्पूर्ण निराला साहित्य का अवलोकन किया, तब मुझे उनके मध्य समानता के कुछ मूलभूत तत्वों का आभास हुआ। 'शोध-विषय' का चुनाव करते समय शोध निर्देशिका, श्रद्धेया डॉ० (श्रीमती) शैल पाण्डेय ने मेरी इस अभिरुचि को ध्यान में रखा। उन्हीं के माध्यम से ही मुझे सर्वप्रथम यह ज्ञात हुआ कि निराला के ऊपर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव बहुत गहरा है और इस बात को अब तक स्पष्ट और व्यापक तौर पर रेखांकित नहीं किया जा सका है। हिन्दी के अनेकानेक विद्वानों ने इस प्रभाव को स्वीकार किया है, पर इस ओर विस्तृत ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। 'निराला की रचनाओं पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव' शोध विषय प्राप्त होने पर मेरी प्रसन्नता की सीमा न रही।

मैंने ' निराला की रचनाओं पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव' विषय को मोटे तौर पर पाँच अध्यायों में विभाजित किया है। प्रथम अध्याय के अन्तर्गत ' निराला का जीवन और साहित्य' विवेचित किया गया है। निराला के जीवन को समझे बिना उनकी रचनाओं का सम्यक मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। मूल्यांकन के लिए मैंने जीवन की विशिष्ट घटनाओं को ही ध्यान में रखा है , इसीलिए 'जीवनी का स्वरूप' कुछ संक्षिप्त भी हो गया है। मैंने जीवन के परिचय लिए निराला के सुयोग्य जीवनीकार डॉ० रामविलास शर्मा के ग्रन्थ' निराला की साहित्य साधना' को आधार बनाया है। प्रथम अध्याय के दूसरे भाग में निराला की रचनाओं का परिचय दिया गया है,

जिसके आधार पर निराला के साहित्य की रूपरेखा बनाने का प्रयास किया गया है । उन्होंने काव्य के साथ-साथ गद्य के क्षेत्र में भी अपनी रचनाधर्मिता का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया । पद्य और गद्य दोनों भागों का साहित्यिक धरातल और संक्षेप में उनकी विवेचना भी की गयी है ।

निराला के जीवन की तरह उनका साहित्य भी विविधिमुखी और संश्लिष्ट है । उनका काव्य सृजन सागर की तरह विशाल और बहुमुखी है, किन्तु संकलन की दृष्टि से क्रमबद्धता का अभाव है । इसी अभाव को हिन्दी के प्रख्यात विद्वान नन्दकिशोर नवल ने ' निराला रचनावली' का सम्पादन करके पूर्ण कर दिया है । 'रचनावली' के माध्यम से निराला का साहित्य अधिक सजीव, सचेतन और प्राणवंत हो गया है । मैंने' निराला रचनावली' को ही आधार-ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया है।

निराला का गद्य साहित्य सैद्धान्तिक स्तर पर बहुत व्यापक आधार ग्रहण कर लेता हैं । इसीलिए उसके वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में मतैक्य का अभाव है । इसका उद्‌घाटन कथा-साहित्य से होता है । निराला के उपन्यासों में 'कुल्लीभाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' का स्वरूप संस्मरणात्मक एवं रेखाचित्रात्मक हो गया है ; इसलिए कुछ विद्वान इन्हें उपन्यास मानने को तैयार नहीं है, जबकि कुछ विद्वान इन्हें यथार्थवादी उपन्यास के तौर पर मान्यता प्रदान करते हैं । 'निराला-रचनावली' में भी इन्हें उपन्यास ही स्वीकार किया गया है और मैंने भी इन्हें उपन्यास के तौर पर ही देखा है । निराला की कई कहानियों में भी वास्तविक घटनाओं का समावेश हो गया है, जबकि लेखक इन्हें कहानियों के ही तौर पर देखा है ; अतः इन्हें कहानी ही मानना चाहिए । निराला की आलोचना और उनके निबन्धों के मध्य बहुत ही सूक्ष्म विभाजक रेखा है, जिसके आधार पर 'निराला- रचनावलीकार' ने इन्हें संकलित किया है । इस सम्बन्ध में मैंने उसे प्रामाणिक स्रोत के रूप में ग्रहण किया है । निराला ने सम्पादक के तौर पर भी साहित्य-सेवा का कार्य किया ; इस भूमिका से सम्बन्धित उनकी सम्पादकीय टिप्पणियों को भी निराला रचनावली के भाग-५ और ६ में समाहित कर लिया गया है ; अतएव पृथक रूप से उस पर विचार नहीं किया गया हैं । निराला के बाल साहित्य , पुराकथाओं और पत्रों के आधार पर सुसपष्ट विवेचना सम्भव नहीं है, अतएव इस ओर ध्यान नहीं दिया गया है ।

शोध - प्रबन्ध के दूसरे अध्याय के अन्तर्गत स्वामी विवेकानन्द का जीवन परिचय और उनकी विचारधारा की सम्यक विवेचना की गई है । विचारधारा का आधार- ग्रन्थ अद्वैत आश्रम, मायावती द्वारा प्रकाशित ' विवेकानन्द साहित्य' है, जो दस भागों मे संकलित किया गया है । मैंने स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा को मोटे तौर पर चार भागों में विभक्त करके देखा है । धर्म और दर्शन को 'आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारधारा' में रखा है । ' मानवतावाद एवं विश्वबोध' सम्बन्धी भाग को दूसरीऔर विवेकानन्द के 'देशप्रेम और राष्ट्रीयता' सम्बन्धी विचारों को तीसरी धारा के रूप में रखा है । इसी भाग में राजनीतिक विचारों को भी समाहित किया गया है, क्योंकि वे राष्ट्रीयता से अलग नहीं हैं । चौथे भाग के रूप में ' सामाजिक विचारधारा' रखी गई है, जिसमें आर्थिक विचारों को एकान्वित कर दिया है, क्योंकि विवेकानन्द के सन्देशों में भी उनके मध्य स्पष्ट ऐक्य दिखाई पड़ता है । वैसे विवेकानन्द की विचार धारा सूक्ष्मतः एक ही प्रवाह को लेकर प्रवाहित होती है, किन्तु मुझे अध्ययन की सुविधा के लिए उपर्युक्त विभाजन संगत एवं शक्य लगा ।

शोध प्रबन्ध का तीसरा अध्याय 'निराला पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव' है । इसके अन्तर्गत उन तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है, जिसके आधार पर निराला के ऊपर विवेकानन्द के प्रत्यक्ष प्रभाव की अवधारणा का विकास होता है । विवेकानन्द की विचारधारा के प्रतिनिधि के रूप में स्वामी प्रेमानन्द, स्वामी सारादानन्द, स्वामी माधवानन्द,स्वामी अखण्डानन्द और श्रीरामकृष्ण मिशन से निराला का प्रत्यक्ष सम्बन्ध था और उनके साहित्य - सृजन में इन सबको आधारभूत प्रेरक का स्थान प्राप्त है । इसलिए इस अवधारणाको अलग अध्याय में स्थान दिया गया है ।

मेरे शोध प्रबन्ध का चौथा अध्याय ' निराला की रचनाओं पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव : काव्य साहित्य' है । इसमें निराला की कविताओं पर स्वामी विवेकानन्द के प्रभाव का मूल्यांकन किया गया है । जिसे क्रमशः विवेकानन्द की विचारधाराओं के माध्यम से विवेचित किया गया है ।

'निराला की रचनाओं पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभावः गद्य साहित्य' नामक पाँचवें अध्याय में क्रमशः उपन्यास, कहानी, आलोचना और निबन्धों पर विवेकानन्द की विचारधारा का

प्रभाव दिखाया गया है ; जो विचारधारा के विभाजित शीर्षकों के अनुसार रखा गया है ।
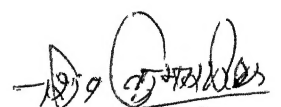
आभार ज्ञापन करने के क्रम में सर्वप्रथम मैं अपने शोध निर्देशिका डॉ०(श्रीमती) शैल पाण्डेय के प्रति शतशः आभार प्रकट करता हूँ ; जिनकी अमीस अनुकम्पा से ही यह गम्भीर शोध कार्य सम्पन्न हो सका । मेरे प्रति उनका भाव शोध निर्देशिका के साथ -साथ अभिभावःकत्व के सन्दर्भ से जुड़ा हुआ है । शोध कार्य के हर सोपान पर उनका सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ । मातृतुल्य स्नेहिल छत्रछाया में उन्हीं की सजग उत्प्रेरणा के परिणामस्वरूप ही यह शोध कार्य क्रिया रूप में फलीभूत हो पाया । अस्तु मैं उन्हें बार-बार नमन करता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी उन्हीं की सकारात्मक प्रेरणा मेरा पथ- प्रदर्शन करती रहेंगी ।

मैं '' हिन्दी साहित्य सम्मेलन, संग्रहालय' के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ । सम्मेलन की संग्रहाध्यक्षा श्रीमती साधना चतुर्वेदी ने तत्परता के साथ पुस्तकों की उपलब्धता को सुनिश्चित कराया, इसके लिए वे साधुवाद की पात्र हैं । 'श्रीरामकृष्ण मिशन, पुस्तकालय' के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ ; जहाँ से विवेकानन्द से सम्बधित व्यापक अध्ययन सामग्री प्राप्त हो सकी ।

मैं उन समीक्षकों, लेखकों, प्रकाशकों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिनकी पुस्तकों से प्रत्यक्ष या परोक्ष तौर पर शोध कार्य में किसी भी तरह का सहयोग प्राप्त हुआ ।

अन्त में विनयपूर्वक निराला के रचना- संसार का यह अध्ययन उनके विराट साहित्य के सत्य अन्वेषण का एक पक्ष मात्र है । इस अध्ययन को विद्वत समाज स्वीकार करेगा तो मैं इसे अपना सौभाग्य समझूँगा ।

दिनांकः३०-१०-२००२

शिव कुमार मिश्र

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

निराला
जीवन और साहित्य

''निराला का जीवन''

हिन्दी साहित्य के अद्वितीय रत्न और सरस्वती के मानस पुत्र निराला का बहुमुखी व्यक्तित्व विशाल सागर के सदृश है; जिसमें साहित्य की विविध विधाओं रूपी नदियाँ प्रवाहित होती हैं । इनका जीवन - स्रोत 'बैसवाड़े' की जीवटता एवं 'महिषादल' की सरसता के परस्पर धूपछाँही समन्वय से निःसृत हो रहा था, जिससे उनकी जीवन सरिता क्रमशःविस्तारित हुई और साहित्य प्रेमियों के आकर्षण का बिन्दु बनी ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म बसन्त पंचमी के दिन हुआ था । समय के विषय में विद्वानों में मतैक्य का अभाव है । कुछ विद्वान इनका जन्म १८९६ ई०[१] मानते हैं, जब कि कुछ विद्वान १८९७ ई० ।[२] रामविलास शर्मा का इस बारे में विचार है - 'माघ शुक्ल ११, संवत् १९५५, तदनुसार २१ फरवरी १८९९ को रामसहाय तेवारी के घर पुत्र जन्म हुआ । उस दिन मंगल था ।[३] इनका मूल निवास स्थान 'बैसवाड़ा प्रदेश का गढ़ाकोला गाँव' था । इनके पिता नौकरी की खोज में कलकत्ता आये और पुलिस में भर्ती हो गये; जहाँ से उन्हें अपनी योग्यता के कारण महिषादल में राजा ईश्वरी प्रसाद गर्ग के यहाँ जमादार बना दिया गया । चालीस वर्ष की उम्र में राम सहाय तेवारी को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई थी । यह सुख स्थायी न रह सका और निराला ढ़ाई वर्ष की उम्र में ही मातृ-स्नेह-छाया से पूर्णतः वंचित हो गये; इस स्नेह - वंचना ने निराला के बाल-मन को एक स्थायी अपूर्णता के अनुभव से जोड़ दिया । फलतः वे स्वभाव से ही नट-खट, जिद्दी और चंचल हो गये । उनका प्रारम्भिक नाम सुर्ज कुमार तेवारी था । बचपन का अधिकांश भाग महिषादल में ही व्यतीत हुआ, यद्यपि बीच-बीच में पैतृक गाँव गढ़ाकोला में भी आना होता रहता था । निराला प्रारम्भ से ही विद्रोही प्रकृति के थे । आठ वर्ष की अवस्था में जनेऊ[४] होने के समय वे सोचते थे कि आखिर जनेऊ पहनने से ऐसा क्या हो जायेगा कि मैं सब का छूआ खा न सकूँगा, इसी विद्रोही प्रवृत्ति के कारण निराला ने अपने पिता से बार-बार मार खाने पर भी अपने सिद्धान्तों से समझौता

---

१. महाप्राण निराला - गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृ० २३
२. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास - १०, सं० डा० नगेन्द्र पृ० १६२
३. निराला की साहित्य साधना - १, रामविलास शर्मा, पृ० १४
४. वही, पृ० १६

नहीं किया ।

निराला की प्रारम्भिक शिक्षा महिषादल में हुई । '१३ सितम्बर १९०७ को महिषादल स्कूल की कक्षा - ८, सेक्शन - बी में सुर्ज कुमार का नाम लिखा दिया गया । उम्र दो साल बढ़ा कर लिखाई ।'[१] उनके जन्म वर्ष के विषय में विवाद का कदाचित यही कारण है । निराला को संस्कारित कर सुधारने के उद्देश्य से पिताजी ने गुरु को बुलाकर उन्हें 'मंत्र' भी दिलवा दिया; फिर भी निराला को 'कोर्स की किताबें अच्छी न लगती, पर इन्द्रजाल की पोथी पढ़ कर मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण के बारे में, वह बहुत कुछ जान पाये थे ।'[२] इसके वैयक्तिक प्रयोग के बारे में 'देवर का इन्द्रजाल' कहानी उल्लेखनीय है ।

पिता भी निराला को सही राह पर लाने को कटिबद्ध थे; अतएव 'बारह वर्ष की उम्र में ग्यारह वर्ष की कन्या'[३] मनोहरा देवी के साथ इनका विवाह तय कर दिया । मनोहरा के पिता रामदयाल द्विवेदी डलमऊ के निवासी थे । गौना में मात्र चार दिन रहने के बाद पत्नी वापस मायके चली गयीं; जिन्हें फिर से लिवा लाने के लिए निराला को डलमऊ जाना पड़ा । वहीं स्टेशन पर ही सर्वप्रथम इक्का चलाने वाले 'कुल्ली भाट' से मुलाकात हुई । ससुराल वालों के ऐतराज के बाद भी निराला उनके साथ टहला करते थे । ससुराल में ही मनोहरा देवी ने 'श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भव भय दारुणम्' सस्वर संगीत के साथ गायन किया । ''मनोहरा देवी के कंठ से तुलसीदास का यह छन्द सुनकर सुर्ज कुमार के न जाने कौन से सोते संस्कार जाग उठे । साहित्य इतना सुन्दर है, संगीत इतना आकर्षक है, उनकी आँखों में जैसे नया संसार देखा, कानों ने ऐसा संगीत सुना, जो मानो इस पृथ्वी पर दूर किसी लोक से आता हो ।'[४] इस तरह साहित्य के प्रति निराला के अनुराग का उत्स उनकी पत्नी हैं, जिनके स्नेहिल सम्बन्ध से १९१४ में पुत्र रामकृष्ण और १९१७ में पुत्री सरोज उत्पन्न हुई ।

पिता के जीवनकाल में निराला ने कर्तव्यों के साथ उचित न्याय नहीं किया

---

१. निराला की साहित्य साधना - १, पृ० १८
२. वही, पृ० २०
३. वही, पृ० २१
४. वही, पृ० २८

किताबी शिक्षा के अपेक्षा फुटबाल आदि खेलों में उनका मन अधिक लगता था । वे सोचते थे कि 'मैं कवि हो चला था । फलतः पढ़ने की आवश्यकता न थी । प्रकृति की शोभा देखता था । .... गणित की नीरस कापी पद्माकर के चुहचुहाते कवित्तों से मैंने सरस कर दिया है, '[१] इसके मूल में उनका यह विचार था, 'किसी नें निराला से कह दिया कि प्रतिभाशाली व्यक्ति कभी परीक्षाओं के चक्कर में नहीं पड़ते, स्वयं रवीन्द्र नाथ नाइन्थ पास हैं कि निराला को पड़ी निधि मिली । उन्होंने सोचा - मुझे रवीन्द्र से कम थोड़े न होना है,'[२] दसवें कक्षा के एन्ट्रेंस परीक्षा में सफल न होने के कारण पिताजी ने आवारा समझ कर उन्हे घर से निकाल भी दिया ।[३] पुत्री सरोज के जन्म के वर्ष ही १९१७ में पिता का देहावसान हो गया; जो सुदृढ़ आधार इनके लिए था, वह हट गया, अब यथार्थ के धरातल पर नवीन उत्तरदायित्व उनके सामने अवस्थित था । पिता के स्थान पर महिषादल के राजा ने निराला को अपने यहाँ काम पर रख लिया । वही पर इन्हें पत्नी की सख्त बीमारी की बात तार से ज्ञात हुई और जब तक वे ससुराल पहुँचते पत्नी की चिता जल चुकी थी । निराला पर दुःखों का पहाड़ टूट पड़ा ।

वापस महिषादल आने पर निराला ने नियमित रूप से रामायण का पाठ शुरू किया । 'तभी एक दिन वहाँ रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी प्रेमानन्द आये । रामकृष्ण ने बंगाल के धार्मिक जीवन में अपनी साधना से एक जबरदस्त क्रान्ति कर दी थी; उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त ज्ञान से ब्रिटेन और अमेरिका चमत्कृत हो उठे थे । उन्ही स्वामी विवेकानन्द के गुरूभाई, साक्षात् रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी प्रेमानन्द महिषादल पधारे थे ।'[४] निराला ने प्रेमानन्दजी को बहुत सी मालाएँ पहना दीं और सस्वर रामायण का पाठ किया; प्रेमानन्द से वहीं पर सबसे बड़े भक्त (एक किसान की) की कहानी सुन कर निराला को नवीन भावबोध प्राप्त हुआ । 'स्वामी प्रेमानन्द के मुख पर कैसी शान्ति थी । सुर्जकुमार के दुखी मन को एक सहारा मिला । शान्ति संन्यास में है, बड़ा वह है जो संसार का मोह त्याग देता है । स्वामी रामकृष्ण ने ईश्वर को प्रत्यक्ष देखा था; क्या सुर्जकुमार को भी ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं ।'[५]

१. 'सुकुल की बीवी' , निराला रचनावली - ४, पृ० ४१४-१५
२. महाप्राण निराला, - गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृ० २९
३. निराला की साहित्य साधना - १, पृ० २८
४. वही, पृ० ३४
५. वही, पृ० ३५-३६,

महिषादल में एक सज्जन थे श्यामापद मुखर्जी, सुर्जकुमार की उनसे मैत्री हो गयी । उनके घर जाकर वे अक्सर वेदान्त - चर्चा करने लगे । स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकें लेकर पढ़ी । ज्ञान का एक नया संसार सुर्जकुमार को दिखाई देने लगा ।[१] इस तरह विवेकानन्द के साथ निराला का पहला प्रत्यक्ष सम्पर्क यहीं पर हुआ, एक गुरुभाई के रूप में और दूसरे पुस्तकों के रूप में । यह सम्पर्क उन दिनों हुआ, जब निराला दुःख के सागर में हिलोरें ले रहे थे । जिसका प्रभाव इसी कारणवश बहुत गहरा और चिरस्थायी रहा । इसी के बाद 'सुर्जकुमार का नया जीवन आरम्भ हुआ - कवि का जीवन । अपने नाम की (ओजत्व में) बंकिमचन्द, रवीन्द्रनाथ, गिरीशचन्द्र घोष के सापेक्ष तुलना करके नया नाम रखा - सूर्यकुमार > सूर्यकान्त त्रिपाठी (सुनने और अर्थ विचार में ज्यादा अच्छा लगा) ।'[२]

नवीन नाम और विचार की ओजस्विता धारण करके हिन्दी के सुप्रसिद्ध हस्ताक्षर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से एक लेख 'बंग भाषा का उच्चारण' के माध्यम से सम्पर्क स्थापित किया; जिसे 'सरस्वती' में 'ज्यों का त्यों' छाप भी दिया गया । इसी समय रियासत में विवाद एवं अविश्वास के कारण नौकरी छोड़ निराला अपने गाँव गढ़ाकोला आये और आचार्य द्विवेदी से मिलकर कहीं काम दिलवाने का आग्रह किया । इसी समय राम कृष्ण मिशन की दार्शनिक पत्रिका 'समन्वय' के लिए हिन्दी के विद्वान व्यक्ति के लिए स्वामी माधवानन्द 'द्विवेदीजी' से मिले; जिन्होंने निराला को इसके लिए बिल्कुल उपयुक्त पाया ।

नौकरी के बारे में माधवानन्द के पत्र का प्रत्युत्तर निरालाजी ने बँगला भाषा में लिखा - 'बंगाल मे रहते हुए परमहंस श्रीरामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द का साहित्य पढ़ चुका हूँ, महिषादल में स्वामी प्रेमानन्द को रामायण सुनाकर उनका आशीर्वाद प्राप्त कर चुका हूँ ।'[३] 'समन्वय' के लिए 'भारत में श्रीरामकृष्णवतार' नामक एक लेख भेजा - 'लेख की मौलिकता आदि के कारण रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों ने लिखा कि वह 'समन्वय' में काम करने आ जाँय ।[४]

---

१. निराला की साहित्य साधना - राम विलास शर्मा, पृ० ३६
२. वही, पृ० ३९
३. वही, पृ० ५२
४. वही, पृ० ५३

'समन्वय' का अंक द्विवेदीजी के पास भी पहुँचा। सूर्यकान्त का लेख उन्हें पसन्द आया। उनके पुष्ट गद्य और मौलिक चिन्तन पर उन्होंने बधाई दी। द्विवेदीजी के प्रोत्साहन से सूर्यकान्त को विश्वास हो गया कि उनमें सिद्ध साहित्यकार की प्रतिभा है, फलतः वे नौकरी में समय न जाया करके मिशन कलकत्ता आ गये।'[१] निराला के जीवन की यह एक अभूतपूर्व कायापलट थी। मिशन में रहते उनका बहुमुखी विकास हुआ और वहाँ रहते साहित्यिक वातावरण भी प्राप्त हुआ।

कलकत्ते में सूर्यकान्त का परिचय महादेव प्रसाद सेठ से हुआ। सेठजी ने १९२३ में 'मतवाला' निकालना प्रारम्भ किया। वे निराला की साहित्यिक प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुये। उन्होंने निराला की सर्वतोमुखी एवं नवनवोन्मेषशालिनी बुद्धि को पहचान लिया। निराला को इससे बड़ा उत्साह मिला; इस बारे में 'सुकुल की बीवी' में स्पष्ट निर्देश भी है, ''बहुत दिनों की बात है, तब मैं लगातार साहित्य-समुद्र-मन्थन कर रहा था। पर निगल रहा था केवल गरल, पान करने वाले अकेले महादेव बाबू 'मतवाला' सम्पादक, शीघ्र रत्न और रम्भा निकलने की आशा से अविराम मुझे मथते जाने की सलाह दे रहे थे। यद्यपि विष की ज्वाला महादेव बाबू की अपेक्षा मुझे ही अधिक जला रही थी। फिर भी मुझे एक आश्वासन था कि महादेव बाबू को मेरी शक्ति पर मुझसे भी अधिक विश्वास है।'[२] इसी समय शिवपूजन सहाय और मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव से परिचय हुआ और 'मतवाला' मण्डल में तीनों - निराला, सहाय, श्रीवास्तव भी सम्मिलित हुये और सेठ महादेव प्रसाद ने पत्रिका निकाल दिया।

मुंशीजी ने ही 'प्रथम अनामिका' के प्रकाशन को फलीभूत बनाया। 'मतवाला' के सम पर 'निराला' नाम रख दिया गया, किसी विशेष विचार से नहीं, 'पुराने महारथी' की तरह यह भी एक नाम था।'[३] इसी पत्रिका ने निराला को साहित्य के शिखर की ओर उन्मुख किया। एक स्थापित साहित्यकार होने के साथ ही साथ आलोचना का कठोर प्रहार भी निराला को झेलना पड़ा। 'प्रभा' में 'भावों की भिड़न्त' नामक लेख ने जहाँ उनके प्रति विश्वास का संकट उत्पन्न कर दिया, उसी से निराला को इस बात की प्रेरणा भी प्राप्त हुई कि हिन्दी को अधिक अन्दर से और गहराई से

---

१. निराला की साहित्य साधना - राम विलास शर्मा, पृ० ५३
२. 'सुकुल की बीवी', निराला रचनावली - ४, पृ० ४१४
३. निराला की साहित्य साधना - राम विलास शर्मा, पृ० ७०

देखे जाने की आवश्यकता है। 'मतवाला' से सम्बन्ध भी प्रभावित हुआ; क्योंकि निराला के प्रति 'मतवाला - मण्डल' में अविश्वास आ गया था। इसके बाद फिर कभी विश्वास पूर्वक निराला 'मतवाला' के साथ नहीं जुड़ सके। सम्बन्ध में एक तरह की शिथिलता बनी रही। 'भावों की भिड़न्त' सम्बन्धी विवाद से निराला कुछ दिन अन्तः केन्द्रित रहे। वे श्रीरामकृष्ण - मिशन के संन्यासियों की ओर अधिक खिंच आये। उसमें स्वयं लेख लिखे, स्वामी विवेकानन्द की रचनाओं के अनुवाद प्रकाशित कराये।' इसके बाद जीवन संघर्ष भी प्रत्यक्ष हो उठा। निराला वहाँ से अपने गाँव गढ़ाकोला आ गये, जहाँ वे बीमार हो गये और इतने बीमार हुये कि एक बार फिर जीने की आशा छूट गई। नौबत गोदान कराने तक पहुँची।"[१]

घोर आर्थिक अवदशा और पूरे परिवार के खर्च की बड़ी जिम्मेदारी के साथ ही पुत्री सरोज के विवाह की चिन्ता भी उन्हें परेशान किये हुए थी। काव्य - संग्रह के बदले दुलारेलाल भार्गव से २५० रू० प्राप्त किया, और 'तेरह साल की अवस्था में ही सरोज का विवाह शिष्य शिवशेखर द्विवेदी से तय किया। निराला नें स्वयं घर में झाड़ू लगाई, पिंडोर घोलकर दीवालें पोतीं, गोबर से आँगन और खमसार लीपा। सामाजिक परम्परा की उपेक्षा कर नन्ददुलारे बाजपेई, आनन्द मोहन आदि की उपस्थिति में डेढ़ घण्टे में विवाह सम्पन्न करा दिया।'[२] इस महती जिम्मेदारी से मुक्त होने के बाद वे साहित्य में फिर मुखर हुये।

निराला का 'परिमल' काव्य - संग्रह अगस्त १९२९ में प्रकाशित हुआ, इसके बाद वे 'सुधा' के सम्पादकीय विभाग में काम करने लगे। 'सुधा' को हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक - सामाजिक पत्रिका बनाने का श्रेय निराला को ही है। इसमें राष्ट्र एवं समाज के सन्दर्भ में अनेकानेक लेख लिखकर देशवासियों को जगाने का कार्य किया। 'समन्वय' और 'मतवाला' की तरह यहाँ भी सम्पादक के रूप में निराला का नाम न छपता था। इसी समय 'वर्तमान धर्म' के प्रशन पर एक बार फिर निराला पर आक्षेपों की बौछार हो गई, निराला ने 'साहित्यिक सन्निपात' या 'वर्तमान धर्म' लेख द्वारा विरोधियों को हतप्रभ किया।

---

१. निराला की साहित्य साधना - राम विलास शर्मा, पृ० १६७
२. वही, पृ० १७८-७९

यथार्थ के धरातल पर भी निराला का संघर्ष चल रहा था । पुत्री सरोज बीच-बीच में बीमार हो जाया करती थी । पुत्र रामकृष्ण भी साथ थे । 'निराला नियमित रूप से पुत्र की फीस न दे पाते थे । .... रामकृष्ण ननिहाल चले गये । कुछ दिन में लौट आए और अलग मकान लेकर रहने लगे । ट्यूशन करके खर्च चलाते ।'[१] इसी लाचारी के कारण पुत्र से अधिक मिल भी नहीं पाते थे । इधर सरोज की बीमारी गम्भीर रूप ले चुकी थी । तपेदिक के कारण बाँया फेफड़ा छलनी हो गया था और 'वैद्यों नें कहा - उसे गंगा की धारा में रखना चाहिए । .... निराला को पैसों की सख्त जरूरत थी । .... पर मिल नहीं सका ।'[२] और सरोज गुजर गई, निराला की आँखों से एक बूँद भी आँसू न गिरा ।

निराला का जीवन यथार्थ के धरातल पर कभी भी सुखमय नहीं रहा । परिवार के अधिकांश सदस्य असमय ही उनका साथ छोड़ गये । मित्रगण भी एक एक कर साथ छोड़ने लगे । आर्थिक स्थिति से तो वे सदैव जूझते रहे । उनका ह्रदय वज्र का बना हुआ था । सन् १९१६ से सन् १९३५ तक उनके पारिवारिक, सामाजिक, साहित्यिक और आर्थिक जीवन में ऐसे - ऐसे तूफान उठे कि दूसरा होता तो कंधे डाल देता, मगर निरालाजी पर्वत की भाँति अपने लक्ष्य पर डटे रहे । इस साधना के परिणाम ने निराला के साहित्यिक औदात्य को मौलिक आयाम दिलाते हुये सरोज स्मृति, राम की शक्ति पूजा, तुलसीदास, कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा, प्रबन्ध - प्रतिमा आदि उत्कृष्ट कृतियों का दिग्दर्शन कराया । निराला एक यायावरी जीवन जीते हुये कभी कलकत्ता, कभी लखनऊ, कभी काशी में अपने विशाल अनुभव को व्यापक साहित्यिक धरातल प्रदान करते रहे । सन् १९४२ ई० के बाद उन्होंने प्रयाग के दारागंज मुहल्ले को अपना स्थायी निवास स्थान बनाया ।'[३]

प्रयाग आने के बाद उनकी अवदशा और अधिक खराब हो गई । राम विलास शर्मा नें इस समय को 'नरक - यात्रा' का नाम दिया । लम्बी बीमारी और जर्जर अर्थ व्यवस्था नें इस महाकवि की महाप्राणता को भी तोड़ कर रख दिया । 'वास्तव में निराला ने सन् ४३ से लेकर सन्

---

१. निराला की साहित्य साधना - राम विलास शर्मा, पृ० २६३

२. वही, पृ० २९३

३. निराला साहित्य सन्दर्भ - हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग - श्री राजेन्द सिंह गौड़, पृ० ३०

४६ तक प्रयाग में ऐसी यातनाएँ झेली हैं, जो किसी भी दूसरे व्यक्ति के लिए आत्महत्या का कारण् बन सकती थी ।'[१] परिस्थिति की भयावहता ने निराला के ऊपर अप्रतिम प्रभाव डाला । इसलिए उनका मानसिक पर्यावरण भी सन्तुलित नहीं रह सका । परिणाम यह हुआ कि 'निराला की काव्य सर्जना का उन्नत धरातल १९३६-३८ तक ही बना रह सका । इसके बाद उनके चित्त की 'अन्तः केन्द्रित' दशा लगभग समाप्त हो गई और उनकी रचना मनोदशा के बिखराव से विश्रृंखलित हो गई - शायद इसी कारण पंत ने लिखा है कि 'निराला का व्यक्तित्व योग भ्रष्ट कवि का व्यक्तित्व था ।'[२] ऐसी परिस्थिति का वर्णन करते हुये निराला के जीवनीकार डा० राम विलास शर्मा लिखते हैं, 'एक दिन किसी से कुछ कहे बिना निराला घर से निकलकर कहीं चल दिये । संवाद पत्रों में समाचार छपा - "निरालाजी, हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, अपने घर से विवेकानन्द के राजयोग को लेकर अचानक एक दिन गायब हो गये । इधर कुछ दिनों से उनका दिमाग कुछ खराब था ।"[३]

निराला का जीवन उनके अपने आदर्शो पर आधारित था । जीवन जीने के लिए उन्होंने कभी अपने सिद्धान्तों और आदर्शो के साथ समझौता नहीं किया । जीवन भर अर्थाभाव के जटिल दुश्चक्र में उलझे रहे । अपने इसी भाव का संकेत उन्होंने 'देवी' कहानी में इस तरह किया है, 'मुझे बराबर पेट के लाले रहे । पर फाकेमस्ती में भी मैं परियों के ख्वाब देखता रहा - इस तरह अपनी तरफ से मैं जितना लोगों को ऊँचा उठाने की कोशिश करता गया, लोग उतना मुझे उतारने पर तुले रहे और चूँकि मैं साहित्य को नरक से स्वर्ग बना रहा था, इसलिए मेरी दूनिया भी मुझसे दूर होती गयी, अब मौत से जैसे दूसरी दूनिया में जाकर मैं उसे लाश की तरह देखता होऊँ ।'[४] इसी अनुपम जीवन - दृष्टि के कारण उनका साहित्य इतना प्रखर, ओजस्वी एवं प्राणवन्त है । साहित्य से अर्थोपार्जन के प्रश्न पर उनका कहना था कि, 'साहित्य मेरे जीवन का उद्देश्य है जीने का नहीं, यह सच है कि मैं जीता भी साहित्य से हूँ किन्तु वह मेरे जीवन का साधन मात्र नहीं ! जो मैं नहीं लिखना चाहता वह चाहे भूँखो मर जाऊँ, न लिखूँगा और जो लिखना चाहता हूँ, लाखो रूपये के बदले में भी उसे न लिखने की बात न सोचूँगा ।'[५]

---

१. महाप्राण निराला - गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृ० १०२
२. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास - नगेन्द, पृ० १६६
३. निराला की साहित्य साधना - राम विलास शर्मा, पृ० ४२१
४. 'देवी', निराला रचनावली - ४, पृ० ३७२
५. महाप्राण निराला - गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृ० १०३

स्वतंत्रता की सान्ध्य बेला में भविष्यत् के प्रति उनका सन्देह और घना हो गया । । उन्हें इस बात का अनुभव हो गया था कि प्राप्य स्वतंत्रता से जनता का वास्तविक स्वातन्त्र्य सम्भव नहीं है; इसीलिये '१५ अगस्त १९४७ के बाद उनकी मानसिक स्थिति बिल्कुल बदल गयी । वह बहुत ही विक्षुब्ध और उद्दण्ड हो गये थे ।'[१] इस अवसर पर उन्हें शान्त करने के लिए श्रीरामकृष्ण मिशन एवं विवेकानन्द की पुस्तकें ही एकमात्र माध्यम होती थी । इसी के साथ ही उन्होंने प्रच्छन्न तौर पर संन्यास भी ले लिया । 'गेरू से उन्होंने कपड़े रँगे । महादेवीजी से कहा - ''अब ठीक है । जहाँ पहुँचे किसी नीम, पीपल के नीचे बैठ गये । दो रोटियाँ माँग कर खा लीं और गीत लिखने लगे ।'' उन्हें इस पर गर्व भी था कि बँगले में संन्यास लिया है । भतीजे केशवलाल को लिखा - ''हमने संन्यास ले लिया है, क्वार सुदी एकादशी को । तुम लोगों की कुशल चाहते हैं । इसी से अपने बँगले में संन्यास लिया है ।''[२]

इस तरह हम देखते हैं कि 'समन्वय' के दिनों से उनका जो सम्बन्ध विवेकानन्द की भावधारा के माध्यम से आध्यात्मिक दुनिया से हुआ था और जो चरम स्तर पर फलीभूत नहीं हो पाया था, निराला के अचेतन मन पर उसका कितना गहरा प्रभाव था । उत्तरोत्तर - जीवन - सोपान में यह अधिक गम्भीर होता गया । इस साधना पथ में असफल निराला एक और अलौकिक साधना के द्वारा तपश्चर्या के साहित्यिक आयाम को संस्पर्श करते हैं । यह साहित्य साधना उन्हें साहित्यिक संत का गरिमामय पद प्रदान करती है । स्वातन्त्र्योत्तर काल में निराला को कुछ आर्थिक अनुदान आदि मिलने लगा था किन्तु उनकी मानवीयता इस मामले में उन पर सदैव भारी पड़ती थी । रायल्टी से प्राप्त धन और अनुदान से प्राप्त अधिकतर रूपये दीन-हीन गरीबों को दे दिया करते थे । मुंशी नवजादिकलाल की विधवा पत्नी को आजीवन सहायता के रूप में कुछ न कुछ रूपये भेजते रहे । उनका तत्कालीन चित्रण निराला की साहित्य साधना में इस तरह हुआ है, ' निराला दारागंज की गली में घुटनों तक लुंगी बाँधे हुए, अक्सर अपने से बातें करते हुए देखे जाते थे । अब वह आवेश में जोर से बातें कम करते थे, धीरे-धीरे बुदबुदाते ज्यादा थे । वह लोगों से अक्सर अंग्रेजी में

---

२. निराला की साहित्य साधना - राम विलास शर्मा, पृ० ४२८

३. वही, पृ० ४३४

बातें करते थे ।"[१]

मृत्यु के कुछ समय पूर्व निराला एक बार फिर जीवन्त हो उठे थे और ऐसा लगा, 'एक बार ३४-३६ का निराला फिर उदय हुआ । भारती जय विजय करे ! टूटे सकल बन्ध ! नयनों के डोरे लाल ! बँगला के कई गीत, विवेकानन्द की एक-एक बँगला कविता ! लगभग दो-ढ़ाई घण्टे तक गाते रहे ।'[२] पर यह सब कुछ अस्थायी ही सिद्ध हुआ; संघर्ष से कमजोर पड़े शरीर पर अनेक रोगों ने आक्रमण कर दिया था, शोथ, जलोदर, यकृत दोष, रक्त संचार में अवरोध, हार्निया के संयुक्त प्रभाव ने निराला को दिवसावसान का आभास दिला दिया । पत्रोत्कण्ठित जीवन का विष बुझा हुआ है, आशा का प्रदीप जलता है हृदय कुंज में; लिखकर संकेत भी दे दिया ।

निराला की स्थिति गम्भीर हो गयी थी । तेरह अक्टूबर की शाम से पन्द्रह अक्टूबर के सबेरे तक अड़तालीस घण्टे जलोदर और हार्निया से पीड़ित शरीर में मृत्यु - यंत्रणा झेलने और अनेक बार मित्रों और डाक्टरों को स्वास्थ्य के आभास से प्रसन्न करने के बाद निराला ने अपनी जीवन लीला समाप्त की । "मुख पर कष्ट या विकारों की कोई भंगिमा नहीं थी और न कोई अंग टेढ़ा हुआ था । ऐसा लगता था जैसे - जीवन भर संघर्षो और कठिनाइयों से जूझने वाले इस महान साहसी एवं अदम्य योद्धा ने मृत्यु का स्वयं ही वरण करके चिरशांति की गोद में अखण्ड निद्रा ले ली हो ।"[३] देहावसान १९६२ ई० में हुआ ।[४]

चिर शान्ति में विलीन होने के बाद निराला के प्रति लोगों का सुप्त भाव अधिक प्रखर हो उठा । उन पर संस्मरणों, कविताओं, शोध - प्रबन्धों को लिखने का अविरत सिलसिला चल पड़ा । विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में भी निराला का समावेश हुआ । निराला को हिन्दी साहित्य - संसार को अभिनव आलोक से आलोकित करने वाले सूर्य की गरिमामय स्थापना मिली ।

---

१. निराला की साहित्य साधना - राम विलास शर्मा, पृ० ४४१
२. वही, पृ० ४५५
३. वही, पृ० ४६४
४. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास - डॉ० नगेन्द, पृ० १६२

'' निराला का काव्य साहित्य ''

निराला छायावाद के प्रमुख स्तम्भों में से एक हैं, लगभग चालीस वर्षों की काव्य साधना से उनका शरीर तप कर तपस्वी का शरीर हो गया था। साहित्यिक तप की इस साधना ने उनके अन्तःकरण का भी शोधन कर दिया, जिससे उनका स्वर और अधिक स्पष्ट, ओजस्वी होकर काव्य के धरातल पर प्रवाहित हुआ; जिसके परिणामस्वरूप उनकी कविताओं का अद्वितीय प्रभाव पड़ा। सारा का सारा साहित्य संसार इस संत के सदुपदेश को शान्त स्वर से सुन रहा था। छायावाद- विरोधियों को एक-एक कर पराभूत कर दिया और हिन्दी कविता को वह विशाल फलक प्रदान किया, जिससे सम्पूर्ण आधुनिक काव्य का प्रासाद निर्मित हुआ। वे एक साथ ही तीन युगों को अपने विराट व्यक्तित्व में समाहित किये हुये थे। छायावाद, प्रगतिवाद और नयी कविता उन्हीं में अपना विस्तार देखती है। वे एक व्यापक काव्य-उत्स थे, जिसकी एक धारा छायावाद से जुड़ी हुई है, तो दूसरी धारा प्रगतिवाद को संचारित कर रही थी, जबकि तीसरी धारा अभिनव कविता संसार का सृजन कर रही थी। इस तरह निराला की कविताओं का स्वर बहुमुखी है। उनके स्वर में भक्ति सागर भी हिलोरें ले रहा था, राष्ट्रीयता का स्वर भी मुखरित हो रहा था, प्रेम की मन्द - मन्द बयार भी बह रही थी, दार्शनिकता भी रह-रह कर व्यक्त हो रही थी, सामाजिकता भी निखर रही थी, वैयक्तिकता का करुण स्वर भी था। इस प्रकार निराला की काव्य-यात्रा में सभी तरह के सोपान मिल जाते हैं। वे भारतीय संस्कृति के गौरव को उद्घोषित करते हैं, तो शक्ति की मौलिक कल्पना के द्वारा जीर्ण-शीर्ण-प्राचीन को जला देने की बात भी करते हैं। निराला की काव्य-यात्रा से गुजरना एक सम्पूर्ण जीवन से गुजरना है, जहाँ यात्रा के हर कटु और मधुर अनुभव मिल जाते हैं। इन्हीं परस्पर विरोधी अनुभूतियों को साहित्यिक संसार में विभावना - व्यापार का नाम दिया गया है और निराला का काव्य-साहित्य इसी विभावना-व्यापार का सजीव प्रमाण है, जिसके कारण आज तक साहित्य संसार उनके काव्य सृजन से चमत्कृत है।

निराला की कविताओं का रचनाकाल भी सर्वदा विवाद रहित नहीं है। अनामिका के पुस्तकाकार सृजन से पहले उन्होंने कई स्फुट कविताओं और बँगला की कविताओं का रूपान्तरण किया। निराला की प्रथम प्रौढ़ रचना 'जूही की कली' है। १९१६ ई० में रची 'जूही की

कली' मुक्त छन्द प्रकरण की प्रथम कड़ी है।[1] 'जूही की कली' का मानवीकरण करते हुए कवि ने उसे पोषित पतिका के रूप में चित्रित किया है। स्वाभाविक रस श्रृंगार की अभिव्यक्ति हुई है। नायक व नायिका पवन व कली हैं। इसी वर्ष 'अधिवास की रचना'[2] भी कवि द्वारा की गयी। इसमें कवि ने प्रश्न उठाया है कि मनुष्य के कर्मों की समाप्ति भी क्या सम्भव है ? जब तक मनुष्य में सहानुभूति, करुणा और पर-दुःख कातरता है; तब तक क्रियाशील संवेदनायुक्त व्यक्ति निष्क्रिय होकर कैसे रह सकता है ? मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव के प्रयास और सेठ महादेव प्रसाद के सहयोग से 'अनामिका' का प्रकाशन हुआ। इस बारे में डॉ० रामविलास शर्मा लिखते हैं; ''पृष्ठ संख्या से क्या ? कविता में वजन होना चाहिए, यह तर्क सूर्यकान्त ने दिया और 'अनामिका' नाम की ४० पृष्ठ की पुस्तिका छप गई।''[3] इसका प्रकाशन वर्ष जुलाई या अगस्त १९२३ है।[4] हिन्दी साहित्य के वृहद इतिहास (सं० डा० नगेन्द्र) में भी यही वर्ष दिया गया है। इसमें कुल 'नौ' कविताएँ संकलित की गयी हैं। 'आध्यात्म-फल' में बहिर्जगत से त्रस्त अन्तर्मन के मुक्ति की युक्ति से मिल कर खिल जाने की अवस्था का मार्मिक चित्रण है। 'जूही की कली' प्राकृतिक प्रणय निवेदन है। 'माया' कविता में ब्रह्म की इस अवगुण्ठन माया की व्यापकता का चित्रण हुआ है। इसे एक तरफ 'भोग-भ्रम की साधना' और दूसरी तरफ 'त्यागियों के त्याग की आराधना' कहकर बाधक और साधक दोनो रूपों में देखा है। 'अधिवास' में आध्यात्म और लौकिकता का द्वन्द्व है। 'तुम और मैं' कविता आध्यात्मिक रहस्यवादी विचारधारा को व्यक्त करती है। ब्रह्म और जीव के मध्य संवेदनशील सम्बन्ध का सरस प्रवाह इस कविता का उपजीव्य है। इस संग्रह की प्रतिनिधि कविता 'पंचवटी प्रसंग' है। इस लम्बी कविता को ५ भागों में रखा गया है। सीता और लक्ष्मण की जिज्ञासा को शान्त करते हुये राम के माध्यम से निराला ने दर्शन का संक्षिप्त इतिहास लिख दिया है। 'सच्चा प्यार', 'लज्जिता' और 'जलद के प्रति' कविताएँ भी इस संग्रह में संकलित हैं; जिनमें मानवीय प्रेम का उदात्त चित्रण किया गया है। प्रकृति के माध्यम से कविता में सरसता और जीवंतता का प्रवाह भी देखा जा सकता है।

---

१. 'महाकवि निराला और उनकी साहित्य रचना' लेख -डा० शिव नारायण खन्ना - निराला साहित्य सन्दर्भ; पृ० ३४
२. वही, पृ० ३५
३. निराला की साहित्य साधना - राम विलास शर्मा - १, पृ० ६६
४. निराला रचनावली - १, पृ० १४

परिमल

परिमल का प्रकाशन वर्ष १९३० है।[1] निराला रचनावली के सम्पादक नन्दकिशोर नवल ने इसका प्रकाशल काल १९२९ ई० माना है। जब कि साहित्य साधनाकार ने लिखा है, ''मामूली कागज, मामूली छपाई, कोई चित्र नहीं, न कवि का, न किसी सुन्दरी का, न प्राकृतिक दृश्य का। अगस्त सन् २९ में निराला का कविता संग्रह प्रकाशित हो गया।''[2] प्रथम 'अनामिका' की सात कविताएँ 'परिमल' में भी सम्मिलित कर दी गई। 'परिमल' में कविताएँ निराला के बहुमुखी काव्य-प्रतिभा को व्यक्त करती हैं। 'उसकी स्मृति', 'नयन', 'पहचाना', 'कविता' आदि कविताओं में प्रेम की अभिव्यंजना का सजीव चित्रण है, जबकि 'विधवा', 'भिक्षुक' में कवि का मानवतावाद प्रत्यक्ष हो उठा है। 'शरत्पूर्णिमा की बिदाई', वन कुसुमों की शय्या', 'रास्ते के फूल से', 'बहू' आदि कविताओं में प्रकृति का सुन्दर चित्रण हुआ है। 'सन्ध्या सुन्दरी' में प्रकृति का मानवीकरण बहुत सजीव एवं जीवन्त हो उठा है -

दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है,
वह सन्ध्या सुन्दरी परी सी,
धीरे धीरे धीरे,

* * * * * *

अलसता की सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली,
सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह,
छाँह सी अम्बर पथ से चली।[3]

'अंजलि', 'धारा', 'आवाहन', 'क्या दूँ', 'प्रपात के प्रति', 'प्रथम प्रभात', 'भर देते हो', 'कण', 'ध्वनि', 'आग्रह', दीन', 'निवेदन', 'परलोक', 'खेवा', 'तरंगों के प्रति', आदि अनेक कविताएँ आध्यात्मिक रहस्यवादी भावनाओं को प्रकट करती हैं।

---

१. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास - १०, सं० डा० नगेन्द, पृ० १६३
२. निराला की साहितय साधना - १, रामविलास शर्मा पृ० १८०
३. 'सन्ध्या सुन्दरी' निराला रचनावली - १, पृ० ६५

'परिमल' में निराला की कुछ लम्बी कविताएँ संकलित हुई हैं। उनकी 'यमुना के प्रति' विविध भावनाओं का संश्लिष्ट चित्रण करती है। इसमें कहीं - कहीं बिखराव भी दिखाई पड़ जाता है। कुल मिला कर यह एक सामान्य कविता कही जा सकती है। 'बादल राग' की रचना ६ खण्डों में हुई है। इसमें कवि ने बादल को क्रान्ति और मानवता का वाहक मानते हुए इसके माध्यम से चेतना के प्रसार का आवाहन किया है। इसमें निराला का देश प्रेम और मानवीय पक्ष उभर कर सामने आया है :-

जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर[१]

इसी कड़ी में उनकी कविता 'जागो फिर एक बार' उल्लेखनीय प्रभावोत्पादन करती है। रूढ़ियों और संकीर्णताओं के भार से सुप्त जनता को जागृत करने के लिए कवि ने गौरवपूर्ण अतीत और विवेकानन्द के नववेदान्त का आश्रय लिया है। बार बार लोगों को ब्रह्म और मुक्त का सम्बोधन करके उनकी महानता का बोध कराना चाहते हैं। अतीत के गौरव का बोध ही 'महाराज शिवाजी का पत्र' कविता का उत्स है। इस वीर एवं स्वाभिमानी नायक के माध्यम से भारतीयों में राष्ट्रप्रेम, चेतना और ओजस्विता का संचार करना ही निराला का अभीष्ट है। अत्याचार के विरोध में उठ खड़ा होने का आवाहन किया गया है। 'जागरण' कविता में आध्यात्मिक निदर्शन दिखलाई पड़ता है, जिसमें 'सोऽहम्' की दार्शनिक अवधारणा के माध्यम से 'सारे संसार' के लिए मुक्त द्वार खुले होने की विराट-चेता दृष्टि अभिव्यंजित हुई है।

इसके अतिरिक्त 'परिमल' में कई अन्य कविताएँ भी संकलित हैं। 'प्रभाती', 'वासन्ती', 'विस्तृत भोर', 'वसन्त समीर', 'स्मृति-चुम्बन', और प्रार्थना एवं गीत आदि भी इस संकलन की विविधता प्रमाणित करती हैं; जहाँ छायावाद की सम्पूर्ण मान्यताएँ अपने व्यापक रूप में देखी जा सकती हैं।

---

१. 'बादल राग', निराला रचनावली - १, पृ० १२४

गीतिका

भारती - भंडार, इलाहाबाद से 'गीतिका' १९३६[१] में प्रकाशित हुई । इसे उन्होने अपनी प्रियतमा 'मनोहरा देवी' को समर्पित किया है । भूमिका प्रसाद जी ने लिखी है तथा परिचय श्रीनन्द दुलारे बाजपेयी का है । 'गीतिका' गीतात्मक तथा संगीतात्मक गीतों का संकलन है । इसमें गीत रूढ़िग्रस्त राग-रागनियों में आबद्ध नहीं हैं । ये गीत अलग नींव पर ही बनाए गये हैं । निराला के गीतों का स्वर, लय और ताल बँगला तथा अंग्रेजी गीतों से प्रभावित हैं । अधिकतर गीतों में उद्‌बोधन तथा माधुर्यभाव से आत्म-निवेदन है । मूल भावना श्रृंगारिक है । विषय की दृष्टि से 'गीतिका' के गीत प्रार्थना प्रधान, प्रकृति चित्रण, राष्ट्रीय, दार्शनिक और नारी सौन्दर्य सम्बन्धी है ।[२] 'गीतिका का प्रथम गीत सर्व परिचित है :-

''वरदे वीणावादिनि वर दे !
प्रिय स्वतंत्र-रव, अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे ![३]

दार्शनिक विवेचना के अन्तर्गत नाना रूपमय जगत् में एक ही ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार किया है -

'जग का इक देखा तार
कंठ अगणित, देह सप्तक, मधुर स्वर झंकार ।
बहु सुमन, बहुरंग निर्मित एक सुन्दर हार ।
एक ही कर से गुंथा, उर एक शोभा भार ।'[४]

निराला कबीर के निर्गुण से भी प्रभावित हैं -

'पास ही रे हीरे की खान,
खोजता कहाँ और नादान ?''[५]

इस तरह हम देखते हैं कि 'गीतिका' के गीत विविध विषयों से सम्बन्धित हैं और कवि के बहुमुखी व्यक्तित्व का निदर्शन है ।

---

१. निराला रचनावली - १ पृ० १७
२. महाकवि निराला और उनकी साहित्य रचना - श्री शिनारायण खन्ना, निराला साहित्य सन्दर्भ, पृ० ४३
३. निराला रचनावली - १ पृ० २१०
४. वही, पृ० २१२
५. वही, पृ० २०१

अनामिका (नवीन)

इसका प्रकाशन १९३७[१] में हुआ । जबकि नन्दकिशोर नवल ने इसके प्रकाशन काल के बारे में लिखा है, ' इसका मतलब यह हुआ कि द्वितीय अनामिका का प्रकाशन काल १९३८ ई० का अन्त न होकर १९३९ ई० का आरम्भ है ।'[२] इस संकलन को निराला का प्रतिनिधि संकलन कहा जा सकता है । इसमें नयी और पुरानी कविताओं को एकान्वित करके रखा गया है । काल-क्रम में कई कवितॉं 'परिमल' के प्रकाशन के पहले की हैं । 'प्रलाप', 'अनुताप', 'यहीं', 'वीणावादिनी', 'प्रिया से', 'दिल्ली', 'प्रगल्भ प्रेम', 'उद्‌बोधन', 'क्या गाऊँ', 'सन्तप्त', 'प्याला', 'नारायण मिले हॅंस अन्त में', 'रेखा', 'हताश' इसी तरह की रचनाएॅं हैं । इनका रचना काल पहले ही है, किन्तु इन्हें प्रकाशित बाद में किया गया । इसमें सबसे उल्लेखनीय कविता 'दिल्ली' बन पड़ी है जिसमें देश की अवदशा का चित्रण किया गया है । निराला ने भारतीय इतिहास के गौरव का उद्‌घोष करते हुए जागरण का सन्देश दिया है । इसके लिये आध्यात्मिकता का आश्रय भी लिया है -

'क्या यह वही देश है -
भीमार्जुन आदि का कीर्तिक्षेत्र,
* * * * * * *
श्रीमुख से कृष्ण के सुना था जहाँ भारत ने
गीता - गीत - सिंहनाद -
मर्मवाणी जीवन-संग्राम की -
सार्थक समन्वय ज्ञान-कर्म-भक्ति-योग का ?'[३]

इस संग्रह की कविताओं में 'दान' का अपना अलग स्थान है । मानवीय विडम्बना को व्यक्त करती इस कविता में 'दान' की सार्थकता का प्रशन उठाया गया है । धर्म परायण ब्राह्मण किस तरह भूखे मनुष्य के स्थान पर बन्दरों को पुए खिला देता है और ....

---

१. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास - १० सं० डा० नगेन्द, पृ० १६३
२. निराला रचनावली - १ पृ० १५
३. वही, पृ० ८७

देखा भी नही उधर फिरकर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर;
चिल्लाया किया दूर दानव,
बोला मैं - "धन्य, श्रेष्ठ मानव !"[1]

'मित्र के प्रति', 'यह सच है', 'प्रेयसी', 'सम्राट एडवर्ड के प्रति', 'कविता के प्रति', 'तोड़ती पत्थर', 'आवेदन', 'विनय', 'उत्साह', 'वन-बेला', 'हिन्दी-सुमनों के प्रति पत्र', 'उक्ति', 'ठूँठ', 'सेवा प्रारम्भ', 'मरण दृश्य', 'मुक्ति', 'खुला आसमान', 'प्राप्ति', 'अपराजिता', 'वसन्त के परी के प्रति', 'वे किसान की नयी बहू की आँखें', 'नर्गिस', 'नासमझी', 'उक्ति', 'सहज', 'और और छवि', 'मेरी छबि ला दो', 'वारिद-वन्दना', 'गीत' आदि कविताओं के माध्यम से निराला ने काव्यगत शिखर का नया आयाम स्पर्श किया। विविध प्रवृत्तियों की समन्वित भावना का मनोरम परिपाक हुआ है। इन सबके साथ ही उनकी दो कालजयी रचनाएँ मिल जाती हैं, तब सारा का सारा काव्य इतिहास बन जाता है। निराला की काव्यगत उपलब्धियों का सर्वोत्तम निकष बन यह संकलन सर्वश्रेष्ठ मापदण्ड स्थापित कर देता है। तत्कालीन छायावादी कवि पंत नें इसकी खुलकर प्रशंसा की और निराला के लिए एक कविता लिखी, जिसका नाम ही रखा 'अनामिका के कवि निराला के प्रति'।

'राम की शक्तिपूजा' को निराला के काव्य जीवन का सर्वोत्तम प्रतिपादन माना जाता है। इसकी रचना १९३६[2] में की गयी और 'भारत' दैनिक, इलाहाबाद में २६ अक्टूबर १९३६ में प्रकाशित हुई। इसका मुख्य कथानक कृतिवास बँगला रामायण से लिया गया है। मौलिकता कथानक में नहीं है, उस कथानक से सिरजा क्या गया है, उसमें है। इस दृष्टि से 'शक्ति पूजा' में शक्ति-संधान की रचनात्मक व्याख्या है और उसका मूल सूत्र उस परामर्श में है, जो जाम्बवान, पराजय की मन:स्थिति में डूबे राम को देते हैं -

शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन,
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो रघुनन्दन ![3]

---

१. निराला रचनावली - १, पृ० २९१
२. वही, पृ० ३१९
३. वही, पृ० ३१६

इस एक कविता में निराला ने सम्पूर्ण युग जीवंत कर दिया है। जीवन के अन्धकार का चरम और उसमें प्रकाश की एक मद्धिम रेखा ने काव्यगत बुनावट को नवीन आयाम दिया है। पौराणिक राम को उन्होंने इतनी व्यापकता प्रदान की है कि वे एक ही साथ कई विरोधी भावनाओं को समेटे हुये हैं। पराजय की आशंका से ग्रस्त राम स्वयं कई स्तरों पर विभक्त हैं, उनमें शंकित राम, योद्धा राम, श्रृंगारी राम एक ही साथ व्यक्त हो जाते हैं -

'लख शंकाकुल हो गये अतुल-बल शेष-शयन,
खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन',

और अन्त में करुणा-कलित राम भी चित्रित दिखाई देते हैं -

'फिर सुना हँस रहा अट्टहास रावण खलखल,
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता - दल।"[१]

निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' के द्वारा अपनी काव्य प्रतिभा को कथ्य और शिल्प दोनो पक्षों को प्रतिस्थापित किया। मुक्त छन्दके प्रवर्तक निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' में सबसे कठिन छन्द तथा तुक विधान का पालन किया है। तत्सम बहुला सामासिक पदावली के द्वारा इतनी विराट प्रतीक व बिम्ब योजना का आश्रय लेकर निराला हिन्दी साहित्य संसार को चमत्कृत कर देते हैं। इसका प्रारम्भ इतना नाटकीय है, जैसे - रंगमंच का परदा उठ रहा हो -

'रवि हुआ अस्तः ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर"[२]

इस अपराजेय समर का समापन राम के द्वारा शक्ति की मौलिक कल्पना कर विजय के अभिनन्दन से होता है।

'सरोज-स्मृति' हिन्दी का प्रारम्भिक शोकगीत है। इसकी रचना पुत्री सरोज की स्मृति में ९ अक्टूबर १९३५[३] को हुई। कई अर्थो में यह 'राम की शक्तिपूजा' की पूरक कृति है। दोनों

---

१. निराला रचनावली - १, पृ० ३१२
२. वही, पृ० ३१०
३. वही, पृ० ३०५

की रचना प्रायः साथ ही हुई । 'शक्तिपूजा' का संघर्ष जहाँ व्यापक धरातल पर है, वहीं 'सरोज-स्मृति' का घोषित रूप में वैयक्तिक स्तर पर । निराला ने इसे अपनी इकलौती पुत्री सरोज की मृत्यु पर लिखा । इसकी सर्जना का मुख्य उद्देश्य 'दुःख' का विवेचन करना था, किन्तु वह और संघनित हो जाता है । व्यक्तिगत दुःख इतना संघनित हो जाता है कि कवि की आत्मपीड़ा सबकी पीड़ा हो जाती है ।

इस कृति में निराला का जीवन संघर्ष सपाट रूप में व्यक्त हो जाता है । कहीं कोई दुराव नहीं, सब कुछ दर्पण की तरह साफ है । मूलतः करुण भाव-धारा से युक्त शोक काव्य में शिव की बारात और कान्यकुब्जों के रूढ़िवर्णन जैसे अटपटे, हास्य और व्यंग्यमूलक प्रसंगों को जोड़कर काव्य प्रक्रिया के कठिनतम क्षणों का सृजन कर दिया । 'सरोज' का बचपन और उसकी युवावस्था के वर्णन में भी निराला ने कवि और पिता दोनो रूपों का निर्वाह किया है । 'राम की शक्तिपूजा' में जहाँ निराला स्वयं को राम के माध्यम से धिक्कारते हैं, वहीं कवि ने 'सरोज-स्मृति' में अपना इतिवृत संक्षिप्त रूप में लिखा है -

'दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही !'[१]

तुलसीदास

तुलसीदास का प्रकाशन वर्ष १९३८[२] है । इसे इलाहाबाद के भारती-भण्डार ने प्रकाशित किया । आकार की दृष्टि से निराला की रचनाओं में इसका सर्वप्रथम स्थान है । तुलसीदास में अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों का बहुत ही सुन्दर और स्पष्ट निरूपण हुआ है । वैराग्य - प्रवेश के प्रचलित कथानक में तुलसी का मानसिक द्वन्द्व, मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ और उनका उद्घाटन

---

१. निराला रचनावली - १, पृ० ३०५
२. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास - १०, सं० डॉ० नगेन्द्र, पृ० १६३

स्वाभाविक पर साहित्यिक रूप से बड़ा ही सुन्दर हुआ है। 'तुलसीदास' में कहानी की अपेक्षा चिन्तन अधिक है। तुलसी के मन का उद्घाटन ही कवि का ध्येय है। पर उससे भी अधिक इसमें सांस्कृतिक इतिहास समाहित हो गया है -

'भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे - तमस्तूर्य दिङ्मण्डल
उर के आसन पर शिरस्त्राण।
शासन करते हैं मुसलमान ॥'[१]

कुकुरमुत्ता

यह १९४२[२] में प्रकाशित हुआ, जबकि निराला रचनावली में इसका प्रकाशन वर्ष १९४३ बताया गया है। काव्य के क्षेत्र में यह नवीन प्रयोग है। व्यंग्य भाव इस कविता संग्रह की सभी कविताओं का मूल स्वर है। जब कि संकलन में 'गर्म पकौड़ी' और 'प्रेम संगीत' रोमांस विरोधी कविताँ हैं। 'प्रेम संगीत' में कवि पनिहारिन की कुरूप लड़की से प्यार करता है। 'रानी और कानी' यथार्थवाद का प्रभाव है। 'खजोहरा' टैगोर के 'विजयिनी' की पैरोडी है। 'मास्को डायलाग्स' और 'स्फटिक शिला' भी यथार्थवादी कविताएँ हैं। यहाँ कई कविताओं में हास्य के भीतर निराला का सामाजिक यथार्थ का गहरा बोध छिपा हुआ है। 'कुकुरमुत्ता' उनकी ऐसी कविता है, जिसमें व्यंग्य की धार दोहरी है। उसमें एक तरफ वे पूँजीपति-वर्ग पर व्यंग्य करते हैं, दूसरी तरफ संकीर्णतावादी प्रगतिशील दृष्टि पर।[३] इस प्रकार उनका 'कुकुरमुत्ता' एक व्यापक सन्दर्भ से जुड़ जाता है और सम्पूर्ण मानवता एवं शोषितों का प्रतीक बन जाता है।

---

१. निराला रचनावली - १, पृ० २६७
३. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास - १०, सं० डा० नगेन्द्र, पृ० १६३
४. निराला रचनावली - २, पृ० १३

अणिमा

अणिमा का वास्तविक प्रकाशन काल १९४३ के सितम्बर का उत्तरार्द्ध है।[1] यह भी युग मन्दिर उन्नाव से प्रकाशित हुई। अणिमा के गीत व्यंग्य की अपेक्षा शान्तिप्रद हैं। इसमें संसार के लिये सन्देश, आत्म-निवेदन, महापुरुष वन्दना है। इस प्रकार के गीतों में प्रार्थना अधिक और कवित्व कम है। इस संग्रह में रवीन्द्रनाथ, आचार्य शुक्ल, प्रसाद, विजय लक्ष्मी पंडित तथा महादेवी पर भी कविताएँ हैं। 'प्रसाद के प्रति' में अन्य अनेक साहित्यिकों को स्मरण किया गया है। 'भगवान बुद्ध के प्रति' कविता में बौद्ध-दर्शन के साथ साथ गाँधी विचारधारा का समावेश है। 'अणिमा' की विषयवस्तु मानव-मानव की समता पर केन्द्रित है।

बेला

प्रथम बार जनवरी १९४६ में 'हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स', शाहगंज-इलाहाबाद से प्रकाशित हुई।[2] 'बेला' के गीत एवं ग़ज़लें भी विविध विषयी हैं। इनमें आध्यात्मिकता, राष्ट्रीयता और समाजवादी विचारधारा से प्रभावित अनेक गीत हैं।

नये पत्ते

'नये पत्ते' १९४६ के मार्च के उत्तरार्द्ध निकला। इसका प्रकाशन वहीं से हुआ था, जहाँ से बेला का।[3] इस संग्रह में 'कुकुरमुत्ता' संकलन की भी कुछ कविताएँ ली गयी हैं। वर्ग-संघर्ष तथा चुटीले व्यंग का काफी प्रभाव है। मिल मालिकों, पूँजीपतियों और नेता बनने वालों पर कोप-दृष्टि रही है। 'थोड़ों के पेट में बहुतों का आना पड़ा' और 'इस प्रकार जनता पर जादू चला रोजे के समाज का' के उद्‌घोष में यही स्वर सुना जा सकता है। 'डिप्टी साहब आये' 'महगू महंगा रहा', 'छलाँग मारता चला गया', 'झींगुर डट कर बोला' आदि विशिष्ट कविताएँ हैं।

---

१. निराला रचनावली - २, पृ० १०
२. वही,
३. वही, पृ० ११

अपरा

अपरा १९४६[१] में प्रकाशित हुआ। साहित्यकार संसद, प्रयाग ने इसका प्रकाशन किया। इस संकलन में निराला की विभिन्न प्रकाशित-अप्रकाशित कविताओं का संग्रह है। इसमें निराला की सर्वश्रेष्ठ कविताएँ 'राम की शक्तिपूजा', सरोज-स्मृति', 'जागो फिर एक बार', 'बादल राग' आदि हैं।

अर्चना

यह संग्रह १९५० ई० के अन्त तक प्रकाशित हो गया था।[२] कला मन्दिर प्रयाग से उमाशंकर सिंह ने इसका प्रकाशन किया। इसके स्वयोक्ति में निराला लिखते हैं, 'परीक्षण में उत्तीर्ण होने पर हम श्रम को सार्थक समझेगें। यह पुस्तिका के बहिरंग की व्यापारिक बात हुई, जिस पर आश्रम - जीवन की दिनचर्या, भोजन-पान आदि निर्भर है, अन्तरंग विषय यौवन से अतिक्रान्त कवि के परलोक से सम्बद्ध है, इसलिए यहाँ सम्मति का फल निष्काम में ही होगा।'[३] अर्चना का प्रारम्भ निम्न पंक्तियों से होता है -

'भव - अर्णव की तरणी तरुणा,
बरसी तुम नयनों से करुणा।'[४]

आराधना

आराधना १९५३ ई० के अन्त में साहित्यकार संसद, प्रयाग से प्रकाशित हुई थी।[५] इसकी भूमिका में महादेवी ने कहा है - ''जीवन में जो कुछ सत्य, सुन्दर और मंगलमय है, वही

---

१. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास - १०, सं० डॉ० नगेन्द, पृ० १६३
२. निराला रचनावली - २, पृ० १३
३. वही, पृ० ४९५

निराला का आराध्य रहा है। 'आराधना' भी उसी जीवनव्यापी अर्चन की एक कड़ी है।'' 'अर्चना' की सापेक्षता में 'आराधना' निराला की व्यापकतर लोक भावना और सहजतर लोकदृष्टि प्रस्तुत करती है। कवि स्वयं कहता है कि अब पहले की रचना बदल गयी है, क्योंकि अब श्रेयस ही प्रेयस बन गया है, और ....

'ऊँचा स्तर नीचे आया है,
तरु के तर फैली छाया है
ऊपर उपवन फल आया है
छल से छुटकर मन अपना।'[१]

गीत – गुंज

इसका प्रकाशन काल १९५८[२] है। इसमें सात गीत पुराने भी थे, एक अर्चना और छः आराधना का, इनको लेकर कुल छब्बीस गीत संकलित थे। इसकी विषय-वस्तु कबीर की साखी और सबद से मिलता-जुलता है। सीधी राह चलना ही निराला पसन्द करते हैं -

'सीधी राह मुझे चलने दो
अपने ही जीवन फलने दो।'[३]

– काकली

इसका प्रकाशन निराला के मरणोपरान्त हुआ। 'जनवरी १९६९ में वसुमती, ३८ जीरो रोड, इलाहाबाद'[४] से हुआ। इस संग्रह की कविताओं में अभिव्यक्ति से अधिक चित्रात्मकता दृष्टिगत होती है। 'ताक कमसिनवारि' में अर्थ गौण है और ध्वनि क्रीड़ा प्रधान है।

---

१. निराला रचनावली - २, पृ० १३
२. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास - १०, सं० डॉ० नगेन्द, पृ० १६३
३. निराला रचनावली - २, पृ० ४२९
४. वही, पृ० १४

निराला का गद्य साहित्य

निराला ने गद्य साहित्य में भी अपना अप्रतिम योगदान दिया। कविताओं की तरह उनका गद्य भी सजीव, रोचक और विभावना व्यापार से युक्त है। उनके व्यक्तित्व की ऊर्जस्वविता, तेजस्विता यहाँ भी उतनी ही मुखर और गतिशील है। उनके उपन्यास यथार्थ और कल्पना के सर्वोत्तम समन्वय के रूप में हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। कहानियाँ भी युगीन सन्दर्भों के साथ जुड़ी होकर कहानी कला को भी अभिव्यंजित करती हैं। इनमें दार्शनिकता एवं मानवतावादी दृष्टिकोंण प्रचुर मात्रा में देखा जा सकता है। उनके निबन्ध समसामयिक समस्याओं का जीवन्त दस्तावेज हैं, जिनका स्वर भी बहुमुखी और उत्तरदायित्वपूर्ण है। इनमें सामाजिक, दार्शनिक, राष्ट्रीय, धार्मिक क्षेत्रों का विहंगम दृष्टावलोकन है। उनकी 'आलोचना' साहित्यिक रूढ़िवाद के विरूद्ध अभियान ही नहीं अपितु साहित्येतर प्रवृत्तियों को भी प्रमुखता के साथ व्यक्त करती है। निराला का बाल-साहित्य भी बालकों के बहुपक्षीय विकास को ध्यान में रख कर रचा गया है। जब कि 'रामायण की अन्तर्कथाएँ' में प्रेरणास्पद और गरिमामय कृतियों की परम्परा को देखा और समझा जा सकता है। इस तरह हम देखते हैं कि गद्य की प्रचलित विधाओं पर भी अपने व्यक्तित्व की अद्वितीय छाप छोड़ते हैं। उनका पर्यावरण और परिस्थिति इन विधाओं में भी वही प्रभाव छोड़ता है, जैसे कविता में। उनकी अविचल जीवन शक्ति चतुर्दिक प्रसारित होकर निर्वैयक्तिक एवं सार्वभौमिक बन जाती है, जिसके आलोक में सम्पूर्ण साहित्य और संसार समाज की बुनावट और सार्थकता का परीक्षण करता है। परीक्षण के साथ ही साथ उसका सम्यक निदान और उपचार भी वहॉ उपलब्ध हो जाता है, जिससे हम निराला को शाश्वत भावबोध का साहित्यकार कह पाने का पूरा - पूरा अधिकार पाते हैं। जो उनके वेदान्त और लोकसंग्रह की एकन्वित विचारधारा के साथ साहित्य भूमि से उतर कर चुपचाप लोकोन्मुखी दृष्टि प्राप्त कर लेता है। जिसे हम सजीव सत्य के माध्यम से भी परिभासित कर सकते हैं।

निराला के उपन्यास

निराला ने उपन्यास लेखन भी दो चरणों में किया है। पहले चरण में उन्होंने अप्सरा,

अलका, प्रभावती और निरूपमा नामक उपन्यास लिखे और दूसरे चरण में कुल्ली भाट, बिल्लेसुर, बकरिहा, चोटी की पकड़ और काले कारनामे नामक उपन्यास ।[१]

इनका पहला उपन्यास 'अप्सरा' है । जो 'सुधा' (मासिक, लखनऊ) के छः अंकों (अगस्त १९३० से जनवरी १९३१ तक) में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था । पुस्तक के रूप में उसका प्रकाशन संवत् १९८८ वि० (१९३१ ई०) में गंगा-पुस्तकमाला, कार्यालय - लखनऊ से हुआ । इस उपन्यास की भूमिका के नीचे १ जनवरी १९३१ ई० की तिथि दी है । इससे अनुमान होता है कि यह १९३१ ई० के आरम्भ में ही निकल गया था ।[२] यह एक कल्पना प्रधान उपन्यास है, जिसमें यथार्थ के हल्के छींटे भी पड़ते हैं । इसमें कनक और राजकुमार के प्रेम की कथा है, सारी रोमानियत के बावजूद चन्दन के माध्यम से कथानक को यथार्थवादी पुट भी दिया है । कलकत्ते के आस-पास के वातावरण का चित्रण कर सामन्तवादी एवं साम्राज्यवादी परिस्थितियों का सम्पूर्ण प्रभाव भी उपन्यास में दिखलाया गया है । राजकुमार द्वारा कर्तव्य और देश-प्रेम के लिए कनक का आग्रह ठुकरा देना, इसे तत्कालीन सन्दर्भों से भी जोड़ देता है । राजकुमार और चन्दन का साहित्य भी तत्कालीन परिदृश्यों पर आधारित है । किसानों का संगठन करने के अपराध में चन्दन सिंह को गिरफ्तार किया जाना जहाँ इसे युगीन यथार्थ की ओर ले जाता है, वहीं कनक को उपहार के रूप में चन्दन द्वारा 'स्वदेशी आन्दोलन का प्रतीक चर्खा' देना राष्ट्रीय आन्दोलन की स्वाभाविक परिणति के रूप में देखा जा सकता है । घटना प्रधान इस उपन्यास में कल्पना के आदर्शो से युक्त पात्र और उसी तरह अलंकरण युक्त भाषा का भी प्रयोग किया गया है । स्थान-स्थान पर निराला का कवि रूप भारी पड़ता दिखाई पड़ता दिखाई देता है । इसमें लेखक का ध्यान परिवेश पर कम रोचकता पर अधिक केन्द्रित है, अतएव आदर्श की समुचित स्थापना नहीं हो पाई है । इसके प्रमुख पात्र कनक, राजकुमार, चन्दन, तारा, नन्दन, सर्वेश्वरी, हेमिल्टन, विजयपुर के राजकुँवर साहब हैं । इस उपन्यास की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है -

१७ वर्षीया गन्धर्व कुमारी कनक ईडन-गार्डन में अकेली घूम रही थी तभी एक अंग्रेज पुलिस सुपरिटेंडेंट हैमिल्टन ने उसे अकेली देखकर उसके साथ अनुचित व्यवहार करना

---

१. निराला रचनावली - ३ पृ० ९
२. वही,

चाहा। तभी सिटी कालेज के प्रवक्ता राजकुमार वर्मा जो वहाँ घूमने आया था, उसे देख लिया और हैमिल्टन के चंगुल से बचाकर कनक को बाहर उसके कार तक छोड़ आया।

इसके कुछ दिन बाद कोहनूर थियेटर में नाटक 'शकुन्तला' खेला जाता है, जिसके स्टेज पर कनक शकुन्तला और राजकुमार दुष्यन्त का अभिनय कर रहे थे, उसी समय कनक ने मन ही मन पति मान लिया और पूर्ण हृदय से उसके गले में जयमाल डाल दी। उसी समय दारोगा साहब थियेटर में आये और नाटक समाप्त होते ही राजकुमार को हैमिल्टन साहब का अपमान करने के अपराध में हिरासत में ले लिया। कनक ने अपनी ईसाई अध्यापिका कैथरीन की सहायता से उसे छुड़ा लिया और अपने घर ले आई। राजकुमार जब कनक की वास्तविकता और 'उसके अन्तर्मन में पति - रूप में अपनी स्थापना' को जानता है, तब देश, समाज और राष्ट्र की सेवा को मुख्य ध्येय समझकर कनक का आग्रह ठुकरा देता है।

वहीं राजकुमार का मित्र चन्दन किसान-संगठन-कार्य के सम्बन्ध में गिरफ्तार कर लिया जाता है, वह चन्दन के घर जाता है, जहाँ चन्दन की भाभी तारा अकेली मिलती है। तारा को उसके मायके विजयपुर छोड़ने के ही सन्दर्भ में कनक-प्रणय पर चर्चा होती है। उधर विजयपुर के युवराज के राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में कनक अपनी विक्षुब्ध मानसिक अवस्था में अपनी माँ के साथ वहाँ जाना स्वीकार कर लेती है; किन्तु वहाँ युवराज उसे अपने चंगुल में फंसा लेता है। तारा नें उसके आगमन का समाचार जानकर तत्काल जेल से छूट कर आये हुये चन्दन को उसके सहायतार्थ भेजा और कनक को छुड़ा लिया। फिर राजकुमार और कनक के प्रणय-कलह को समाप्त किया, और विधिपूर्वक उनका विवाह सम्पन्न करवा दिया। कनक के रियासत से भगा लेने के अपराध में राजकुमार के स्थान पर स्वयं चन्दन ने अपने आप को बन्दी करवा लिया। राजकुमार और कनक तुष्टिपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

अलका

कलकत्ते के विपरीत अवध के देशकाल एवं वातावरण पर आधारित उनका दूसरा उपन्यास 'अलका' है। 'अलका का प्रकाशन वर्ष संवत् १९९० वि० (१९३३ ई०) है। अक्टूबर

परिस्थिति का लाभ उठाकर मुरलीधर शोभा के पड़ोसी महादेव के माध्यम से उसे फॅसाने का प्रयास करता है । एक सखी राधा कहारिन के द्वारा वास्तविकता का पता लगने पर शोभा वहॉ से भाग जाती है और विपन्नावस्था में लखनऊ के जमींदार ज्ञानशंकर के घर 'अलका' नाम से अभय दान पाती है ।

शोभा का पति समाचार पाकर ससुराल पहुँचता है, किन्तु वहॉ किसी को न पाकर अपने मित्र अजित के पास चला आता है । उसके साथ गॉव-सुधार करते हुए शोभा को खोजने का प्रयास जारी रखता है, पर गिरफ्तार कर लिया जाता है । जेल से छूटकर वह लखनऊ में प्रभाकर के नाम से रहने लगता है । विजय उसकी खोज का निष्फल प्रयत्न करता है, एक बाल विधवा वीणा से 'अजित' प्रणय-बन्धन में बॅध जाता ह । दोनो पति-पत्नी शोभा और विजय की खोज में लखनऊ आते हैं ।

अलका का परिचय स्नेहशंकर द्वारा कई सभ्य लोगों से होता है । डिप्टी कमिश्नर ज्ञानप्रकाश भी उन्हीं में से एक हैं जो निःसंतान हैं और अलका से अत्यधिक स्नेह करते हैं । इन्हीं के घर अलका का परिचय प्रभाकर से होता है और दोनो ही अनजाने ही एक दूसरे की ओर आकर्षित हो जाते हैं ।

इधर मुरलीधर शोभा के भाग जाने का समाचार पाकर अत्यन्त क्षुब्ध हो उठता है । किसी कार्यवश लखनऊ आने पर अलका को वहॉ देखता है और महादेव से यह जानकर कि अलका ही शोभा है, वह उसे पाने को लालायित हो उठता है । अलका मुरलीधर का परिचय स्नेहशंकर द्वारा पा लेती है और एक षड़यन्त्र द्वारा उसी के पिस्तौल से उसकी हत्या कर देती है । पीछे आ रहा प्रभाकर कुछ जान नहीं पाता, किन्तु अलका को घबराया हुआ पाकर उसे घर तक छोड़ने जाता है और स्नेहशंकर के कहने पर वहीं रूक जाता है । प्रातः वहीं उसकी अजित से भेट होती है, पति-पत्नी का भी मिलन होता है । अदालत में साबित होता है कि मुरलीधर ने शराब के नशे में आत्महत्या कर ली है, क्योकि पिस्तौल और कारतूस स्वयं उन्हीं का था ।

प्रभावती

यह निराला का ऐतिहासिक उपन्यास है । जो १९३६ ई० में सरस्वती पुस्तक भंडार

१९३३ को 'सुधा' में 'नये फूल' शीर्षक स्तम्भ के अन्तर्गत जो सूचना दी गयी है, उसके अनुसार यह १९३३ के सितम्बर में छपकर बाहर आयी। यह भी गंगा पुस्तकालय - कार्यालय लखनऊ से ही प्रकाशित हुई थी।[1] अलका कल्पना और यथार्थ के सम्मिश्रण से बना हुआ उपन्यास है।[2] शोभा परिस्थितियों वश गॉव से भागती है और जमींदार स्नेहशंकर के आश्रय में 'अलका' के नाम से शरण लेती है, जो बाद में उसके धर्मपिता बन जाते हैं। उसका पति 'विजय' भी देश व समाज सेवा का व्रत लेता है, वह अजित के साथ मिलकर चेतना प्रसार के कार्य में लग जाता है। शिक्षा के द्वारा पीड़ित मानवता का कल्याण करने का प्रयास अजित व विजय करते हैं। सावित्री और वीणा के रूप में दो पात्र नारी चेतना के प्रतिनिधि पात्र हैं। स्नेहशंकर मानवीयता के पूरक पात्र हैं।

'अप्सरा' के विपरीत 'अलका' में यथार्थ का चित्रण अधिक मात्रा में मिलता है। राष्ट्रीय आन्दोलन की पृष्ठभूमि इस उपन्यास की गहरी प्रेरणा का माध्यम बनती है। स्वाधीनता-आन्दोलन एक ओर उपनिवेश-विरोधी था और दूसरी ओर सामन्त-विरोधी। इस उपन्यास में यह सत्य उपस्थित हो गया है। इसमें लेखक नवयुवकों और नवयुवतियों के समक्ष सामन्ती रूढ़ियों को तोड़कर एक सामाजिक आदर्श रखने की भावना का आदर्श रखता दिखाई पड़ता है। इस उपन्यास में ग्राम जीवन का व्यापक चित्रण है, जो प्रेमचन्द के उपन्यासों के अलावा किसी अन्य उपन्यास में नहीं है। इसमें भाषा के स्तर पर दो भेद दिखाई पड़ते हैं; एक भाषा वह है, जिसमें कल्पना प्रसूत चित्रकारी है, जो कवि प्रभाव का द्योतक भी है; वहीं दूसरी ओर यथार्थ की धारदार भाषा है। इस तरह 'अलका' में निराला का व्यक्तित्व अपनी सम्पूर्ण मुखरता के साथ व्यक्त हुआ है; इसमें समाज व देश के प्रति लेखक का उत्तरदायित्व भी अधिक तत्परता के साथ उठाया गया है, जो कृति को प्राणवन्त बना देता है। इसका कथानक संक्षेप में दिया जा रहा है -

अवध का तअल्लुकेदार मुरलीधर अत्यन्त दुश्चरित्र व्यक्ति है। उसी गाँव में युवती शोभा अपनी मॉ के साथ रहती है, मॉ महामारी का शिकार हो जाती है। शोभा का विवाह हुआ है किन्तु गौना नहीं गया है। ससुराल भेजे पत्र का कोई जवाब नहीं आता, पति को पहचानती भी नही।

---

१. निराला रचनावली - ३, पृ० ९
२. वही, पृ० १०

लखनऊ से निकला । इसके प्रथम संस्करण में श्री रूपनारायण पाण्डेय लिखित जो भूमिका है, उसके नीचे ११ फरवरी १९३६ की तिथि दी गयी है । निराला ने पुस्तक के समर्पण के नीचे १ मार्च १९३६ की तिथि दी है । इससे यह समझा जा सकता है कि यह उपन्यास १९३६ ई० के पूर्वार्द्ध में प्रकाशित हुआ था ।[१] इस उपन्यास में पृथ्वीराज और जयचन्द काल के उत्तर भारत के राजाओं के आपसी संघर्ष का चित्रण है । इस संघर्ष की पृष्ठभूमि प्रायः कन्याओं के विवाह और कन्यादान से प्रारम्भ होती है, जो कालान्तर में व्यापक युद्ध का रूप ले लेती है । यमुना, प्रभावती, विद्या, रत्नावली आदि वीर नारियों के चित्रण के माध्यम से आधुनिक नारी-उत्थान आन्दोलन की गहरी चेतना भी व्यंजित हो जाती है । इसमें भाषा और शैली का स्वरूप भी कुछ परिवर्तित है और घटनाओं की बहुलता यहाँ भी दिखाई पड़ती है । इस उपन्यास को हम ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रृंखला में सम्मानित स्थान दे सकते हैं ।

निरूपमा

निराला ने इस उपन्यास की भूमिका में इसे अपना चौथा उपन्यास माना है । 'निरूपमा का प्रकाशन वर्ष भी १९३६ ई० ही है । यह भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद से निकली थी । इसमें समर्पण के नीचे निराला ने २१ मार्च १९३६ की तिथि दी है ।'[२] इस उपन्यास की पृष्ठभूमि बंगाल के नवजागरण से जुड़ी हुई है । इसमें भी नगर एवं ग्राम कथा को एक सूत्र में पिरोकर प्रस्तुत किया गया है । 'निरुपमा' एक जमींदार है, जो एक साधारण किन्तु बौद्धिक युवक 'कुमार' के प्रति आकर्षित होती है; जो अपने आप में भारत का सच्चा रूप देख रहा है । 'रामपुर' ग्राम के प्रसंग में सामाजिक खोखलेपन और संकीर्णता पर करारा व्यंग किया गया है । योगेश बाबू और सुरेश, निरूपमा के प्रति अर्थ लोभ से ग्रसित हैं । कृष्णकुमार के भाई रामचन्द्र को गॉव से बहिष्कृत कर देना और उससे निरूपमा का सहज सम्बन्ध न रख पाना तथा कुमार का जूते पालिश का कार्य उपन्यास को समसामयिक सन्दर्भ प्रदान करता है । पात्रों में एक तरह की संजीदगी है और भाषा के स्तर पर कुछ खास परिवर्तन नहीं है । निराला का नव शिक्षित तरुणियों के माध्यम से नारी-

---

१. निराला रचनावली - ३ पृ० ९
२. वही

-जाति की मुक्ति का आग्रह इस उपन्यास का केन्द्रवर्ती सन्देश है, जो नवजागरण के परिदृश्य से जुड़कर और अधिक तीक्ष्ण हो उठता है। इसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है -

निरूपमा जमींदार रामलोचन की इकलौती लड़की है। पिता के देहावसान के बाद सारी जमींदारी उसी की हो गयी। अपने मामा योगेश बाबू के संरक्षण में वह लखनऊ में रहती है, मामा का लड़का सुरेश उसकी जमींदारी सॅभालता है। योगेश की साली का लड़का यामिनी हरण है, जिसके साथ योगेश बाबू निरूपमा का विवाह सम्बन्ध करना चाहते हैं।

कृष्णकुमार लन्दन से डी० लिट्० करके आया है। उसके पास रामपुर गाँव में बाग एवं खेत था, जो रामखेलावन के यहाँ पढ़ाई के सिलसिले में गिरवी था। अब वह बाग व खेत निरूपमा के अधीन था। नौकरी न मिल पाने के कारण जूते पालिश का कार्य करने लगता है। काम के सिलसिले में वह निरूपमा के यहॉ जा चुका था और उससे पहले ही सामने वाले होटल में रहते हुये उसका निरूपमा से साक्षात्कार हो चुका है और अज्ञात आकर्षण की डोरी में दोनो उलझ चुके हैं।

जूते पालिश करने के सिलसिले में कुमार की मुलाकात कमल से होती है, और वह उसकी योग्यता से प्रभावित होकर उसे दो सौ रूपये महीने पर अपना ट्यूटर नियुक्त कर लेती है। कमल निरूपमा की सहेली है। यामिनी को भी वह जानती है और एक दिन उसे अपने सहपाठिनी मिस दूबे का पत्र मिलता है, जिसमें उसने अपने और यामिनी के प्रेम-सम्बन्ध की चर्चा करते हुए अपने गर्भ रह जाने का भी जिक्र किया है। इस बारे में वह निरूपमा को भी सावधान करती है। इस बीच कुमार की मॉ से मिल चुकी है, और मॉ को भी नीली द्वारा इनके परस्पर प्रेम का पता चल चुका है। वह निरूपमा को सहर्ष अपनी बहू बनाना स्वीकार करती है।

इधर कमल के प्रयत्नों द्वारा यामिनी हरण का विवाह मिस दूबे से हो जाता है और उसी शुभ घड़ी में ही निरूपमा भी कुमार के साथ विवाह बन्धन में बॅध जाती है। कुमार की सारी सम्पत्ति वह उसके छोटे भाई रामचन्द्र के नाम कर देती है।

चोटी की पकड

निराला ने इस उपन्यास की भूमिका में लिखा है, वे स्वदेशी आन्दोलन को विषय बनाकर चार खण्डों में उपन्यास लिखना चाहते थे । उनकी वह इच्छा पूरी नहीं हुई और उक्त उपन्यास के बाकी तीन खण्ड नहीं लिखे गये । यह उपन्यास १९४६ ई० में किताब महल, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ । निराला के पत्रों से यह पता चलता है कि इसे उन्होने १९४३ ई० के अन्त तक पूरा कर लिया था । १९४४ ई० के आरम्भ में ही यह छपने के लिये प्रेस गया, लेकिन यह निकला जाकर १९४६ ई० के मार्च में ।[१] स्वदेशी आन्दोलन को विषय बनाने के बाद भी तत्सम्बन्धित कथा को बहुत कम स्थान मिला है । अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि यह उपन्यास हमें स्वदेशी आन्दोलन के उस दौर की सूचना देता है जिसमें कुछ सामन्त और राजा भी सम्मिलित होने लगे थे । सामन्ती परिवेश को उसके षड्यन्त्रों और विलासिता के साथ चित्रित किया गया है । भाषा का गठन भी उचित बन पड़ा है । कथा संक्षिप्त रूप में इस प्रकार है -

राजेन्द्र प्रताप एक बड़े जमींदार हैं । उन्होंने एक गरीब लड़के को पढ़ा-लिखा कर उसका विवाह अपनी लड़की से कर दिया । विवाह के साथ ही दामाद के परिवार वाले भी वहॉ आ गये । पच्चीस वर्षीया बूआ और बूढ़ी मौसी उन्हीं में एक थी । रानी साहिबा बुआ को अपमानित करने का प्रयास करती हैं । बलात्कार के चिन्ह को मुँह में निशान को दिखाकर बुआ को शर्मिन्दा करना चाहा, तो बुआ ने स्पष्ट रूप से कह दिया, जैसा हो हमारा चेहरा, वैसा ही हमारे भतीजे का भी है, फिर उस दामाद का चेहरा उन लोगों को कैसे पसन्द आ गया । रानी पर घड़ों पानी फिर गया ।

उधर देश में बंगभंग आन्दोलन का जोर था । थानेदार राजा महेन्द्र प्रताप से स्वदेशी आन्दोलन का भेद लेना चाहता है । पर उनकी परिस्थिति से वे भी, रखैल वेश्या एजाज सहित सरकार विरोधी आन्दोलन में सम्मिलित हो जाते हैं और स्वदेशी कार्यकर्ता प्रभाकर को महल में छिपाकर रखने की अनुमति दे देते हैं ।

इधर बुआ से अपमान का बदला लेने के लिए रानी अपनी दासी मुन्ना को नियुक्त

---

१.   निराला रचनावली - ४   पृ० ९

करती है । मुन्ना ने गहरा हाथ मारा, रानी के नाम से खजाने में चोरी करावाई, और मुसलमान सिपाही द्वारा बुआ का सतीत्व भंग करने की योजना बनाई । किन्तु ठीक समय पर प्रभाकर पहुँच गया । मुन्ना से मिलकर प्रभाकर रानी साहिबा से इस शर्त पर स्वदेशी आन्दोलन में सहायता देने का वचन लेता है कि राजा साहब के जीवन से एजाज को अलग कर देगा ।

कुल्ली भाट

यह एक संस्मरणात्मक उपन्यास है । इसके आरम्भिक तीन परिच्छेद 'माधुरी' (मासिक-लखनऊ) के मार्च १९३८ के अंक में प्रकाशित हुए थे । इसी पत्रिका के अक्टूबर, १९३८ के अंक में भी दो परिच्छेद निकले । उसी वर्ष 'चकल्लस' (साप्ताहिक-लखनऊ) के मई अंक में भी 'मेरी ससुराल यात्रा' शीर्षक से उसका दूसरा परिच्छेद निकला था । पुस्तक रूप में 'कुल्ली भाट' का प्रकाशन संवत् १९९६ वि० (१९३९ ई०) में गंगा पुस्तकमाला-कार्यालय लखनऊ से हुआ । भूमिका के नीचे निराला ने १० मई १९३९ ई० की तिथि दी है ।[१]

इस उपन्यास में कुल्ली भाट और निराला की कथा साथ साथ चलती है । दोनो के प्रसंग भी एक दूसरे से जुड़ते हुए चलते हैं । पूरे उपन्यास में कसावट एवं बुनावट की सघनता से कथा शिल्प में निखार आ गया है, लेखक कहीं भी बहकता हुआ नहीं दिखाई देता । कुल्ली जैसे साधारण व्यक्ति का परिवर्तन किस तरह उदात्त चरित्र में होकर प्रेरक लगने लगता है । 'निराला ने बड़ी खूबी से इस उपन्यास में यह दिखलाया है कि चरित्र का निर्माण जन आन्दोलनों में होता है । जनान्दोलन मनुष्य के चरित्र को उसकी कमजोरियों और विकृतियों से मुक्त कर उसे अत्यन्त उदात्त स्तर पर पहुँचा देते हैं ।[२] निराला संवेदना के स्तर पर कुल्ली से जुड़े हुए हैं और बड़े कौशल से कथा नायक के चरित्र को उद्घाटित करते हैं । चरित्र भी कैसा ? कुल्ली एक बिल्कुल मामूली चरित्र है, जो आरम्भ में एक एक्का चलवाता है और यौन विकृति का शिकार है । धीरे-धीरे वह स्वाधीनता आन्दोलन में सम्मिलित होता है और कांग्रेस का कार्यकर्ता बन जाता है । इस क्रम में उसके चरित्र में

---

१. निराला रचनावली - ४, पृ० ९
२. वही, पृ० ११

आश्चर्यजनक परिवर्तन होता है, वह कुन्दन की तरह निखर उठता है ।[१] भाषा भी अभिव्यक्ति में सहायक बन कर उभरी है । 'अनुभूति और अभिव्यक्ति' दोनो स्तरों पर निराला के जुड़ने से कथा में जीवन्तता दिखाई पड़ती है । इस तरह निराला ने इस उपन्यास के माध्यम से नायकत्व के मिथक को बड़ी सूक्ष्मता से तोड़ा है । कुल्ली के बारे में भूमिका में लिखते हैं, 'कुल्ली सबसे पहले मनुष्य थे, ऐसे मनुष्य, जिनका मनुष्य की दृष्टि में बराबर आदर रहेगा ।'[२] इस संस्मरणात्मक उपन्यास की कथा इस प्रकार है -

'कुल्ली भाट' में निराला ने अपने मित्र के रूप में कुल्ली का चित्रण किया है । उसके चरित्र का आत्म - चरित्र भी विस्तृत हुआ है । इसकी कथा उस समय आरम्भ होती है, जब निराला सोलह साल के थे और नई-नई शादी कराके गौने के लिए ससुराल गये थे । ससुराल जाते हुए स्टेशन पर ही कुल्ली अपने इक्के सहित विराजमान थे । उसी के इक्के पर निराला घर पहुँचे । सास का पहला प्रश्न था, 'तुम कुल्ली के इक्के पर आये हो ?' रात्रि को पत्नी कमरे में पधारीं; आते ही प्रश्न किया, 'तुम कुल्ली के इक्के पर आये हो ?' इन प्रश्नों ने निराला के लिए कुल्ली को विशिष्ट बना दिया । अगले दिन कुल्ली आये और उसी शाम गॉव की कुछ ऐतिहासिक वस्तुएँ देखने का निमंत्रण दे गये । सास ने सुना, शंकित हुई और निराला के नौकर चंडिका को उन दोनो के साथ कर दिया, जिसे निराला ने किसी अन्य कार्य से टरका दिया । कुल्ली से परिचय बढ़ता गया । अगले दिन कुल्ली के निमंत्रण पर घर गये । इसी समय पत्नी के सुरीले कंठ से गान सुने, सुनकर पराजित हो गये, बस बिस्तर बॉधकर कलकत्ता रवाना हो गये ।

कुछ वर्षों बाद ही देश में महामारी का प्रकोप हुआ । निराला की पत्नी तथा अन्य कई सम्बन्धी भी कालकवलित हो गये । निराला ससुराल आये, कुल्ली से भेंट हुई । कुल्ली ने सहानुभूति जताई, संसार की असारता समझाई । समय बदला, निराला पूर्ण रूप से 'साहित्यिक' बन गये । कुल्ली भी अछूतोद्धार की समस्या में भाग ले कर राजनीतिक नेता बन गये । हरिजन बच्चों के लिए विद्यालय खोल लिया, समाज के इतने विरोध के बावजूद निःस्वार्थ भाव से अपना सुधार कार्य किये जा रहे हैं । कुल्ली ने हिन्दू-मुस्लिम समस्या से तटस्थ रह कर एक मुसलमानिन से

---

१. निराला रचनावली - ४, पृ० ११
२. 'कुल्ली भाट' की भूमिका से

विवाह किया, जिस पर निराला की सहमति भी प्राप्त हुई । राजनीतिक भाग-दौड़ में उन्हें गर्मी का प्रकोप हो गया, बुखार बढ़ने लगा । गाँव भर से चन्दा इकठ्ठा करके कुल्ली को बड़े अस्पताल ले जाया गया, किन्तु वे बचे नहीं । मुतक संस्कार उनकी पत्नी ने जोर-शोर से किया । परन्तु एकादशाह के दिन पंडितजी ने उनके घर आने से इंकार कर दिया, कहा कुल्ली की पत्नी मुसलमानिन है, हालांकि वह हिन्दू धर्म में दीक्षित हो गई थी । निराला इस अवसर पर काम आये और उनके घर जाकर स्वयं रचित मंत्रों से सारी क्रिया करा दी । लोग प्रभावित हो गये, कहा कुल्ली का परलोक बना ।

बिल्लेसुर बकरिहा

बिल्लेसुर एक संस्मरणात्मक नहीं, रेखाचित्रात्मक उपन्यास है ।[१] इसके दो आरम्भिक अंश 'रूपाभ' (मासिक, कालाकांकर) के क्रमशः मार्च, अप्रैल १९३९ के अंकों में प्रकाशित हुए थे । यह पुस्तकाकार में १९४२ ई० में युग-मन्दिर उन्नाव से निकला । भूमिका के नीचे निराला ने २५ दिसम्बर १९४१ की जो तिथि दी है, उससे उेसा लगता है कि यी उपन्यास १९४२ ई० के आरम्भ में ही निकल गया होगा ।[२] कुल्ली भाट के विपरीत लेखक ने अपने को इसकी कथा से अलग रखा है । बिल्लेसुर के माध्यम से एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया है, जो जीवित रहने के लिए अथक प्रयत्न करता है और अन्ततः विजयी होता है ।[३] बिल्लेसुर निराला के रचना संसार के श्रेष्ठतम कथानायक है । वे अन्त तक अपराजित रहते हैं । डा० रामविलास शर्मा बिल्लेसुर के साधनहीन और अपराजेय कर्मठता को स्वीकारते हैं । लेखक ने दिखाया है कि साधन न होने पर भी अवध का एक साधारण किसान किस तरह अपनी रोटी की लड़ाई लड़ता है ।

निराला के प्रारम्भिक उपन्यासों में कल्पना और यथार्थ के बीच जो संघर्ष चल रहा था, उसका परिणाम यथार्थ की विजय के रूप में इस उपन्यास में देखा जा सकता है । अलका और निरूपमा में ग्रमीण जीवन का जो चित्रण हुआ है उसका चरम भी इस उपन्यास में दिखाई पड़ता है ।

---

१. निराला रचनावली - ४, पृ० ११
२. वही, पृ० ९
३. वही, पृ० ११

व्यंग्य के प्रहारों से युक्त 'बिल्लेसुर बकरिहा' उपन्यास में सामाजिक, आर्थिक और सामाजिक पाखण्डों पर जम कर प्रहार किया गया है। सामन्ती शोषण का भयावह परिणाम जब यौन शोषण तक पहुँचने की स्थिति आती है तो बिल्लेसुर भाग खड़े होते हैं। इसके द्वितीय संस्करण की भूमिका में निराला ने 'बिल्लेसुर बकरिहा' को प्रगतिशील साहित्य का नमूना माना है। यह पाठक को धक्का देने के साथ ही साथ दिल को ताकत भी पहुँचाती है। निराला के इस रेखाचित्रात्मक उपन्यास की संक्षिप्त कथा कुछ इस प्रकार है -

बिल्लेसुर चार भाई थे। बड़े भाई मन्नी पत्नी न मिलने से परेशान थे, अतः एक दिन दूध पीती लड़की सहित एक विधवा को ले आये। पूरे दिन उसकी खूब खातिरदारी की, और रात को सोती लड़की को गले लगा कर परदेश प्रस्थान कर गये। वहाँ उसकी परवरिश की, और उसे पत्नी बना लिया। सास बेचारी खोज-खोज कर थक गई, तो चुपचाप गाँव में बैठ गई। इसी मन्नी की सास ने ही आगे चलकर बिल्लेसुर की शादी के बारे में सहयोग किया। बिल्लेसुर अर्थोपार्जन के सम्बन्ध में कलकत्ते तक गये, जहाँ जमादार पं० सतीदीन सुकुल व उसकी स्त्री के माध्यम से उसका शोषण होने लगता है। फलतः अपनी थोड़ी सी कमाई सहित गाँव वापस आ गये। आकर खेती सम्भव न होता देख, (क्योकि बैल उनके पास थे नहीं) बकरियों का व्यवसाय अपना लिया। इसमें उन्हें लाभ भी मिला। फिर बिल्लेसुर चतुर भी थे, गाँव में देखा, शक्करकन्दी की फसल कोई नहीं पैदा करता। फिर क्या था ? वर्षा शुरू होने से कुछ पहले ही उसने खेत में शक्करकन्दी की फसन बो दिया और स्वयं ही खेत की गोड़ाई की। खूब फसल हुई। गाँव में धूम मच गई कि बिल्लसुर बहुत धनी हो गया है।

इधर बिल्लेसुर गृहणी के बिना परेशान थे। थके-माँदे शाम को घर आते तो अपने हाथ से खाना बनाना पड़ता। समस्या थी कि बिल्लेसुर को कौन ब्राह्मण अपनी लड़की दे। एक दिन इसी सन्दर्भ में वे मन्नी की सास के गाँव गये और उसे अपने गाँव ले आये। घर में लाकर खूब खिला-पिला कर प्रसन्न कर लिया। उसने अपने किसी रिस्तेदार की लड़की से बिल्लेसुर की शादी करा दी। शादी में स्वयं गाँव के जमींदार आये। धूम-धाम से विवाह सम्पन्न हुआ। लोगों को विश्वास हो गया कि बिल्लेसुर के पास पचासों सोने की ईंटें जमा है। फिर अपने धनी होने का रहस्य जीते जी न खुलने दिया।

काले कारनामे

इसके अतिरिक्त 'काले कारनामे' उनका अपूर्ण उपन्यास है। 'इसका प्रकाशन काल विजया दशमी संवत् २००७ वि० (२० अक्टूबर १९५० ई०) है। इसका प्रथम संस्करण कल्याण साहित्य मन्दिर, प्रयाग से निकला था।[१] इसके प्रथम संस्करण की भूमिका में प्रकाशक ने लिखा है : 'निरालाजी की अस्वथता के कारण यह उपन्यास काफी दिनों से अधूरा पड़ा था। इस भय से कि कहीं निरालाजी की यह नवीन कृति अन्धकार में ही विलुप्त न हो जाय, हम इसे इसी रूप में पाठकों के समक्ष रख देना अपना एक पुनीत कर्तव्य समझते हैं।[२] इस उपन्यास में गॉव के तिकड़म, जमींदारों के आपसी झगड़े, पुलिस, थाना आदि का चित्रण है। इससे यह पता चलता है कि निराला का ग्राम्य जीवन का विशद अनुभव था। यह रचना किसी भी तरह उल्लेखनीय नहीं बन पाती। इसका कथानक ही स्पष्ट नहीं हो पाता। मनोहर का चरित्र ही स्पष्ट हो पाया है, जो स्वछन्द वृत्ति का गम्भीर युवक है। रामराखन, राम सिंह और माधव मिश्र के साथ ही यमुना प्रसाद के चरित्र की कुछ रूपरेखा बनती प्रतीत होती है। संकीर्ण ग्राम-मनोवृत्ति का चित्रण इस उपन्यास की विशिष्टता है।

निराला के दो उपन्यास 'चमेली' और 'इन्दुमती' एकदम से अधूरे उपन्यास हैं। इनके जो अंश लिखे गये थे, वे क्रमशः 'रूपाभ' और 'ज्योत्सना' में प्रशित हुए थे। चमेली का प्रकाशन फरवरी १९३९ में हुआ था। दो परिच्छेद मात्र लिखे गये, इस उपन्यास के बारे में 'रचनावली' के सम्पादक नन्दकिशोर नवल लिखते हैं; 'यदि निराला चमेली उपन्यास पूरा कर पाते, तो वह अवश्य कुल्ली भाट और बिल्लेसुर बकरिहा की एक महत्वपूर्ण कड़ी होता।'[३] तीन परिच्छेदों वाले 'इन्दुलेखा' का प्रकाशन काल; दीपावली १९६० ई० है।

1- निराला रचनावली - ४, पृ० १०
२. वही, पृ० १०
३. वही, पृ० ११

कहानी साहित्य

निराला का कथाकार के रूप में एक गौरवपूर्ण स्थान है । कहानियों के द्वारा उन्होने अपने अचेतन मन की कुछ झलकियाँ दिखाई हैं । निराला के कुल ५ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए - लिली, सखी, सुकुल की बीवी, देवी और चतुरी चमार । 'देवी और चतुरी चमार नये अथवा स्वतंत्र संग्रह नहीं हैं । 'चतुरी चमार, सखी का ही नया नाम है और देवी में विभिन्न संग्रहों की चुनी हुई कीनियाँ संकलित हैं । उसमें एक कहानी (जान की!) ऐसी भी है, जो पहले किसी संग्रह में संकलित नहीं हुई थी ।[1] लिली १९३४ ई० में गंगा पुस्तकमाला - कार्यालय लखनऊ से प्रकाशित हुई थी । . ... सखी अक्टूबर १९३५ में सरस्वती पुस्तक भण्डार, लखनऊ से निकली । सुकुल की बीवी १९४१ में भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई । .... सखी ही चतुरी चमार के नाम से १९४५ ई० में किताब महल से निकली । इसमे केवल इतना परिवर्तन किया गया था कि सखी की भूमिका के स्थान पर एक नयी भूमिका जोड़ दी गयी थी और 'चतुरी चमार' शीर्षक कहानी को शुरू में रख दिया गया था । ...... देवी का प्रकाशन काल १९४८ ई० का उत्तरार्द्ध है । पुस्तक के प्रथम संस्करण में प्रकाशन काल का उल्लेख नहीं है । भूमिका के नीचे निराला ने १२ अगस्त १९४८ की तिथि दी है ।'[2] निराला रचनावली के सम्पादक नन्दकिशोर नवल ने उनकी सर्वप्रथम कहानी 'प्रेमपूर्ण तरंग' को माना है जो कि मतवाला में - 'जनाब अली' के नाम से पॉच किस्तों में निकली थी ।

निराला की कहानी कला उन्हें एक सफल कहानीकारों की श्रेणी में ला देता है । 'देवी', 'चतुरी चमार', 'अर्थ' 'भक्त और भगवान', 'सखी' और 'श्रीमती गजानन्द शारिणी' आदि कहानियाँ कथ्य और शिल्प दोनो ही दृष्टियों से सफल कही जा सकती है । उनकी 'अर्थ' एवं 'भक्त और भगवान' दो कहानियाँ दार्शनिकता लिये हुए हैं, जबकि 'देवी', संस्मरणात्मक कहानी है । 'चतुरी चमार', 'स्वमी सारदानन्दजी महाराज और मैं' आदि कहानियों में आत्मपरकता का समावेश है । 'चतुरी चमार' की भूमिका में निराला ने इसे अपनी सर्वश्रेष्ठ कहानी कहा है । निराला

---

१. निराला रचनावली - ४, पृ० १२
२. वही,

ढ़ंग की प्रेम कहानी है। 'क्या देखा' में हीरा बाई एवं जानकी बल्लभ शरण बिहारी या प्यारे लाल के मध्य प्रेम का उदान्त चित्रण है, जिसमें हीरा छद्‌म रूप धारण कर अमर सिंह के नाम से प्यारेलाल की सेवा कर उसका दिल जीत लेती है। 'लिली से निराला की कहानी कला गम्भीर रूप धारण कर करती है।

पद्‌मा और लिली

इस कहानी में नायिका का पद्‌मा के पिता स्वयं ब्राह्मण होने के कारण उसे अपने प्रेमी राजेन्द्र जो क्षत्रिय वर्ग का है, से विवाह करने से मना कर देते हैं। इस बात नें पद्‌मा के जीवन की धारा को ही परिवर्तित कर दिया। वह एम० ए० करके लड़कियों को पढ़ाने का कार्य कर लेती है। एधर राजेन्द्र भी वैरिस्टर होकर विलायत से आ जाता है, किन्तु उसे अपना पेशा बड़ा नीरस लगता है, अतः वह देश सेवा का व्रत ले लेता है। इस छोटी सी कहानी में निराला का जाति सम्बन्धी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। पद्‌मा के पिता रामेश्वर जीते - जी तो उसे राजेन्द्र से विवाह नहीं करने देते, मर कर भी उसके गार्हस्थिक जीवन के सुख को अपने साथ ले जाते हैं। कहानी समाधानात्मक नहीं है। केवल संकेत किया गया है कि 'पद्‌मा या लिली' अपना बदला अपनी शिष्याओं को अपने मार्ग ही शिक्षित कर चुकाती है।

ज्योतिर्मयी

ज्योतिर्मयी एक बाल-विधवा का अभिशप्त जीवन जी रही है। अपने बहन के देवर विजय के प्रति वह आकर्षित होती है। विजय में इतनी दृढ़ता नहीं है कि वह समाज से लड़ सके। वह अपने पिता के आज्ञानुसार चलकर जहाँ से भरपूर दहेज मिले, वहीं विवाह करने को तैयार है। उसका मित्र वीरेन्द्र ज्योतिर्मयी के इस प्रेम प्रसंग को जानकर, उससे विवाह करवाने की ठान लेता है। वह धनी घर का एकमात्र लड़का है। अपने मैनेजर को ज्योतिर्मयी को अपनी लड़की प्रसिद्ध कर देने को कहता है, और स्वयं पन्द्रह हजार रूपये खर्च करके ज्योतिर्मयी का विवाह विजय से करा देता है, जबकि वह अब तक अपने विवाह की प्रसन्नता में विजय ज्योतिर्मयी को भूल ही चुका है।

वीरेन्द्र को विजय के इतने चारित्रिक पतन से अत्यन्त आघात लगता है, और अन्त में मिश्रा खानदान में मिल गई, पर वीरेन्द्र विजय से फिर कभी नहीं मिला।

कमला

कमला का विवाह हो चुका है, किन्तु प्रथानुसार वह पति के साथ नहीं गयी। पिता का देहान्त हो चुका है, छोटा भाई अभी पढ़ता है। विवाह के एक वर्ष पश्चात् उसके पति रमाशंकर वाजपेयी उसका गौना करवाने आते हैं। प्रथम रात्रि में ही रमाशंकर कमला पर अपना सम्पूर्ण स्नेह उड़ेल देते हैं, और उसे समझा देते हैं कि तुम्हारे बिना मेरे जीवन का अर्थ ही क्या किन्तु एक मिथ्या शक के आधार पर उसे त्याग कर दूसरा विवाह कर लेते हैं। बाद में वही परिस्थिति रमाशंकर की दूसरी पत्नी और बहन के साथ उत्पन्न होती है तो कमला का अनावृत मुख उनके सामने आती है और उनका उद्धार करने के लिये छोटे भाई के साथ रमाशंकर की बहन का विवाह प्रस्ताव स्वीकार कर लेती हैं।

श्यामा

पं० राम प्रसाद का लड़का बंकिम अंग्रजी स्कूल में पढ़ता है, माँ नहीं है, बहन सरल का विवाह हो चुका है। विद्रोह कर लोध जाति की कन्या श्यामा के घायल पिता का उपचार और अन्त में अन्त्येष्टि कर, श्यामा को लेकर गाँव से कानपुर चला जाता है। आर्य समाज के मंत्री सत्य प्रकाश की सहायता से उन्नति करता है और पढ़ कर डिप्टी मजिस्ट्रेट बन जाता है। गॉव में उसकी जमीन पर जमींदार हक जताता है और बंकिम की बहन का लड़का भी। मुकदमा उसी के पास आता है, बंकिम बहन को पहचान लेता है, जमींदार को अपने चपरासी द्वारा कान पकड़वाकर निकलवा देता है और बाग सरला के लड़के को दिलवा देता है।

प्रेमिका परिचय

एक सामान्य प्रेम कहानी है, जिसमे अमीर एवं शौकीन बाबू प्रेमकुमार को एक छद्म प्रेम कथा के माध्यम से बेवकूफ बनाया गया है ।

हिरनी

बाढ़ से गायब एक अनाथ लड़की को राजा रामनाथ सिंह दया कर रानी साहिबा को सौंप देते हैं । रानी उसे 'हिरनी' नाम देकर पालन-पोषण करती है । युवती होने पर राजकुमार की ऑखे उस पर चढ़ती देख शीघ्रता से रामगुलाम कहार के साथ उसे ब्याह दिया । बच्ची पैदा होने के बाद रानी के प्रति उसका स्नेह कम हो गया । एक झूठी शिकायत पर जबरन उसे घसीटते हुये रानी ने बुलवाया और मारने के लिये घूँसा उठाया, हिरनी ने अत्यन्त दुखी होकर कहा, 'हे रामजी !' तभी रानी के नाक से खून की धारा बह निकली । तब से जरा - सा गुस्सा होने पर भी रानी साहिबा को ये बीमारी हो जाती है ।

परिवर्तन

ठाकुर शत्रुहन सिंह विपक्षियों द्वारा सताये जानेपर अपने राज्याधिकारी लड़के सूरज को लेकर राजा महेश्वर सिंह के यहाँ ड्योढ़ी का जमादार बन जाते हैं, किन्तु राजा की रखैल कामलता देवी से उत्पन्न लड़की 'परी' सूरज को भी अपनी अधीनता में रखना चाहती है । एक दिन शत्रुहन सिंह इसी सन्दर्भ में विद्रोह कर देते हैं और लड़के को लेकर चले जाते हैं । बाद में महाराज प्रतापनाराण सिंह (सूरज का ही नाम) के साथ दासी रूप में 'परी' को ग्रहण कर अपमान का बदला लेते हैं ।

अर्थ

रामकुमार हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं । भारती में प्रकाशित उनका जीवन चरित्र अत्यन्त अद्‌भुत है । राकुमार कुलीन ब्राह्मण के पुत्र हैं । भगवान पर अटूट विश्वास करते हैं; इसीलिये पिता के बार-बार कहने पर भी सांसारिक शिक्षा लेने से इन्कार कर देते हैं । पिता की मृत्यु और उनकी अन्त्येष्टि व भोज आदि में सारा पैसा खर्च कर देते हैं । भरतजी के नाम - जप से धन न मिलने पर पत्नी को मायके भेज कर चित्रकूट चल देते हैं । कामद्‌गिरि पर वर्जना के बाद भी चढ़ने का प्रयास करते हैं, जहाँ राम-लक्ष्मण रहते हैं । तीन - चौथाई रास्ते लौटना पड़ा, आगे चढ़ने को मार्ग न था । लौटने पर निर्वस्त्र ही बस्ती पार कर जाते हैं । भूँख और क्लान्ति से मन में विचार उठा, भगवान नहीं हैं क्या ? ऊपर से तोते रूपी भगवान महावीर की आवाज आई "हैं, हैं" और सत्य का आभास हुआ । वहॉ से एक पुराने मित्र के माध्यम से प्रयाग आये और कर्मपथ में लग कर विख्यात हुये ।

न्याय

राजीव नामक युवक ने गोमती तट पर एक घायल पड़े व्यक्ति को देखा । उसे उठा कर अपने डेरे पर ले आया । अधूरी रिपोर्ट देने के साथ ही व्यक्ति का देहान्त हो जाता है । नौकर को प्रतिमा के लिये पत्र देकर वह स्वयं थाने में खबर देने चला जाता है । थानेदार उसी पर शक करने लगता है । अन्त में प्रतिमा के आने पर ही किसी तरह बच पाता है ।

स्वामी सारदानन्द महाराज और मैं

इस कहानी में निराला का आत्म अनुभव है । महिषादल की नौकरी छोड़ने के बाद रामकृष्ण मिशन के 'समन्वय' पत्रिका में कार्य ग्रहण किया, जहॉ स्वामी सारदानन्द महाराज से परिचय हुआ । इनकी महत्ता का लेखक पर इतना प्रभाव पड़ा कि स्वप्न में भी दिव्यमूर्ति के रूप में इन्हीं के ध्यानस्थ रूप के दर्शन होने लगे । उनके अलौकिक स्पर्श से निराला वशीभूत हो गये और

अपने को इनका यन्त्र मानने लगे । अपने साहित्य को जीवन्त हाने के मूल में निराला उन्हीं का आशीर्वचन मानने लगे ।

देवी

निराला इस कहानी से भी प्रत्यक्षतः जुड़े हुये हैं । यह उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से एक है । 'दुनिया में तारीफ करवाने के लिये बड़प्पन की अत्यन्त आवश्यकता है और मैं भी इसी बड़प्पन को प्राप्त करूँगा ।' ऐसा सोचते हुए निराला होटल के बरामदे में आराम कुर्सी पर बैठे-बैठे गर्व से फूल उठे । तभी उनकी नजर सामने सड़क के किनारे बैठी एक स्त्री पर पड़ी; पता चला कि वह गूँगी और पगली है । पहले हिन्दू थी बाद में मुसलमान हो गयी । उसका एक डेढ़ वर्ष का बच्चा है । बचा खुचा भोजन और दान का वस्त्र ही उसका सहारा था । सर्दी खाकर उसे न्यूमोनिया हो गया, एक स्वयं सेवक ने उसे अस्पताल पहुँचा दिया और उसके बच्चे को उससे जबरदस्ती पृथक कर दयानन्द अनाथालय भेज दिया गया । डाक्टर ने कह दिया, डबल न्यूमोनिया है, बचेगी नहीं । इतनी मानवीय और करुण कहानी है और उसको देवी का सम्बोधन भी विलक्षण है ।

चतुरी चमार

निराला ने इसे अपनी उत्कृष्ट कहानी कहा है । चतुरी रिश्ते में उनका भतीजा लगता है । उसका पेशा जूते बनना है । कबीर की उलटवासियों को सीधा करने में उसका कोई सानी नही । लेखक उसके लड़के अर्जुन को पढ़ाता है । कांग्रेस आन्दोलन में होने के कारण गाँव में चतुरी आदि पर मुकदमा चलता है । चतुरी वास्तव में नवजीवित दलित वर्ग का प्रतिनिधि है; जो मुकदमें में पराजित हो कर भी इस स्वतंत्रता के ज्ञान से प्रसन्न है कि उसे पीढ़ी दर पीढ़ी सिपाही को जूते देने की गुलामी नहीं करनी पड़ेगी । किसानों में भी इतना उत्साह है कि वे जमींदार से न डर कर गाँव में तिरंगा फहराते हैं ।

राजा साहब को ठेंगा दिखाया

राजकीय मन्दिर का पुजारी विश्वम्भर, नदी में हवाखोरी को निकले राजा को अपने करुण आर्थिक स्थिति को बताने के लिये एक विचित्र आवाज के साथ, हवा में ऊँगली से लिखकर, राजा साहब की ओर कोंच कर, पेट मल कर, मुँह थप-थपा कर ठेंगे दिखाने लगता है। राजा साहब के सिपाही इसे राजा का अपमान समझ कर मार-मार कर अधमरा कर देते हैं। बाद में उसे नौकरी से भी हटा दिया जाता है। उसका इशारा था कि तुम्हे लिख चुका हूँ, अब भूँखो मर रहा हूँ और ठेंगे हिला कर कहा था, खाने को कुछ नहीं है। उतने प्रकाश में इतनी स्पष्ट सांकेतिक भाषा से समझाया था, पर राजा साहब ने अपमान समझा।

सफलता

आभा विवाह के एक वर्ष बाद ही विधवा हो जाती है। 'यशस्वी साहित्यिक' नरेन्द्र उसे अपना लेता है। अपनी जायदाद बेंच कर उसकी पढ़ाई और नृत्य-गीत की शिक्षा का प्रबन्ध करता है और नाटक खेलना प्रारम्भ करता है, जिसमें पति-पत्नी दोनो भाग लेते हैं। सुन्दरी आभा दर्शको का मन मोह लेती है और थियेटर कम्पनी खूब चल निकलती है।

भक्त और भगवान

भक्त निरंजन साधारण पिता का पुत्र है। उसके पिता राजा के यहाँ सामान्य नौकर हैं। पिता के स्नेह में पुत्र को जरा भी कष्ट नहीं, वह भगवान की श्रद्धा से युक्त जीवन बिताता रहा है। हनुमान की सेवा का प्रतीक अपनी पत्नी पर उतरता देख कर वह विस्मृत हुआ। पत्नी सहित सभी परिवार गोलोकवासी हो गये। राजा ने दया कर उसे एक साधारण नौकरी दी, किन्तु गरीबों को पिसता देख उसकी इच्छा नौकरी छोड़ देने की हुई। तब रात्रि में उसने स्वप्न देखा, महावीर उससे कह रहे हैं, किसी कार्य को छोटा न समझो। तत्पश्चात स्वयं उसकी पत्नी सिन्दूर धारण किये हुए सामने आयी, महावीर ने कहा, ये मेरी माँ अन्जना देवी है। तभी आँख खुल गई, कहीं कुछ न था।

सखी

माडल-हौस की छात्राओं ने थियेटर जाने का निश्चय किया। जोत और लीला उन्हीं में से एक हैं। जोत को श्यामलाल आई० सी० एस० का प्रणय निवेदन मिला। लीला एम० ए० की छात्रा है और ट्यूशन कर परिवार का भरण-पोषण करती है। जहाँ लीला पढ़ाने जाती है दो मुसलमान युवक कई दिनों से उसका पीछा कर रहे थे। एक दिन उनकी हरकत बढ़ गई, लीला भय से भागने लगी। जोत के प्रणयी श्यामलाल उसे बचा कर अपनी कार से घर तक छोड़ते हैं। प्रकरण को सुन कर लीला की सखी जोत ने 'जिस मजनू की जो लैला होती है वह आप ही मिल जाती है', कहा और दोनो का विवाह सम्पन्न करा देती है।

कला की रूपरेखा

निराला और उनके मित्र पाठक के मध्य कला के सन्दर्भ में बात-चीत होती है। एक नंगे बदन मद्रासी को निराला अपना मोटा चादर दिया, जिस पर उनके मित्र ने कहा 'वह चार आने में चादर को बेंच देगा।' बाद में वह कांग्रेस की बैठक के समय निराला से मिला और स्वयं सेवक के रूप में प्रसन्नचित्त हो अपना परिचय दिया।

जान की

इसको भी निराला की आत्मसंस्मरणात्मक कहानी माना जाता है। निराला को मित्र शंकर के घर उनकी लड़की के मिस्ट्रेस के रूप में 'उनके मन की कल्पनात्मक मूर्ति (सम्भवतः उनकी पत्नी) दिखाई पड़ी। देख कर वे स्तब्ध रह गये और उस एक क्षण की अनुभूति सम्पूर्ण युग से बढ़ कर हुई।

सुकुल की बीवी

सुकुल निराला के मित्र हैं। अत्यन्त अध्यवसायी, एम० ए० तक पढ़ कर परीक्षक हुए हैं। उनके सामने पुखराज नामक लड़की का निवास स्थान है। पुखराज की गर्भवती माँ को उसके पति ने निकाल दिया, तब उसे एक मुसलमान पुलिस इन्सपेक्टर के घर आश्रय मिला। पुखराज सुकुल को देखकर उन पर मोहित हो गयी। सुकुल का विवाह हो चुका था और उनकी पत्नी को जब इस प्रणय की भनक मिली, सुकुल के पास आते समय ही दैवात् उनका निधन हो गया। पुखराज और सुकुल कुछ दिनो तक सामाजिक भय के कारण अज्ञातवास में रहे। फिर सुकुल की बीवी लेखक से मिली और उन्होने विधिपूर्वक विवाह सम्पन्न करा दिया।

श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी

पैंतालीस वर्षीय गजानन्द शास्त्री वैद्य हैं, विधुर हैं और अब चौथी पत्नी की तलाश में हैं। उधर शास्त्रिणीजी षोडशी हो चुकी हैं, गाँव के लड़के मोहन के साथ उनकी घनिष्ठता बढ़ चली है, जिससे पिता के ह्रदय की धड़कन भी। उनकी इस दोस्ती के दुष्परिणाम को सोच कर पिता विवाह करने की सोचते हैं। दोनो के एक संयुक्त मित्र द्वारा गजानन्द के साथ विवाह धूम-धाम से सम्पन्न कर देते हैं। शास्त्रिणीजी क्रमशः उन्नति करते हुए कांग्रेस की उम्मीदवार बन कर चुनाव जीत कर एम० एल० ए० चुनी गयीं। बचपन के मित्र मोहन को लखनऊ में एक कार्यालय में मिलने पर गर्व के स्वर में उससे कहा, आप गलत रास्ते पर थे।

दो दाने

तूफान और बाढ़ के बाद लोग एक-एक अन्न को मुहताज हो गये हैं। इसी समय कमला प्राण रक्षा के भय से पन्द्रह वर्षीया पुत्री चम्पा और दो पुत्रों को लेकर कलकत्ता आ गयी और

देह व्यापार के लिये अपनी पुत्री को प्रस्तुत कर दिया। बिहारी नामक दलाल के माध्यम से झाबरमल सेठ से सौदा तय हुआ, किन्तु एक तरुण अफसर के वहाँ आने और विवाद करने के कारण झाबरमल भाग खड़ा हुआ। तरुण अफसर के देश प्रेम के अन्दर से वासना की घोर बदबू निकल रही थी। चम्पा ने बताया कि पहला ही ठीक था।

विद्या

विद्या और श्याम के मध्य उदात्त प्रेम का चित्रण है। बगीचे में विद्या मिल्टन की पुस्तक लिए आती है और अपने एम० ए० के विषय के रूप में अंग्रेजी की चर्चा करती है। श्याम संस्कृत का विद्वान है। राजा की बेटी विद्या वाद-विवाद के अन्त में कहती है 'मानती हूँ कि तुम अपने मनोभाव के सच्चे हो।'

आलोचना – साहित्य

पुस्तकाकार निराला की आलोचना एक ही है - 'रवीन्द्र - कविता - कानन'। बाकी निबन्ध और टिप्पणियों के रूप में हैं। आलोचनात्मक निबन्ध लिखना निराला ने उक्त पुस्तक के प्रणयन के पहले से ही शुरू कर दिया था।[१] हालांकि निराला की आलोचना और निबन्ध के बीच कोई सुस्पष्ट विभाजक रेखा नहीं खीची जा सकती लेकिन 'नन्दकिशोर नवल ने निराला रचनावली का पॉचवा भाग 'आलोचना-खण्ड' घोषित किया है।' योजनानुसार रचनावली के प्रस्तुत खण्ड में निराला की आलोचना संकलित की गई है। यह आलोचना दो प्रकार की है - पुस्ताकाकार और स्फुट निबन्धों एवं सम्पादकीय टिप्पणियों के रूप में।[२]

निराला के आलोचना साहित्य का विशुद्ध रूप उनकी मुक्त निबन्धकृतियों-पंतजी

---

१. निराला रचनावली - ५ पृ० १
२. वही

और पल्लव, रवीन्द्र-कविता-कानन में विद्यमान है । इसके अतिरिक्त काव्य संग्रहों की भूमिका (यथा-परिमल, अनामिका, बेला, गीतिका आदि) और स्फुट निबन्ध इस दिशा में उपयोगी हैं । आलोचनाओं काव्य-तत्व, काव्यांग और काव्य-कला सम्बन्धी अनेक प्रश्नों पर निराला ने अपने सैद्धान्तिक निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं ।

निराला की कृतिपरक आलोचनाके अन्तर्गत 'पंतजी और पल्लव' में उनके आलोचक व्यक्तित्व का चरम रूप मिल जाता है । इसमें 'पल्लव' काव्य-संग्रह का सर्वांगसम एवं व्यापक सर्वेक्षण किया है ।

मूल्यांकनपरक आलोचना के अन्तर्गत 'रवीन्द्र-कविता-कानन' और 'तुलसी कृत रामायण में अद्वैत तत्व' को रखा जा सकता है । जिसमें निराला के गुण-ग्राही आलोचक का रूप निखर कर आता है ।

निराला की तुलनात्मक आलोचना भी उल्लेखनीय बन पड़ी है । 'विद्यापति और चण्डिदास', 'दो महाकवि (तुलसी-रवीन्द्र)', 'कविवर बिहारी और कवीन्द्र - रवीन्द्र', 'मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार साम्य' आदि में तुलनात्मक समीक्षा की गयी है । व्यक्तिपरक आलोचना के अन्तर्गत 'नवीन कवि, प्रदीप', 'अंचल', 'श्री चकोरीजी की कविता', 'श्री नन्ददुलारे वाजपेयी' आदि हैं । जबकि आत्मपरक आलोचना के अन्तर्गत 'मेरे गीत और कला' एवं कविताओं और उपन्यासें की भूमिका को रखा जा सकता है । 'नाटक की समस्या', 'बंगाल के वैष्णव कवियों की श्रृंगार वर्णना', 'काव्य-साहित्य' और 'काव्य के रूप और अरूप' आदि को प्रवृत्तिपरक आलोचना के अन्तर्गत रखा जा सकता है ।

निबन्ध साहित्य

निराला के निबन्धों की कुल संख्या छियालीस हैं ।[१] इसके अतिरिक्त विविध विषयों से सम्बन्धित टिप्पणियाँ भी हैं । निबन्धों और टिप्पणियों में जो अन्तर है, वह बहुत कठोर नहीं है ।

---

१. निराला रचनावली - ६ पृ० ७

इससे आसानी से कुछ टिप्पणियाँ निबन्धों में और कुछ निबन्ध टिप्पणियों में शामिल किये जा सकते हैं। निराला ने प्रबन्ध प्रतिमा नामक अपने निबन्ध संग्रह में अपने कई सम्पादकीय टिप्पणियों को शामिल कर लिया है।[१] निराला के कुल पाँच निबन्ध संग्रह हैं - 'प्रबन्ध - पद्म', प्रबन्ध - प्रतिमा', 'चाबुक', 'चयन' और 'संग्रह'। इनमें से प्रथम दो संग्रह निराला ने स्वयं तैयार किये थे, तीसरा श्री उमाशंकर सिंह द्वारा तैयार किया गया, बाकी दो संग्रहों के संकलन कर्ता डॉ० शिवगोपाल मिश्र हैं।[२]

विषय-वस्तु के दृष्टिकोण से निराला के निबन्धों को तीन भागों में विभक्त कर देख सकते हैं। प्रथम वर्ग आध्यात्मिक एवं दार्शनिक तत्वों की विवेचना से सम्बन्धित निबन्धों का है इसमें 'शून्य और शक्ति', 'प्रवाह', 'अर्थ', 'शक्तिपरिचय', 'बाहर-भीतर' आदि कई निबन्ध सम्मिलित हैं।

द्वितीय वर्ग में सामाजिक निबन्ध आते हैं; जिसमें 'राष्ट्र और नारी', 'अधिकार समस्या', 'रूप और नारी', 'सामाजिक व्यवस्था', 'वर्तमान धर्म', 'वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति' आदि अनेकों अन्य निबन्ध भी रखे जा सकते हैं।

तीसरे वर्ग के अन्तर्गत जीवनीपरक निबन्ध रखे जा सकते हैं। 'हिन्दी के गर्व और गौरव श्री प्रेमचन्द्रजी', हिन्दी के आदिप्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', 'पंडित जवाहरलाल नेहरू', एवं श्रीरामकृष्ण से सम्बन्धित छः और विवेकानन्द पर दो निबन्ध भी इसी वर्ग के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। इसी के साथ ही साथ एक और वर्ग के अन्तर्गत आत्मसंस्मरणात्मक निबन्धों को रखा जा सकता है जिसमें 'गाँधीजी से बात-चीत, नेहरूजी से दो बातें, प्रान्तीय-साहित्य-सम्मेलन, फैजाबाद' आदि हैं। इनमें लेखक आत्मघटित को ही निबन्ध के रूप में प्रस्तुत कर देता है। कुछ विद्वान इनको संस्मरण के रूप में लेने के पक्षधर हैं।

---

१. निराला रचनावली - ५ पृ० १
२. वही, पृ० ३

स्फुट साहित्य

निराला ने बाल साहित्य की रचना की है; जिसमें बालकोचित शिक्षा के साथ मनोरंजन का भी उचित समन्वय किया गया है। महाराणाप्रताप, भक्त ध्रुव, भीष्म, और प्रह्लाद के स्थापित चरित्रों के माध्यम से शौर्य, भक्ति, ब्रह्मचर्य और आस्था अवस्थापित करना चाहा। ध्रुव और प्रह्लाद दोनो ऐसे बाल चरित्र हैं, जो राजशक्ति से टकराते हैं। भीष्म का प्रतिज्ञा निर्वाह और उनकी वीरता अनुपम है। महाराणाप्रताप 'वन-वन स्वतंत्रता-दीप लिये फिरने वाले बलवान हैं।' उनके चरित्र को धर्म की लड़ाई से न जोड़कर स्वतंत्रता के लिये प्राण-पण से संघर्ष करने वाले योद्धा के रूप में देखना चाहिए।

इसी तरह निराला ने रामायण और महाभारत की अन्तर्कथाओं का भी सृजन किया जो लोगों को मनोरंजन से अधिक सन्देश देने का कार्य करती हैं। इनका बहुत अधिक साहित्यिक महत्व नहीं है।

निराला की कुछ रचनाएँ चर्चा में तो अवश्य आईं, किन्तु उनका प्रकाशन नहीं हो पाया और उनकी पाण्डुलिपि भी उपलब्ध नहीं रही। इसमें 'शकुन्तला', 'समाज' और 'ऊषा' तीन नाटक हैं, 'उच्छृंखल', 'हाथों लिया' और 'सरकार की ऑखे' तीन उपन्यास हैं। 'वात्स्यायन' कामसूत्र का गद्यानुवाद है।

निराला ने रामचरितमानस का खड़ी बोली पद्य में रूपान्तरण भी करना प्रारम्भ किया था, जो सम्पूर्ण नहीं हो सका। इसी के साथ ही साथ एक कविता संग्रह 'वर्षा गीत' भी अप्रकाशित है। मनहर चित्रावली और रस-अलंकार की रचना भी इनके द्वारा किया गया, जो साहित्यिक महत्व कम रखती हैं।

निराला का प्रबन्ध-परिचय अथवा प्रबन्ध-प्रतीक के नाम से कोई निबन्ध-संग्रह कभी भी प्रकाशित नहीं हुआ। अनुवाद कार्यों की श्रृंखला में विवेकानन्द के साहित्य सम्बन्धी अनुवाद कार्य प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त उन्होने रजनी सेन, चण्डिदास, गोविन्ददास और रवीन्द्रनाथ की अनेक कविताओं का भी अनुवाद किया।

द्वितीय अध्याय

I स्वामी विवेकानन्द का जीवन

II स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा

(क) आध्यात्मिक एवं दार्शनिक

(ख) मानवतावाद एवं विश्वबोध

(ग) राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम

(घ) सामाजिक विचारधारा

''स्वामी विवेकानन्द''

भारतीय इतिहास में अंग्रेजों के आगमन के बाद एक नये युग का आरम्भ होता है। अंग्रेजों के अधीन भारत का राजनीतिक एकीकरण हुआ, जिससे सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में भी प्रतिक्रिया हुई और सम्पूर्ण जागरण प्रारम्भ हुआ। भारत के अधिकांश क्षेत्रों पर अंग्रेजों का आधिपत्य होने से एक विधि, एक शिक्षा, एक शासन होने से भारतीय राष्ट्र की अवधारणा का विकास हुआ। अंग्रेजी और भारतीय संस्कृति के मध्य टकराहट हुई और भारतीय सभ्यता अनेक बिन्दुओं पर कमजोर पड़ने लगी। अंग्रेजों की भौतिकवादी दृष्टि का प्रभाव देश के लोगों को कुण्ठित करने में सफल दिखाई पड़ने लगा। पाश्चात्य सभ्यता के प्रति लोगों में प्रबल आकर्षण होने के कारण अन्धानुकरण की व्यापक भावना देखी जाने लगी। ऐसे बिन्दु पर भारतीय बौद्धिक वर्ग में भी इसकी प्रतिक्रिया हुई। राजा राम मोहन राय के नेतृत्व में इसकी पहली कड़ी प्रारम्भ हुई। इनका दृष्टिकोण भारतीयों को आधुनिकता के धरातल पर अवस्थित करना था। अशिक्षा व अज्ञानता से ग्रस्त जनता में व्याप्त अनेक रूढ़ियों को समाप्त करने का श्रेय राजा राममोहन राय को जाता है। 'सती प्रथा का अन्त' कराने में उनकी महती भूमिका थी। भारतीयों को शिक्षित करने के पक्षधर राजा राममोहन राय पाश्चात्य शिक्षा व्यवस्था से अधिक प्रभावित थे और इसी के माध्यम से ज्ञान की खिड़की भारतीयों के लिये भी खोल देना चाहते थे। वे भारतीय दर्शन, विशेषतः उपनिषदों के बड़े पक्षधर थे और इनका नवीन भौतिकवाद से समन्वय करना चाहते थे, जिससे उत्कृष्ट विचारधारा का उन्नयन हो सके, यह हिन्दू समाज के लिए अधिक ग्राह्य होकर उनको अतिरिक्त सक्रिय बनाने में सक्षम हो सकती है, जो आधुनिक युग के लिए बहुत आवश्यक है। इस तरह के तमाम सन्देशों के साथ राजा राममोहन राय भारत को संकीर्णता और रूढिवादिता के आवरण को हटा देने की बात करते हैं, जो नवीन युग की आधारशिला का काम करता है।

राजा राममोहन राय को दिवंगत हुए लगभग आधी सदी बीत चुकी थी। इस बीच परिस्थितियों में काफी परिवर्तन हो गया था। 'यंग बंगाल आन्दोलन' सरीखे संगठन भारत में अपसंस्कृति के वाहक बन कर आये। जनमानस में व्याप्त हीनता की भावना से पाश्चात्य संस्कृति के अन्धभक्त लोगों ने लाभ उठा कर समाज में अतिआधुनिकता की दूषित हवा का प्रवाह तेज कर दिया। शिक्षा और विद्वता के लिए शराब और कबाब को आवश्यक समझा जाने लगा। सारी

जनता किंकर्तव्यविमूढ़ होकर यह सब देख रही थी। सम्पूर्ण परम्पराओं और आदर्शों की अवहेलना करना ही भारतीय जागरण का द्योतक समझा जाने लगा। ऐसे समय भारत में दो महान व्यक्तियों का आविर्भाव होता है, जिन्होने भारतीय नवजागरण को सही मायनों में समझा। 'स्वामी दयानन्द सरस्वती और श्री रामकृष्ण परमहंस' के विराट व्यक्तित्व ने मध्य और आधुनिक की सन्धि बेला में हिन्दुओ को वास्तविक राह का बोध कराया। दयानन्दजी ने अपने शुद्धि आन्दोलन के द्वारा हिन्दू धर्म की रक्षा का भार लेकर इस दृष्टिकोण को नकार दिया कि बलात् या मजबूरी में हुआ धर्म परिवर्तन वास्तविक है। उन्हें वापस अपने घर में आने की छूट मिलनी ही चाहिए। उनके द्वारा गठित 'आर्य समाज' ने हिन्दू समाज को 'वेदो की ओर लौटो' का नारा देकर भारतीय संस्कृति की रक्षा का बीड़ा उठाया। यह नारा प्राचीन युग में लौटने की बात नहीं करता, अपितु वैदिक सत्य के आलोक में आधुनिक विचारो को परखने की बात करता है। स्वामी दयानन्द के आन्दोलन में बहुपक्षीय दृष्टि का अभाव है और सम्पूर्ण भारत के सभी लोगों का प्रतिनिधित्व समुचित रूप में नहीं हो पाता। दूसरे महापुष श्री रामकृष्ण परमहंस सही मायनों में भारतीयता की प्रतिमूर्ति थे, जिनके उदात्त विचारो का सम्पूर्ण विश्व में प्रचार कर उनके सुयोग्य शिष्य स्वामी विवेकानन्द नें भारतीय राष्ट्र के गौरव और आत्म सम्मान की पुनः स्थापना की। अन्य आन्दोलनों की तरह विवेकानन्द का दृष्टिकोण प्रतिरक्षात्मक नहीं था। अपने बौद्धिक व तार्किक योग्यता से वेदान्त को विश्व व्यापी स्वरूप देने वाले इस महान नायक की विचारधारा से पूर्व उनका जीवन वृत्त भी जानना आवश्यक है, क्योंकि इसमें भी एक सन्देश मिलता है।

जीवन परिचय

स्वामी विवेकानन्द का जन्म बंगाल की राजधानी कलकत्ता के सिमला मुहल्ले में १२ जनवरी १८६३ ई० को हुआ था। इनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त और माता का नाम भुवनेश्वरी देवी था। इनके पिता ने एटार्नी के रूप में काफी यश प्राप्त किया था। वे इतना दान आदि दिया करते थे कि उन्हें 'दाता विश्वनाथ' के नाम से भी पुकारा जाता था। विवेकानन्द की माता भुवनेश्वरी देवी भी विशेष बुद्धिमती, कार्य-कुशल और ईश्वर परायण महिला थीं। सोमवार को जन्म लेने और वीरेश्वर शिव का वरदान मानकर कठिनाई से प्राप्त पुत्र का नाम भी 'वीरेश्वर

या बिले' रखा किन्तु सर्वसाधारण के लिए 'नरेद्र नाथ' नाम पड़ा।

नरेद्र का प्रारम्भिक जीवन बहुमुखी था। दीन-दुखियों के प्रति दया, जीवों के प्रति विशेष प्रेम का भाव मिलता है। घर के सेवकों के प्रति उनका व्यवहार बहुत आत्मीय रहा करता था। वे अपने घर के कोचवान के प्रति विशेष आकर्षित थे और बड़ा होने पर उनकी महती लालसा कोचवान बनने की थी। वे बचपन में बहुत चंचल और क्रोधी स्वभाव के थे। क्रोध आने पर घर की वस्तुओं को तोड़-फोड़ कर रख देते थे। उनका क्रोध शिव-शिव कह कर जल डालने से शान्त हो जाता था। खेल-कूद के प्रति भी नरेद्र को आकर्षित देखा जाता है। क्रिकेट, फुटबाल, आदि खेलों में वे बहुत दक्ष थे। संगीत के प्रति भी उनमें जबरदस्त आकर्षण था। भिखारी गायकों का दल जब दरवाजे पर खड़े होकर ढ़ोल बजाते हुये गाना गाता, तब वे उसे आग्रपूर्वक ध्यान से सुना करते। टोली-मुहल्ले में रामायण, कीर्तन आदि होने पर, उसमें सक्रियता से भाग लेते और संगीत की सुर लहरियों में सानन्द विभोर होकर खो जाते। इसी समय इन्होने पाक विद्या भी सीखा और अपने हाथ से बनाकर लोगो को भोजन कराना एक विशेष आदत बन गयी। इस बहुमुखी प्रतिभा का एक कारण यह भी था कि पढ़ने लिखने में बहुत अधिक श्रम और समय नहीं लगता था, उनकी प्रतिभा के हिसाब से नित्य एक दो घण्टे पढ़ लेना ही काफी था। इस तरह विवेकानन्द की नवोन्मेषशालिनी और सर्वतोमुखी प्रतिभा बचपन से ही निखर गयी थी।

नरेन्द्र प्रारम्भ से ही संन्यास के प्रति अजीब सा सम्मोहन देखते थे। बालकोचित आग्रह के साथ अपने सहपाठियों से कहा करते थे, "बड़ा होकर मैं संन्यासी होऊँगा, अमुक-अमुक स्थानों पर जाऊँगा और यह सब करूँगा।"[१] विद्यालय पहुँचने पर नरेद्र की प्रतिभा और अधिक विकसित हुई। लड़कों के आपसी विवाद को वे अपनी मध्यस्थता द्वारा हल कर देते थे, इस प्रकार धीरे-धीरे लड़कों का नेतृत्व इनके हाथ में आ गया। 'उनकी स्मरण व बोध शक्ति भी प्रखर थी। उनकी विचार शक्ति और सूक्ष्म दृष्टि देखकर सहपाठीगण अवाक हो जाते एवं तर्क के क्षेत्र में भी उनसे पराजय स्वीकार करते।'[२] नरेद्रनाथ का शरीर भी स्वस्थ, सबल, प्रभावशाली और हृष्ट-पुष्ट

---

१. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - १पृ० ४९
२. वही,पृ० ४९

था । अतएव मानसिक व शारीरिक समन्वय से एक ऐसे गरिमामय व्यक्तित्व का विकास हुआ, जिससे सम्पूर्ण भारत को आत्मगौरव का नया आयाम प्राप्त हुआ ।

विद्यालय में पढ़ने के समय ही नरेन्द्रनाथ की वक्तृता-शक्ति जाग्रत हो गयी थी । एक पुरस्कार वितरण समारोह, जिसकी अध्यक्षता श्रीयुत् सुरेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय कर रहे थे, में आधे घण्टे के भाषण से सबको प्रभावित कर लिया । सुरेद्रनाथ ने अपना मन्तव्य प्रकट किया था "भारतवर्ष में मैंने जितने वक्ताओं को देखा है, उनमें वे सर्वोत्तम थे ।"[१] कहा गया है कि उनके पिता ने उन्हे सर्वप्रथम संगीत की शिक्षा प्रदान की थी । सत्येद्रनाथ मजूमदार के अनुसार, "उन्होंने पिता से बचपन से ही संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी और उस समय उस समय भी गाने-बजाने में उनकी दक्षता कम नहीं थी ।"[२] इस तरह विद्यालय की वाद-विवाद समिति में उत्साहपूर्वक भाग लेते थे और संगीत एवं भाषण के द्वारा लोगों को हैरान कर देते थे । सुनने वाले प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते थे, जबकि नरेद्र की भावाभिव्यक्ति क्षमता उत्तरोत्तर बढ़ रही थी । जिज्ञासु नरेद्र का व्यक्तित्व बहुआयामी बन, विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराने के लिए प्रतिबद्ध दिखाई पड़ने लगा ।

'युवावस्था में नरेद्र के अन्दर धर्मभाव की तीव्र अनुप्रेरणा जागी, तब वे निरामिष भोजन किया करते तथा पर चटाई या कम्बल की शय्या पर सोकर रात बिताया करते थे ।'[३] इसी समय वे अपने मकान के नजदीक ही नानी के एक कमरे में परिवार से एकान्त हो साधना में लगे रहते । ऐसे समय ही उनका ब्रह्म समाज से भी सम्पर्क हो गया । महर्षि देवेन्द्रनाथ के कारण उनकी ध्यान-प्रवणता और अधिक बढ़ गई; नरेद्र को लक्ष्य कर उन्होने कहा भी था, "तुम में योगी के सारे गुण दीख पड़ते हैं; ध्यानाभ्यास करने पर योगशास्त्र में उल्लिखित सारे फल तुम शीघ्र ही प्राप्त करोगे ।"[४] ब्रह्म समाज के प्रति उनके आकर्षण का कारण उसका धर्म और समाज के क्षेत्र में क्रान्तिकारी और रूढ़िविरोधी दृष्टिकोण को अपनाना था ।

---

१. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - १ पृ० ५४
२. विवेकानन्द चरित, - सत्येन्द्र मजूमदार, पृ० ३४
३. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - १ पृ० ५८
४. वही, पृ० ५९

इसके बाद नरेंद्र पाश्चात्य साहित्य और भारतीय दर्शन के अनुशीलन की ओर प्रेरित हुए । ह्यूम , हर्बर्ट स्पेन्सर, जान स्टुअर्ट मिल, शेली आदि के विचारों का गम्भीरता से अध्ययन किया । उनके ऊपर विद्यालय के शिक्षक और दार्शनिक, कवि और विद्वान विलियम हेस्टी का भी प्रभाव पड़ा, जिससे उनकी बहुमुखी प्रतिभा का विविध क्षेत्रों में विस्तार हो सका । तार्किकता और अथाह बौद्धिकता का समावेश हो गया । नरेंद्र ने धर्म, समाज, साहित्य, संगीत और दर्शन सभी क्षेत्रों में पारंगत होकर उनके समन्वय से एक अद्वितीय विचार शक्ति प्राप्त किया, जिसका भावी जीवन में इतना सुन्दर उपयोग किया कि भारतीय समाज और राष्ट्र का जीवन्त प्रतीक बनने में बहुत सहयोग मिला और राष्ट्रीय चेतना के संवाहक की गरिमा भी नरेंद्र को ही प्राप्त हुई ।

नरेन्द्र का आध्यात्मिक प्रयास तीव्र रूप लेने लगा था, इसके साथ ही उनकी जिज्ञासा भी तीव्रतर होती जा रही थी । धीरे-धीरे उनकी चेतना ससीम से असीम की ओर अतिक्रमित हो रही थी । महर्षि देवेन्द्रनाथ से आवेग भरे कंठ से पूँछ बैठते हैं, "महाशय, क्या आपने भगवान को देखा है ?" उत्तर अपेक्षा के विपरीत मिलता है - "बच्चा, तुम्हारी आँखें ठीक योगियों की भाँति हैं ।"[१] अपने प्रयास में विफल नरेन्द्र के प्राणों की लालसा न मिटी । इसके बाद तमाम अन्य धर्म गुरूओं के समक्ष भी उन्होने यही एक यक्ष प्रश्न रखा - "क्या आपने भगवान को देखा है ?"

इसी तीव्र लालसा के समय उनसे मिलने के लिए एक विराट महामानव श्री रामकृष्ण से मिलने की परिस्थिति का निर्माण होता है । सुरेन्द्रनाथ मित्र (नरेन्द्र के मुहल्ले के ही) के यहाँ रामकृष्ण की उपस्थिति में एक लघु उत्सव का आयोजन किया गया था । 'नरेन्द्र ने सन्देश पाया कि दक्षिणेश्वर के श्री रामकृष्ण को गीत सुनाने होंगे - वे ही परमहंस रामकृष्ण जिनकी प्रशंसा हेस्टी साहब के मुँह से उन्होंने सुनी थी तथा जो सम्भवतः उनकी उसी उत्तरहीन जिज्ञासा का समाधान कर सकेगें ।'[२] सुन्दर भजन सुनाकर नरेन्द्र ने सबको संतृप्त कर दिया, प्रथम मिलन से ही रामकृष्ण ने सस्नेह दक्षिणेश्वर आने का निमंत्रण दे दिया ।

---

१. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - १ पृ० ८५
२. वही, पृ० ८५

एफ० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद एक धनी परिवार से विवाह का प्रस्ताव आया, नरेन्द्र ने किसी भी दबाव में झुकने से इंकार कर विवाह के लिए सहमति न दी।। इसके मूल में धर्मभाव की प्ररणा समझकर इनके एक सम्बन्धी ने और कहीं न जा कर दक्षिणेश्वर के रामकृष्ण परमहंस के पास जाने को कहा। प्रस्ताव स्वीकार कर नरेन्द्र अपने समवयस्क मित्रों एवं सुरेन्द्रनाथ के साथ दक्षिणेश्वर पहुँचे। वहाँ भाव-विभोर रामकृष्ण मानो उन्हीं का इन्तजार कर रहे थे। नरेन्द्र को एकान्त में ले जाकर कह उठते हैं, "तू इतने दिनों के बाद आया ? मैं तेरे लिए किस प्रकार प्रतीक्षा कर रहा था, तू सोच भी नहीं सकता ? विषयी मनुष्यों के व्यर्थ प्रसंग सुनते-सुनते मेरे कान जले जा रहे हैं, मन की बात किसी से न कहने के कारण मेरा पेट फूलता जा रहा है।" आदि-आदि बातें कर के उनके सामने हाथ जोड़कर देवता की तरह सम्मान देते हुए कहने लगे, " मैं जानता हूँ प्रभु, आप वही पुरातन ऋषि नररूपी नारायण हैं, जीवों की दुर्गति दूर करने के लिए आप पुनः संसार में अवतीर्ण हुए हैं।"[१]

नरेन्द्र उनके इस तरह के अस्वाभाविक व्यवहार से आश्चर्यचकित एवं स्तम्भित रह गये। रामकृष्ण का व्यवहार उन्हें औरों से अलग दीख रहा था; इसी से नरेन्द्र को लगा, "ये सम्भवतः सचमुच एक ऊँचे सत्यद्रष्टा महापुरूष हैं !" अतएव जो प्रश्न आज तक वे धर्माचार्यों से पूँछते आये हैं; वही प्रश्न लेकर उनकी ओर आगे बढ़े और जिज्ञासा की, "महाशय, क्या आपने ईश्वर को देखा है ?" ठाकुर ने भी तत्क्षण उत्तर दिया, "हाँ, मैंने ईश्वर को देखा है, ठीक जैसे तुम लोगो को देखता हूँ; बल्कि इससे भी अधिक स्पष्टता से।"[२] नरेन्द्र पूर्णतः चौंक गये।

इस घटना के बाद नरेन्द्र का दक्षिणेश्वर आना-जाना प्रारम्भ हो गया। उन्हें इस बात का ज्ञान हो गया था कि रामकृष्ण'अर्धोन्मत' होने पर भी परम पवित्र हैं, अज्ञ लगते हुए भी सब कुछ जानते हैं, साधारण दिखने पर भी विशिष्ट हैं। अगली यात्रा उनकी पहली यात्रा की तरह विस्मयकारक थी। उस समय तक नरेन्द्र का बौद्धिक एवं तार्किक मन फिर भारी हो चुका था। अगली मुलाकात अकेले में होती है, वे नरेन्द्र को देखकर आनन्द से उनके पास आकर बैठ गये, नरेन्द्र ने मन में सोचा, सम्भवतः यह पागल पहले दिन की तरह फिर कोई पागलपन कर बैठेगा, मैं यह सोच ही रहा था कि उन्होंने मेरे पास आकर अपना दाहिना पैर मेरे अंग पर संस्थापित कर दिया और उसके स्पर्श से क्षण भर में मेरे भीतर एक

---

१. लीला प्रसंग - ३ पृ० ५४
२. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - १ पृ० ८९

अपूर्व उपलब्धि होने लगी। .... अपने को सम्भाल न सकने के कारण, मैं चिल्ला उठा, 'अजी, आपने मेरी यह अवस्था कर डाली ? मेरे तो माँ-बाप हैं।' मेरी बात सुनकर वह अद्भुत पागल खिलखिलाकर हँस पड़ा और मेरा हाँथ पकड़कर छाती को स्पर्श करते हुए कहा, 'अच्छा तो फिर अभी रहने दे। एकदम ही होने की कोई जरूरत नहीं है। समय आने पर होगा।'[१] इस घटना ने भी नरेन्द्र को आश्चर्य में डाल दिया।

एक दिन की बात थी, केशवचन्द्र सेन, विजयकृष्ण गोस्वामी आदि लब्ध ख्याति लोग रामकृष्ण के निकट बैठे थे, नरेन्द्र भी वहाँ थे। रामकृष्ण ने सब को गम्भीर दृष्टि से देखा। सभा समाप्त होन और केशव चन्द्र के चले जाने के बाद उन्होंने कहा, " मैंने देखा, केशव जिस प्रकार एक शक्ति के विकास द्वारा संसार में विख्यात हुआ है, नरेन्द्र के भीतर उस प्रकार की अठारह शक्तियाँ पूर्ण रूप में विद्यमान हैं। फिर देखा, केशव और विजय का हृदय दीप शिखा के समान ज्ञान के प्रकाश से उज्जवल बना हुआ है। नरेन्द्र के भीतर ज्ञानसूर्य ने उदित होकर माया-मोहरूप अज्ञान को वहाँ से अपसारित कर दिया है।"[२] नरेन्द्र इसका प्रतिवाद करते हैं, " महाराज, आप कहते क्या हैं ? लोग आप की बात सुन कर आपको पागल कहेगें। कहाँ जगद्विख्यात केशव और विजय, और कहाँ उनके सामने मुझ जैसा तुच्छ स्कूल का लड़का। आप उनके साथ तुलना करके फिर कभी ऐसा न कहिएगा।"[३] इस तरह हम देखते हैं कि नरेन्द्र के बारे में उनके गुरू की वाणी आगे चलकर पूर्णतः सत्य प्रमाणित हुई और नरेन्द्र ने इन्हीं गुरू की प्रेरणा और आशीर्वचन से सम्पूर्ण विश्व को भारतीय वेदान्त की उद्घोषणा से हिला कर रख दिया। फलतः भारत में राजनीतिक, सामाजिक और विशेष रूप से धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त हीन भावना को समाप्त करने में विशेष सफलता प्राप्त हुई।

नरेन्द्र जहाँ एक ओर आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख थे, वहीं उन्हें वास्तविकता के धरातल पर कटु यथार्थ अनुभूति भी होने की थी। 'विश्वनाथ के जीवन की सान्ध्य बेला में सम्मिलित परिवार में मनमुटाव बढ़ जाने के कारण उन्हें अपना पैतृक निवास स्थल छोड़कर स्त्री-पुत्र के साथ अलग भोजन की व्यवस्था करनी पड़ी। इसके लिए उन्हें अस्थाई रूप से ६ नं० भैरव विश्राम लेन में स्थित एक किराए के मकान में चला जाना पड़ा। .... यहीं किसी दिन

---

१. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - १ पृ० ९१

२. वही, पृ० ९९

३. वही

अपने पिता के आदेश से पिता के मित्र निमाईचन्द्र बसु महाशय के दफ्तर में एटर्नी का कार्य सीखने के लिए शिक्षार्थी के रूप में भर्ती होकर प्रतिदिन पिता और चाचा के साथ दफ्तर जाया करते। ऐसी अनेक व्यस्तताओं में भी पहले की तरह ही दक्षिणेश्वर जाया करते और मित्रों के साथ आमोद-प्रमोद करते। इस प्रकार उनका जीवन सहज-सरल गति से चल रहा था।[१] उन्होंने बी० ए० की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण किया किन्तु इसी वर्ष १८८४ ई० में उनके पिता का देहान्त हो गया। पिता का श्राद्ध आदि करने के बाद नरेन्द्र को पता लगा कि उनकी आर्थिक स्थिति भयावह है; उन पर काफी ऋण चढ़ा हुआ था और पुरखों की सम्पत्ति से उन्हें वंचित भी कर दिया गया और इसी को लेकर मुकदमेबाजी भी प्रारम्भ हो गयी। ऐसी विकट स्थिति में, एक ओर परिवार का उत्तरदायित्व और भरण-पोषण, तो दूसरी ओर आध्यात्मिक साधना। उनका एक पक्ष परिवार की पीड़ा से उद्वेलित था, वहीं दूसरा पक्ष उनकी आत्मवेदना से जुड़कर उन्हें अशान्त किये हुए था। गुरू रामकृष्ण ने कहा, 'जाकर माता से जो चाहो माँग लो।' कई बार प्रयास करने पर भी नरेन्द्र 'जगन्माता' से अर्थ की माँग नहीं कर सके और केवल बुद्धि और ज्ञान प्रदान करने की प्रार्थना ही कर सके। अन्ततः गुरू रामकृष्ण ने आशीर्वाद दिया कि तुम्हें और तुम्हारे परिवार को मोटे अन्न एवं वस्त्र का अभाव कभी नहीं होगा।'

इसके बाद परिस्थितियाँ धीरे-धीरे सामान्य हो गयीं, परन्तु नरेन्द्र का मन लौकिकता में बँधने को तैयार नहीं था। भावना के प्रवाह में एकबार उन्होने रामकृष्ण से अपनी वेदना को व्यक्त करते हुए कहा, "मुझे इच्छा होती है कि मैं शुक देव की तरह लगातार पाँच-छः दिन तक समाधि में डूब जाऊँ।" नरेन्द्र की इस भावना को सुन कर रामकृष्ण तिरस्कार पूर्वक कह उठे, "छिः छिः तू इतना बड़ा आधार ! तेरे मुँह से ऐसी बातें ! मैंने सोचा था कि तू एक विशाल वटवृक्ष जैसा बनेगा, तेरी छाया में हजारों नर-नारी, दीन-दुःखियों को आश्रय मिलेगा, पर वैसा न होकर केवल अपनी मुक्ति की बात सोचता है।"[२] नरेन्द्र के सामने जैसे सत्य सम्पूर्ण रूप में उपस्थित हो गया और गुरू के अन्तःकरण की सारी भावना भी स्पष्ट हो गई। संसार के दीन-हीन, पीड़ितजन के प्रति गुरू के उद्देश्य की मूल वेदना को भी नरेन्द्र ने समझ लिया। उनका हृदय पश्चाताप और प्रसन्नता से भर

---

१. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - १ पृ० १२६
२. वही, पृ० १५९

गया; जैसे सम्पूर्ण जीवन का ध्येय स्पष्ट शब्दों में अंकित हो गया । गुरू रामकृष्ण का उदात्त उद्देश्य ही नरेन्द्र का साध्य बन गया । नर के पास नारायण के आने का कारण और नारायण के लिए उसकी छटपटहाट का उत्तर भी प्राप्त हो गया । रामकृष्ण ने नरेन्द्र को उसके जीवन सत्य और ध्येय दोनो से परिचय दे कर सारा परिदृश्य साफ कर दिया । नरेन्द्र के भीतर यह बात गहरे तक पैठ गई कि अपनी भक्ति और मुक्ति की बात तो सभी करते हैं, यह जीवन तभी सार्थक होगा, जब मानव मात्र के कल्याण, परसेवा और परोपकार के लिए कार्य किया जाय ।

रामकृष्ण जैसे इसी बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि नरेन्द्र के आने का मुख्य उद्देश्य बता दिया जाय । उनके गले में पिछले कुछ दिनों से कुछ समस्या रहा करती थी, जिस पर वे ध्यान नहीं देते थे, जिसके कारण यह हल्की समस्या आगे चलकर गम्भीर रोग में परिवर्तित हो गई । जाँच करने पर पता चला कि कैंसर है । नरेन्द्र को इससे एक बार फिर आघात लगा । अन्य शिष्यों की सहायता से नरेन्द्र उन्हें इलाज के लिए कलकत्ता ले आए । तब तक बहुत देर हो चुकी थी, जीवन की सन्ध्याबेला नजदीक थी । मृत्यु के मात्र दो दिन पहले की बात है, नरेन्द्र गुरू की शैय्या के निकट खड़े रह कर उनके ईश्वरत्व के विषय में विचार करने लगे, रामकृष्ण सब समझ गये और कहने लगे, "क्या तुझे अब भी विश्वास नहीं हुआ ? सच सच कह रहा हूँ, जो राम, जो कृष्ण वे ही इस बार इस शरीर में रामकृष्ण हुए हैं - पर हाँ, तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं ।"[१] नरेन्द्र ऐसे विस्मत हुए कि अचानक वज्रपात के बाद भी न चौंकते । सन्देह मिट गया और सन्देह के द्वारा गुरू को कष्ट देने के आत्मग्लानि और पश्चाताप के कारण नरेन्द्र रो पड़े । इसके बाद गुरू ने अपने देहत्याग की बात की और नरेन्द्र के द्वारा जनसेवा का उद्देश्य सुनकर सन्तोष के साथ १५ अगस्त १८८६ को चिर निद्रा में चले गये । ऐसा कहा जाता है कि नरेन्द्र को आजीवन गुरू रामकृष्ण द्वारा संकेत प्राप्त होते रहे, जिसके आधार पर नरेन्द्र नें अपने उद्देश्य निर्धारित किये ।

गुरू रामकृष्ण के देहत्याग के बाद नरेन्द्र के नेतृत्व में कलकत्ता के निकट वराहनगर के एक भुतहे मकान में रामकृष्ण मठ की स्थापना हुई । इसके लिए प्रारम्भ में बहुत ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । इसके प्रारम्भिक बारह सदस्य निर्धन और अज्ञात नवयुवक थे । आर्थिक

---

१. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - १ पृ० १७४

तंगी ने एकाध बार सभी को विचलित कर दिया था, किन्तु नरेन्द्र के आत्मविश्वास और दृढ़ इच्छा शक्ति ने सारे अवरोधों को एक-एक करके समाप्त कर दिया। भविष्य को ध्यान में रखकर नरेन्द्र ने योग और ध्यान की क्रियाओं के द्वारा खुद को मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से शक्तिशाली और पुष्ट बनाया। उन्होंने अपनी एक निश्चित विचारधारा का सृजित की जिसके प्रेरणास्रोत गीता, उपनिषद, रामायण, महाभारत, बौद्धमत, वैष्णवमत और शैवमत के साथ ही साथ कॉन्ट, हिगेल, स्पेन्सर, नास्तिक, भौतिकवादी, अज्ञेयवादी भी थे। षड दर्शन पर नरेन्द्र का पूर्ण अधिकार था। अपनी विचारधारा से प्रभावित नवयुवकों को संगठन के नीचे लाकर देश और समाज सेवा के लिए प्रेरित किया। एक वर्ष बाद ही (१८८७ में) नरेन्द्र ने संन्यास ले लिया और कालान्तर में विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए।

१८८७ के बाद विवेकानन्द ने अपने संगठन 'रामकृष्ण मठ' को सुदृढ़ करने के लिए कठोर परिश्रम और अनवरत कार्य का संकल्प लिया। वे इस बात की आवश्यकता पर जोर देते हैं कि जब तक परिस्थिति प्रत्यक्ष रूप में न समझी जाय तब तक निदान कैसे खोजा जा सकता है। पुण्य भूमि भारत के स्वरूप का यथार्थ अध्ययन के लिए विवेकानन्द ने एक परिव्राजक के रूप में भ्रमण करते हुए जनता के द:ुख और गरीबी का प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया। इसी समय इन्होंने अपने एक शिष्य शरच्चन्द्र गुप्त से मन की व्यथा बताते हुए कहा, "देखो बच्चा, मेरा एक महान जीवन व्रत है किन्तु अपनी अल्प क्षमता के कारण यह सोच कर उदास हूँ कि इस व्रत का निर्वाह कैसे करूँगा ? इस व्रत को पूरा करने का आदेश मुझे अपने गुरू से मिला है। यह व्रत है - मातृभूमि का पुनरूद्धार करना। .... भारत को सचेतन और गतिशील होना होगा तथा उसे अपनी आध्यात्मिकता के द्वारा विश्व विजय करनी होगी।"[१]

विवेकानन्द ने इसी विराट भावना के तहत १८९३ ई० में होने वाले विश्व धर्म - महासभा के लिए अमेरिका शिकागो शहर जाने का दृढ़ निश्चय किया। भारत भ्रमण के समय ही इसके लिए उनकी तैयारी भी प्रारम्भ हो गई। तमाम कठिनाइयों के बाद अमेरिका जाने का प्रबन्ध हो गया। भारत से विदा होने के पूर्व उन्होंने स्वामी तूरियानन्द को सम्बोधित कर कहा भी था, "हरि

---

१. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - १ पृ० २११

भाई धर्म - महासभा इसी (अपनी ओर इंगित कर) के लिए हो रही है। मेरा मन ऐसा ही कह रहा है। शीघ्र ही तुम्हें इसका प्रमाण देखने को मिलेगा।''[१]

अमेरिका पहुँचने पर विवेकानन्द को ज्ञात हुआ कि सभा के अधिवेशन को एक माह बाकी है और सभा में प्रतिनिधि बनने के लिए प्रमाण पत्र की आवश्यकता है, जिसको बनवाने की समय सीमा भी समाप्त हो चुकी थी। यह उन्हें हत-प्रभ कर देने वाली बात थी। इन दुर्धर क्षणों में भी उन्होने धैर्य नहीं छोड़ा। संघर्ष के समय ही उनकी भेंट श्रीमती हेल से हुई, जिन्होंने अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर विवेकानन्द को प्रतिनिधि स्वीकार करा लिया। ११ सितम्बर से अधिवेशन प्रारम्भ हो गया। अधिवेशन के समाप्त होने के बाद सब कुछ बदल गया; विवेकानन्द ने अपनी सर्वतोमुखी एवं नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के बल पर सर्वश्रेष्ठ वक्ता बनकर सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज के देदीप्यमान सूर्य का अप्रतिम गौरव प्राप्त किया। सारी पाश्चात्य जनता उनके विद्वता और भाषण के सामने नतमस्तक हो गई; भारत की आध्यात्मिकता के शंखनाद से सम्पूर्ण विश्व एकबार पुनः धर्म का पताका फहराने में विवेकानन्द सफल रहे।

धर्म महासभा के बाद अमेरिका में विवेकानन्द को इतना मान-सम्मान प्राप्त हुआ कि सामान्य बुद्धि वाला कोई भी व्यक्ति संयम तोड़कर भोग-विलासादि में फँस जाता किन्तु वे दूसरी ही मिट्टी के बने थे। उनके हृदय में भारतीय दीन-हीन जनमानस का सजीव चित्र अंकित होगया था। राजोचित भोग विलास सम्पन्न, आधुनिकता से सुसज्जित धनकुबेर के आतिथ्य को स्वीकरने के बाद एकान्त कमरे में भारत को याद कर भाव विभोर हो उठते हैं, '' माँ मैं इस नाम-यश को लेकर क्या करूँ, जब कि मेरे देशवासी घोर निर्धनता में डूबे हुए हैं ! हम गरीब भारतवासी ऐसी बुरी हालात तक पहुँच गये हैं कि मुठ्ठी भर अन्न के अभाव में लाखों लोग प्राण त्याग देते हैं और यहाँ लोग अपने व्यक्तिगत सुख-स्वाच्छन्द्य के लिए लाखों रूपये खर्च करते हैं। भारत की जनता को कौन उठायेगा ? कौन उनके मुख में अन्न देगा ! मैं उनकी किस प्रकार सेवा कर सकता हूँ ? माँ मेरा पथ प्रदर्शन करो !''[२]

---

१. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - २ पृ० २२
२. वही, पृ० २८

शिकागो के महाधर्मसंसद में व्यक्त विचारों से विश्व जनमानस में विवेकानन्द का जो गरिमामय व्यक्तित्व अंकित हुआ, वह एक ऐतिहासिक घटना है। इसके माध्यम से भारत की धर्मप्राणता को विश्व ने पुनः प्रमाण माना। 'रामकृष्ण से सम्पर्क के बाद' विवेकानन्द के जीवन की यह द्वितीय घटना थी जिसने उनके व्यक्तित्व को रूपान्तरित किया। इस क्रान्तिकारी घटना से पाश्चात्य देशों में भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान, उदारता और बुद्धिवाद का ऐसा तूफान उठा कि वहाँ के बौद्धिक वर्ग ने विवेकानन्द को हृदय और बुद्धि दोनों से स्वीकार कर लिया। यूरोप के कई देशों में उन्हें आग्रहपूर्वक बुलाया गया; वहाँ पर वेदान्त दर्शन के साथ ही साथ संस्कृति के गौरवपूर्ण पक्षों को समग्र पश्चिम में स्थापित किया।

अमेरिका में प्रथम सम्बोधन के बाद से ही देशवासियों की दृष्टि विवेकानन्द पर ही केन्द्रित थी। सम्पूर्ण भारत में हल-चल मच गई थी और सभी लोग उनकी ओर आशा भरी नजरों से देख रहे थे। वेदान्त केशरी स्वामी विवेकानन्द के गरिमामय व्यक्तित्व को लोग देख, सुन और समझ रहे थे। चार वर्ष तक स्वदेश से दूर रहने की वेदना एक अंग्रेज से व्यक्त करते हुए कहते हैं, " स्वदेश छोड़ कर आने के पूर्व मैं भारत से केवल प्रेम ही करता था, परन्तु अब तो भारत की धूलिकण तक मेरे लिए पवित्र है, वहाँ की वायु तक मेरे लिए पावन है; अब तो भारत मेरे लिए पुण्यभूमि है - तीर्थ स्थान है।"[१] इससे पहले लन्दन में ही सेवियर दम्पति से उन्होंने कहा था, "अब मेरे मन में एक ही विचार है और वह है भारत। अब मैं भारत की ओर देख रहा हूँ - केवल भारत की ओर।"[२]

वेदान्त केशरी विवेकानन्द का सारा भारतवर्ष आतुर नयनों से इन्तजार कर रहा था। भारत के छोटे भाई श्रीलंका में भी लोगों को सम्बोधित करते हुए रामनद के राजा के अधीन पाम्बन नगर में नवयुग के सन्देश की मौलिक बातें बताते हुए कहा, "मुझे लगता है कि प्रत्येक राष्ट्र का अपना-अपना एक मुख्य आदर्श होता है। वह आदर्श ही मानों उसके राष्ट्रीय जीवन का मेरुदण्ड है। भारत में चिरकाल से ही धर्म का प्राधान्य रहा है। ....भारत किसी भी काल में निष्क्रिय था, यह बात मैं किसी भी हालत में स्वीकार नहीं कर सकता। .... इसका प्रमाण यह है कि

---

१. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - २ पृ० २८४

२. वही,

हमारी अति प्राचीन एवं महान जाति आज भी जीवित है । .... इस समय सारी दुनिया आध्यात्मिक खाद्य के लिए भारत भूमि की ओर ताक रही है और पृथ्वी के समस्त राष्ट्रों के लिए भारत को इसकी व्यवस्था करनी होगी । .... भले ही आज हम अवनत तथा अधः पतित हो गये हों, पर यदि हम अपने धर्म के लिए जी जान से कार्य में लग जाँय, तो हम पुनः महानता के पद पर आरूढ़ हो सकेंगें ।''[१] इस प्रारम्भिक उद्घोषणा के द्वारा विवेकानन्द ने भारत में व्याप्त हीन भावना को दूर कर सांस्कृतिक गौरव को प्रस्थापित किया ।

छोटे-छोटे स्थानों पर भारी भीड़ को सम्बोधित करते विवेकानन्द मद्रास पहुँचे, जहाँ की जनता बड़ी उत्सुकता के साथ विश्व जयी हिन्दू संन्यासी के आगमन की राह देख रही थी । आने पर विशाल जनमानस ने करतल ध्वनि एवं जयघोष के साथ स्वागत किया । वहाँ 'भारत का भविष्य' विषय पर बोलते हुए उन्होंने कहा, ''शान्ति, धर्म और शासन इससे मिलकर राष्ट्र का गठन होता है; परन्तु इनमें से कोई एक आधार स्वरूप होता है और बाकी उसी के ऊपर निर्माण करते हैं । धर्म ही भारतीय जीवन का मूल सुर है और उसी के आधार पर भारतीय राष्ट्रीयता का गठन हो सकता है ।''[२]

विवेकानन्द का अगला पड़ाव कलकत्ता था । जहाँ उनका जन्म हुआ, उनकी पूज्य माता भुवनेश्वरी देवी थीं और सारा का सारा वातावरण उनका निजी था । वहाँ के लोगों ने विवेकानन्द का स्वागत नायकों की तरह किया; जगह-जगह स्वागत समारोह और अभिनन्दन किया गया । विवेकानन्द ने साभार लोगों को देश, समाज और धर्म के बारे में उत्कृष्ट सन्देश दिया । भाव-विभोर गुरू भाईयों को विधिवत सन्तुष्ट किया । सभी को संन्यासी का उद्देश्य 'आत्मनो मोक्षार्थ जगद्धिताय च' बताकर दीक्षा दिया और त्याग की आवश्यकता पर बल देते हुए अपने जीवन को सार्थक बनाने की बात की । ''आत्मनो मोक्षार्थ जगद्धिताय च' हमारा जन्म हुआ है । बैठे-बैठे तुम लोग क्या कर रहे हो ? उठो ! जागो ! स्वयं जागकर औरों का जगाओ । अपना मानव जीवन सार्थक करके जाओ - उतिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य, वरान्निबोधत (उठो, जागो और लक्ष्य

---

१. युगनायक विवेकानन्द साहित्य - ५ पृ० ३६-३७
२. युगनायक विवेकानन्द - २ पृ० ३३५

प्राप्त होने तक रूको मत) ।''[१]

उसके बाद विवेकानन्द ने एक ऐसी संस्था की आवश्यकता प्रतीत की, जो सुश्रृंखलित होकर कार्य का परिचालन कर सके । १ मई १८९७ ई० में इस इच्छा को मूर्त रूप मिला और 'रामकृष्णमिशन एसोसिएशन' की स्थापना की । मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और पारमार्थक उन्नति के लिए हरसम्भव सहायता देना ही इसका ध्येय था । प्रथम सम्बोधन करते हुए विवेकानन्द ने कहा, ''विभिन्न देशों में भ्रमण करने के बाद मेरे मन में ऐसी धारणा बनी है कि संघ के बिना कोई बड़ा कार्य नहीं हो सकता ।''[२]

इसके बाद एक बार फिर से वेदान्त केशरी ने भारत भ्रमण करना प्रारम्भ किया । जगह-जगह लोगों के सामने एक स्पष्ट विचारधारा रख, जनमानस में चेतना का प्रसार और आत्मगौरव का बोध जगाने का कार्य किया । वेदान्त के नींव को और अधिक मजबूत करने के लिए एक बार फिर अमेरिका में प्राच्य संस्कृति का गौरव स्थापित किया । अन्त में बेलुड़ मठ में देश सामाजिक, धार्मिक कार्यकर्ताओं को विविध क्षेत्रों में कार्य करने हेतु प्रोत्साहित किया ।

अनवरत शारीरिक परिश्रम करने के कारण विवेकानन्द का शरीर कमजोर हो गया था । मृत्यु के प्रति वे सम्मोहन की अनुभूति करते थे । इसका आभास भी उन्हें होने लगा था, इस बारे में भगिनी निवेदिता से उन्होंने कहा था, ''जब भी मृत्यु मेरे पास आती है, तो मेरी सारी दुर्बलता लुप्त हो जाती है । तब मुझमें भय या सन्देह या बाह्य जगत का विचार यह सब कुछ नहीं रहता । मैं केवल अपने आपको मृत्यु के लिए प्रस्तुत करता रहता हूँ ।''[३] ४ जुलाई, शुक्रवार १९०२ सबके साथ भोजन कर, सब से कुशल क्षेम पूँछा । सायं काल ध्यान करने के बाद रात ९ बज कर १० मिनट पर विवेकानन्द ने महासमाधि ली । जीवन के अन्त के बाद भी उनका शरीर सबल और जीवन्त प्रतीत हो रहा था ।

---

१. युगनायक विवेकानन्द - ३ पृ० ६
२. विवेकानन्द साहित्य - ६ पृ० ४५
३. युगनायक विवेकानन्द - ३ पृ० ३८९

(क) आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारधारा

धर्म

अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद भारतीय हिन्दू समाज का संघर्ष त्रिस्तरीय हो गया। ईसाई धर्म की नवीन प्रचार शैली ने हिन्दू धर्म को बहुत कुछ सोचने पर मजबूर कर दिया। हिन्दू धर्म पहले ही इस्लाम धर्म के साथ स्वयं को बहुत सलीके के साथ समायोजित नहीं कर पाया था । ईसाई धर्म के रूप में एक और प्रतिद्वन्द्वी के आ जाने से हिन्दू धर्म को वातावरण के प्रभाव को समझते हुए बहुत कुछ परिवर्तन करना था; जिससे वह नवीन चुनौतियों का सामना कर सके। आधुनिकता के नये सन्दर्भो के साथ जागरण की विराट सत्ता के रूप में स्वामी विवेकानन्द का आविर्भाव होता है; जिन्होने हिन्दू धर्म के उदात्त गौरव की पुनर्स्थापना की। अमेरिका को अपने भाषणों के द्वारा नतमस्तक कर भारतवर्ष की आध्यात्म का डंका सम्पूर्ण विश्व में बजाया। अपने व्यापक विचारधारा के माध्यम से हिन्दू धर्म के सम्पूर्ण दोषों को समाप्त करने के लिए सक्रिय प्रयास किया और लोगों की संकीर्णता को दूर कर विस्तृत धरातल प्रदान किया।

विवेकानन्द 'धर्म' शब्द को बहुत व्यापक अर्थवाला मानते हैं। गहरे अर्थ में, "धर्म बात करने की चीज नहीं है, न वह साम्प्रदायिकता है और न ही मतवाद विशेष। धर्म किसी सम्प्रदाय अथवा संस्था में आबद्ध होकर नहीं रह सकता। यह तो आत्मा के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है।"[१] वे धर्म को आत्म साक्षात्कार ही मानते हैं। 'वे धर्म को एक ऐसे साधन के रूप में देखते हैं; जिससे पशु मनुष्य तक और मनुष्य परमात्मा तक उठ सकता है।'[२] धर्म के किसी भी स्थूल पद्धति को उन्होंने धर्म मानने से इंकार कर दिया। जो केवल अनुभूति का विषय है, उसे कोई स्थूल आधार कैसे दिया जा सकता है।

विवेकानन्द एक ऐसे गुरू के शिष्य थे; जिन्हें हम धर्म का प्रतिरूप कह सकते हैं। रामकृष्ण परमहंस ने अपनी साधना और तप के बल पर धर्म के सार तत्व को प्राप्त कर लिया था। उन्होंने अपने आपको धर्मों की प्रयोगशाला बना दिया था; उन्होंने कुछ दिन इस्लाम से जुड़कर

१. विवेकानन्द साहित्य - -७ पृ० २६०
२. विवेकानन्द साहित्य - -१० पृ० २१३

और कुछ समय ईसाई भावना से भरकर परम तत्व की अनुभूति की और ईश्वर प्राप्ति के लिए इन मार्गो को भी उदात्त बताया सभी धर्मो से साधना करके यह निष्कर्ष निकाला कि सभी मार्ग या पंथ सही है और उसी परमपिता या जगन्माता की ओर ले जाना ही सबका लक्ष्य है।

विवेकानन्द में गुरू रामकृष्ण का भाव ही बुद्धिवाद के साथ समन्वित होकर अभिनव धर्म बन जाता है, जिसके अंग के रूप में अनुष्ठान, पद्धति, मत, शास्त्र, मन्दिर एवं अन्यान्य बाह्य क्रिया कलाप हैं। विवेकानन्द इन सबके आधार पर धर्म की विवेचना को अमान्य कर देते हैं और धर्म के सार तत्व को जानने के लिए अभिप्रेरित करते हैं, इसके साथ ही साथ बाह्याचारों को ही धर्म मानकर चलने वालों की कड़ी निन्दा भी करते हैं, "पर धिक्कार है उस व्यक्ति को, धिक्कार है उस राष्ट्र को, जो धर्म के सार तत्व को भूल जाता है और अभ्यास वश बाह्य अनुष्ठानों को ही कसकर पकड़े रहता है तथा उन्हें किसी तरह नहीं छोड़ता।"[१] वे धर्म पर किसी एक मत या सम्प्रदाय का अधिकार स्वीकार नहीं करते।

'विश्वधर्म की उपलब्धि के मार्ग' विषय पर बोलते हुए विवेकानन्द ने कहा, "अतएव मेरी धारणा यह है कि समस्त धर्म ईश्वर के विधान की विभिन्न शक्तियाँ हैं और वे मनुष्य का कल्याण कर रहे हैं। उनमें से एक भी नहीं मरता, एक को भी विनष्ट नहीं किया जा सकता। .... प्रत्येक धर्म का जो चरम आदर्श है, वह कभी विनष्ट नहीं होता, इसलिए प्रत्येक धर्म ही ज्ञात भाव से अग्रसर होता जा रहा है।"[२] इसी तरह सभी सम्प्रदायों के बारे में उनका कहना था, "तथापि प्रत्येक सम्प्रदाय एक-एक महान सत्य को दिखा रहा है, प्रत्येक धर्म किसी एक वस्तु को - जो उसका प्राण या आत्मा स्वरूप है - पकड़े हुए है।"[३] अतः हमें सभी धर्मों को आदर के दृष्टि से देखना चाहिए। अपने ही धर्म को श्रेष्ठ समझकर अन्य धर्मो के प्रति नकारात्मक दृष्टि नहीं रखना चाहिए। " प्रत्येक को चाहिए कि वह अन्य धर्मों के सार तत्व को आत्मसात करके पुष्ट हो और अपने वैशिष्ट्य को बनाये रखकर अपनी प्रकृति के अनुसार विकसित हो। साधन, पवित्रता और दयालुता किसी विशेष सम्प्रदाय की बपौती नहीं हैं, यदि कोई ऐसा स्वप्न देखता है कि केवल उसी का धर्म टिका रहेगा, अन्य सारे धर्म लुप्त हो जायेंगे, तो वह दया का पात्र है। मैं उसके लिए

१. विवेकानन्द साहित्य - ४ पृ० ४१
२. विवेकानन्द साहित्य - ३ पृ० १३१
३. वही, पृ० १३४

हृदय से दुःखी हूँ।''[१] इस तरह विवेकानन्द सभी धर्मों को सत्य मानते हैं और उनके मध्य समन्वय कर आपसी एकता और सौहार्द की भावना को बढ़ाने की बात करते हैं।

विवेकानन्द ने केवल अपने धर्म को उत्तम बताकर शेष को असत्य कहने वालों को धर्मान्ध कहा और इसकी अन्धविश्वास के साथ तुलना करते हुए धर्ममहासभा में कहा भी, ''अन्धविश्वास मनुष्य का महान शत्रु है, पर धर्मान्धता तो उससे भी बढ़कर है।''[२] ऐसा करने वाले न तो अपने धर्म का उत्थान करते हैं और न ही अगले धर्म का पतन, बल्कि सनातन धर्म की अवहेलना करते हैं। ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा धर्मान्तरण किये जाने का वे हमेशा विरोध करते रहे और अर्थलोभ के माध्यम से भोली-भाली जनता को प्रभावित कर अपने धर्म में शामिल कर लेने को भी इस्लाम धर्म की तरह बलात् किया जाने वाला कार्य माना, जो निन्दनीय है। यह केवल धर्म ही नही बल्कि सारी मानवता का अपमान है। इसी की व्याख्या करते हुए विवेकानन्द ने कहा, ''किसी मनुष्य की श्रद्धा नष्ट करने का प्रयत्न मत करो।''[३] वे सभी धर्मों के मध्य समन्वय की आवश्यकता पर जोर देते हैं और हीनताबोध से ऊपर उठकर 'सर्वधर्मसमभाव' को आज के लिए आवश्यक मानते हैं। धार्मिक समभाव और उदात्त सन्दर्भ से जुड़ा हुआ एक रोचक प्रसंग इस प्रकार है, एक बार अलवर में एक मौलवी साहब उनसे मिलने आये और बोले, महाराज मेरी बड़ी इच्छा है कि आप एक बार मेरे घर आ कर भोजन करें .... ''मैं एक संन्यासी हूँ .... और संन्यासी की कोई जाति नहीं होती। .... आप प्रेम से बुला रहे हैं तो मैं अवश्य आऊँगा .... और आप के साथ ही बैठकर भोजन कँगा।''[४] विवेकानन्द ने कहा।

विवेकानन्द शाश्वत और सनातन धर्म के केन्द्रीय भाव में हिन्दू धर्म को रखते हैं। यह अन्य धर्मों के उदय से पहले ही अस्तित्व में था। धर्म भारत के केन्द्रीय भाव में भी स्थित है, जैसे - सनातन धर्म के केन्द्रीय भाव में हिन्दू धर्म। यहाँ की जनता में धर्म रच-पच गया है और धर्म का इतना सामान्यीकरण हो गया है कि सामान्य आचार भी धर्म माना जाने लगा, फलतः समाज धीरे-धीरे आचारों से बँधता गया और उसकी गतिशीलता समाप्त हो गयी। इसके परिणाम स्वरूप

१. युगनायक विवेकानन्द - २ पृ० ४१
२. विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० १७
३. विवेकानन्द साहित्य - ७ पृ० २७३
४. विवेक ज्योति, वर्ष ३१, अंक ३ पृ० ५

धर्म स्थूलगामी प्रतीत होने लगा और उसकी धार क्षीण हो गयी। परिणामस्वरूप संकीर्णताओं का वेग प्रखर हुआ और हिन्दू धर्म उपनिषदों के मूल स्रोत से भटक कर खान-पान और रहन-सहन तक केन्द्रित हो गया। धर्म के इस परिवर्तित स्वरूप में भारतवर्ष को गहरी क्षति पहुँचाई और अनेकानेक रूढ़ियों से ग्रस्त होकर देशवासी गुलामी के कड़े बन्धनों में जकड़ दिये गये।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हिन्दू धर्म और समाज में नवजागरण की बयार बही और तार्किकता एवं बौद्धिकता के माध्यम से धर्म को भी कसौटी पर कसा गया, तब कहीं जाकर रूढ़ियों और आडम्बरों पर ध्यान दिया गया। किसी ने आधुनिक रंग में धर्म को रँग डाला, तो किसी ने धर्म पर ही प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया। ऐसे समय विवेकानन्द की सजग और मुखर दृष्टि इस ओर पड़ी और उन्होंने सम्पूर्ण धर्म को नवीन आयाम देते हुए इसके पुनर्मूल्यांकन की बात की।

विवेकानन्द सभी धर्मों के अन्तर्निहित सत्य को स्वीकार करते हुए भी हिन्दू धर्म की उदारता, सहिष्णुता एवं मानवीयता की विशेष प्रशंसा करते हैं। हिन्दू धर्म की अवनति का कारण अपने आप पर विश्वास न करना मानते हुए, इसे सामाजिक गिरावट का प्रतिफल माना। भारतीय समाज के आचार और नियम को धर्म मानने से ही मूल समस्या आरम्भ होती है और हम धर्म के मूल से भटक कर बाह्याचारों में ही सिमटकर रह गये हैं। इन विसंगतियों के बावजूद विवेकानन्द हिन्दू धर्म को अन्य धर्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ और अधिक संगत बताते हैं। धर्म को भारतीय जनता का मेरुदण्ड बताते हुए महासभा में स्वागत का उत्तर देते हुए, हिन्दू धर्म को गौरवपूर्ण और अद्वितीय घोषित करते हैं, "मैं ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनो की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने में अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और देशों के उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को आश्रय दिया है।"[१]

हिन्दू धर्म की विसंगतियों को आत्मपीड़न से जोड़ते हुए विवेकानन्द ने धर्ममहासभा में ही उत्तर देते हुए कहा, "भारतवर्ष में मूर्ति-पूजा कोई जघन्य बात नहीं है। वह व्यभिचार की

---

१. विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० ३

जननी नहीं है। वरन् वह अविकसित मन के लिए उच्च आध्यात्मिक भाव को ग्रहण करने का उपाय है। .... उनके दोष अपने शरीर को उत्पीड़ित करने तक ही सीमित है, वे कभी अपने पड़ोसियों का गला नहीं काटने जाते। एक हिन्दू धर्मान्ध भले ही चिता पर अपने आप को जला डाले, पर वह विधर्मियों को जलाने के लिए 'इन्क्वीजिशन' की अग्नि कभी भी प्रज्वलित नहीं करेगा।''[१] इस प्रकार विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म के दोषों और विसंगतियों को भी सही भाव-बोध का उदाहरण बताया, जिससे हिन्दू धर्म का सहिष्णु और मानवीय रूप सामने आता है। इसी उदात्त भावना के कारण, ''भारतीय राष्ट्र कभी भी नष्ट नहीं हो सकता। यह अमर है और उस समय तक टिका रहेगा, जबतक इसका धर्मभाव अक्षुण्ण बना रहेगा, जबतक इस राष्ट्र के लोग अपने धर्म को त्याग नहीं देंगे।''[२]

नववेदान्त

विवेकानन्द ने वेदान्त को नये सिरे से परिभाषित किया। उन्होंने वेदान्त को, जो ऋषियों, मुनियों एवं जंगलों तक सीमित था, जन-जन तक पहुँचाया। उनका कहना था कि 'प्रत्येक मनुष्य के अन्दर विद्यमान शक्ति ही ईश्वर है। मानव के अन्दर निहित दिव्य शक्ति को प्रकट करना ही वेदान्त है।' इसके लिए सर्वप्रथम, ''आध्यात्मिक और व्यावहारिक जीवन के बीच जो काल्पनिक भेद है, उसे भी मिट जाना चाहिए, क्योंकि वेदान्त एक अखण्ड वस्तु के सम्बन्ध में उपदेश देता है। वेदान्त कहता है कि एक ही प्राण सर्वत्र विद्यमान है। धर्म के आदर्शों से सम्पूर्ण जीवन को आविष्ट करना, हमारे प्रत्येक विचार के भीतर प्रवेश करना और कर्म को अधिकाधिक प्रभावित करना चाहिए। .... अतः पहले हमें वेदान्त सिद्धान्त का परिचय प्राप्त करना होगा और यह समझना होगा कि ये सिद्धान्त किस प्रकार पर्वत की गुफाओं और घने जंगलों में से निकलकर कोलाहलपूर्ण नगरों की व्यस्तताओं में भी कार्यान्वित हुए हैं।''[३]

वेदान्त के साथ मानव एवं जीव मात्र को व्यावहारिक रूप में जोड़कर विवेकानन्द ने

---

१. विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० १९
२. विवेकानन्द साहित्य - ७ पृ० २४३
३. विवेकानन्द साहित्य - ८ पृ० ३

उसे नवीन आयाम प्रदान किया । सुख-दु:ख आदि नितान्त स्थूल तत्वों के साथ वेदान्त को समन्वित करके आम मानव के लिए भी उसकी राह स्पष्ट कर दिया । उन्होंने यथार्थ जीवन को आदर्श के साथ समन्वित करके देखा और वर्तमान जीवन को अनन्त जीवन के साथ एकरूप करने की आवश्यकता पर बल दिया । इसका स्पष्टीकरण करते हुए वे कहते हैं, "तुम्हे सदा स्मरण रखना होगा कि वेदान्त का मूल सिद्धान्त यह एकत्व अथवा अखण्ड भाव है । द्वित्व कहीं नहीं है । .... एकमात्र जीवन है, एकमात्र जगत् है, एकमात्र सत् है । सब कुछ वही एक सत्ता मात्र है ; भेद केवल परिमाण का है, प्रकार का नही । हमारे जीवन में अन्तर प्रकारगत नही है । वेदान्त इस बात को बिल्कुल नही मानता कि पशु मनुष्य से पूर्णतया पृथक है और उन्हे ईश्वर ने उन्हे हमारे भोज्य रूप में बनाया है ।"[१] इस तरह विवेकानन्द ने वेदान्त को अभिनव आधारों पर प्रस्थापित किया और जन सामान्य के चिन्तन और उसके प्रति उनके दृष्टिकोण को भी अपने विस्तृत कलेवर में स्थान प्रदान करके वेदान्त को नितान्त औपचारिक तत्व बना दिया, जिसके परिणामस्वरूप यह सब के लिए ग्राह्य हो गया ।

वेदान्त का यही विस्तार और उसको मानव के साथ प्रत्यक्ष रूप दे देना ही नववेदान्त कहा जाता है । जनसाधारण के लिए भी यह शब्द निजी और औपचारिक हो गया । इसी के साथ ही साथ यह शब्द अब और अधिक व्यापक और जीवन्त होकर जीवन की गहराईयों से जुड़ गया । इसके द्वारा अन्त:करण में व्याप्त शक्तिपुंज का अनुभव करके उसका प्रकटीकरण किया जा सकता है, जैसा कि वे कहते भी हैं, "वेदान्त का सिद्धान्त है कि मनुष्य के अन्तर में ज्ञान का समस्त भण्डार निहित है - एक अबोध शिशु में भी - केवल उसको जाग्रत कर देने की आवश्यकता है और यही आचार्य का काम है ।"[२] इसी आचार्यत्व का निर्वाह विवेकानन्द ने किया और प्रत्येक व्यक्ति को अपने ऊपर विश्वास करने के लिए प्रेरित किया ।

"वेदान्त आदर्श का उपदेश देता है और आदर्श वास्तविक की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च होता है । हमलोगों के जीवन में दो प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं । एक है अपने आदर्श का सामंजस्य जीवन से करना, और दूसरी है, जीवन को आदर्श के अनुरूप उच्च बनाना ।"[३] इसकी

१. विवेकानन्द साहित्य - ८ पृ० ८
२. वही, पृ० २२८
३. वही, पृ० ५

और अधिक स्पष्ट रूप से व्याख्या करते हुए विवेकानन्द मानते हैं कि वेदान्त आदर्श की दृष्टि से भी व्यवहार्य है। 'तत्वमसि' - (तुम्ही ब्रह्म हो) की अन्तिम परिणति के रूप में वेदान्त को ही देखते हैं।

विवेकानन्द का नववेदान्त प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर मानता है और उनके मध्य का सम्बन्ध व्यष्टि और समष्टि भाव से देखता है। उनके अनुसार, "निर्गुण ईश्वर जीवन्त ईश्वर है, वह एक तत्व मात्र है। सगुण - निर्गुण के बीच भेद यही है कि सगुण ईश्वर मानव विशेष मात्र है, और निर्गुण ईश्वर है मनुष्य, पशु, देवता तथा कुछ और अधिक, जो हम नहीं देख पाते, क्योंकि सगुण निर्गुण के अन्तर्गत है और निर्गुण सगुण, व्यष्टि, समष्टि एवं उसके अतिरिक्त और भी बहुत कुछ है।"[१] इस प्रकार विवेकानन्द का नववेदान्त मानव मात्र के मध्य की असमानता को दूर करते हुए अखण्ड, अनन्त, असीम ऐक्य की भावना से भरा हुआ है, जो उसे सगुण ईश्वरत्व का बोध कराता है और धीरे-धीरे समष्टि में समाहित हो जाता है।

विवेकानन्द वेदान्त और भक्ति में कोई विरोध नहीं देखते। भक्ति प्राप्त करने के अनेक उपाय हैं, उसमें ईश्वर का नाम स्मरण करना भी एक है, "भक्ति प्राप्त करने का एक उपाय है, ईश्वर का बारम्बार नाम जप। मंत्रों का - केवल शब्दोच्चारण का प्रभाव होता है।"[२] आध्यात्मिक उन्नति के लिए विवेकानन्द कई सोपानों की चर्चा करते हैं और 'प्रार्थना और स्तुति प्रथम साधन है। भगवान् के नाम के जप में चमत्कारी शक्ति है।'[३] प्रार्थना के लिए वे कई बिन्दुओं की चर्चा करते हैं -

"प्रार्थना करो कि वह अभिव्यक्ति, जो हमारा पिता है, हमारी माता है, हमारे बन्धन को काटे।

प्रार्थना करो, "जिस प्रकार पिता पुत्र का हाथ पकड़ता है, उसी प्रकार हमारा हाथ पकड़ो। हमें त्यागो नहीं।"

प्रार्थना करो, "मुझे धन और सौन्दर्य, यह लोक अथवा परलोक नहीं चाहिए। हे ईश्वर ! हे स्वामी ! मैं केवल तुझे चाहता हूँ। मैं थक गया हूँ। हे नाथ, मेरा हाथ

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ८ पृ० २८
२. विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० ३०४
३. विवेकानन्द साहित्य - ३ पृ० २६२

पकड़ो । मैं तुम्हारी शरण में हूँ । मुझे अपना दास बनाओ । मेरी रक्षा करो ।''[१]

विवेकानन्द ईश्वर की प्राप्ति में प्रार्थना और स्तुति को बहुत महत्व देते हैं । साधना की सहजता और सरलता के परिप्रेक्ष्य में इसका जनसाधारण में अधिक प्रसार है । इस तरह के माध्यम से जीवात्मा के कलुषित और दूषित विचार नष्ट हो जाते हैं । प्रार्थना के माध्यम से ही जीव परम पिता के प्रति अधिक निकटता का अनुभव करता है, जो कालान्तर में अभिन्न होने के बोध को स्पष्ट कर देता है । मानसिक दुर्बलता को दूर करने में भी भक्ति के इस उपाय की ग्राह्यता अधिक है, जो जटिल और दुरूह राहों की अपेक्षा सीधे भावबोध पर अवस्थित है । ये प्रार्थना के शब्द अनुभूतियों से जुड़कर प्राणवन्त हो उठते हैं, जैसा कि विवेकानन्द कहते हैं, ''ये शब्द (मंत्र) ध्वनिमात्र नहीं हैं, वरन् स्वयं ईश्वर हैं, और वे हमारे ही भीतर स्थित हैं । उस ईश्वर का ध्यान करो, उसकी चर्चा करो ।''[२]

दर्शन

साधारणतः 'दर्शन' शब्द की व्युत्पत्ति 'दृश्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है देखना, किन्तु धर्म और साहित्य में इसका व्यापक अर्थ लिया जाता है; यह जीवन और जगत से सम्बन्धित 'सत्य को युक्तियुक्त तर्कपूर्ण - बौद्धिक पद्धति द्वारा दिखाने वाला ज्ञान ही दर्शन है ।' इसके अन्तर्गत ब्रह्म, जीव, जगत्, मुक्ति, जन्म-मृत्यु आदि का स्वरूप आ जाता है । स्वामी विवेकानन्द के विचारों में इन पक्षों का विशद विवेचन हुआ है । श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य विवेकानन्द का दर्शन वस्तुतः उन्हीं के आधार पर निर्मित हुआ है, जिसमें 'पश्चिम के विवेक को समन्वित करके उसे एक नयी आध्यात्मिक ज्योति के रूप में उपस्थित किया है ।'[३] श्रीरामकृष्ण द्वारा 'आध्यात्म तत्व की एकता' का उद्घोष जहाँ मध्य युग के मन को आधुनिक युग की सार्वजनीयता और सार्वभौमिकता देता है, वहाँ विवेकानन्द एक कदम और आगे बढ़कर आधुनिक युग की सामाजिक, अर्थनैतिक और औद्योगिक जीवन की एकता द्वारा उस आध्यात्मिक एकता को

१. विवेकानन्द साहित्य - ३ पृ० २६३
२. वही, पृ० २६२
३. निराला काव्य में सांस्कृतिक चेतना - जगदीश चन्द्र पृ० ९३
३. निराला और नवजागरण - डा० रामरतन भटनागर पृ० १६९

व्यावहारिक अद्वैतवाद (वेदान्त-दर्शन) का क्रियात्मक रूप प्रदान करते हैं ।"[१] इस तरह विवेकानन्द का वेदान्त - दर्शन कोई नवीन आविष्कार नहीं है, अपितु उनके गुरू का आनन्दवाद जब विवेकानन्द के तार्किक बुद्धिवाद से एकीकृत होता है, तभी व्यावहारिक वेदान्त की धारा निकलती है और सारा विश्व उसके प्रवाह से प्रभावित होता है ।

विवेकानन्द ने आदर्श और यथार्थ के मध्य एक सूक्ष्म रेखा भी स्वीकार किया है वे वेदान्त में अद्वैतवाद के सर्वश्रेष्ठ रूप को व्यवहार्य नहीं मानते, क्योकि वहाँ अभेद है, अखण्डता है, एकत्व है, अतएव वहाँ किसी प्रकार खण्डन नहीं किया जा सकता । जैसा कि विवेकानन्द कहते भी हैं, '' सर्वोच्च अद्वैतवाद को व्यवहारिक जीवन में नहीं लाया जा सकता । व्यावहारिक स्तर पर लाया हुआ अद्वैत, विशिष्टाद्वैत की भूमिका से काम करता है । .... अद्वैतवाद में 'मैं' ईश्वर में स्वयं खो जाता है । ईश्वर यहाँ है, ईश्वर वहाँ है, ईश्वर 'मैं' है ।''[२]

विवेकानन्द का दर्शन श्रीरामकृष्ण परमहंस से भिन्न नहीं है । उन्होंने श्रीरामकृष्ण के सन्देश सूत्रों को भाष्य रूप में लोगों के सामने रखा । वे अपने गुरू द्वारा निरूपित 'आनन्दवाद' के साथ तार्किकता एवं बौद्धिकता को इतना समन्वित कर प्रस्तुत करते हैं कि वह अकाट्य हो जाता है । आध्यात्मिक अद्वैतवाद के बिखरे सूत्रों को मिलाकर एक अभिनव दर्शन की सृष्टि करते हैं । विवेकानन्द साहित्य प्रथम खण्ड की भूमिका में ही दार्शनिक तत्वों को प्रतिफलित दिखाया गया है, विवेकानन्द का कहना है कि एक हिन्दू की दृष्टि में 'मनुष्य भ्रम से सत्य की ओर अग्रसर होता है; निरन्तर सत्य से उच्चतर सत्य की ओर जाता है ।' यह तथा मुक्ति का यह सिद्धान्त कि मनुष्य को ईश्वर का साक्षात्कार करके ईश्वर होना है; यह सत्य कि धर्म केवल तभी हममें पूर्णता को प्राप्त करता है, 'जब वह हमें उस तक ले जाता है, जो मृत्यु के संसार में एकमात्र जीवन है, उस तक जो नित्य परिवर्तनशील जगत् का चिरन्तन आधार है, उस एक तक ले जाता है, जो केवल आत्मा ही है ।'' आदर्श के स्तर पर ''इस विश्व का कोई निर्पेक्ष अस्तित्व ही नहीं है; यह सब माया है, मिथ्या है । यह सम्पूर्ण विश्व, ये देवगण, ये देवदूत, जन्म और मरण के चक्र में पड़े हुए ये सारे प्राणी तथा उन्नत और अवनत होती हुई ये असंख्य जीवात्माएँ - सभी की सभी स्वप्नमय हैं । जीव

---

१. निराला और नव जागरण - डॉ० रामरतन भटनागर, पृ० १६९

२. विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० ३०४

नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। नानात्व भला कैसे हो सकता है ? है केवल एक अद्वितीय अनन्त सत्ता ही।'[१] इस प्रकार से विवेकानन्द सिद्धान्त के उच्च आदर्श युक्त धरातल पर दर्शन के ऐक्य पर जोर देते हैं; पर यथार्थ धरतल पर सभी पक्षों की विशद विवेचना करते हैं। श्रीरामकृष्ण का बेल के गूदे के उदाहरण की तरह परम ब्रह्म से अलग कुछ नहीं है, क्योंकि बेल के फल को निचोड़ने पर कुछ भी प्राप्त नहीं होता, केवल तरल पदार्थ ही बचता है - उसी तरह दर्शन को निचोड़ने पर ईश्वर मात्र बचते हैं। फिर भी बाह्यान्तर पक्षों को समझना अनिवार्य है।

ब्रह्म या ईश्वर

विवेकानन्द ब्रह्म की विशद चर्चा करते हैं। उसके व्यापक स्वरूप में सब कुछ समाहित हो जाता है। जीवन-मरण में, सुख-दुःख में सब में ब्रह्म विद्यमान है। 'वही समुदय जगत् का सत्ता स्वरूप है - हमारी आत्मा की आत्मा है।'[२] 'मैं तुमसे फिर कहता हूँ कि ईश्वर ज्ञेय भी नहीं है और अज्ञेय भी नहीं, वह इन दोनो से अनन्त गुना ऊँचा है।'[३] 'वह एक है, सत्य है और हम सब में ओत-प्रोत है।'[४] 'तुम किसी प्रकार यह नहीं कह सकते कि तुम उसे जानते हो, क्यों कि तब तो उसे बहुत नीचे गिराना हो जाता है। तुम अपने से बाहर नहीं आ सकते, अतएव उसे जान भी नहीं सकते। ज्ञान शब्द का अर्थ है - विषयीकरण' - वस्तु को बाहर लाकर विषय की भाँति प्रत्यक्ष करना।'[५] प्रत्येक आत्मा ब्रह्म है और आत्म दर्शन ही ब्रह्म की प्राप्ति है। अपने पर्यावरण में, सृष्टि के कण-कण में वह विद्यमान है। यही अभ्यास ही ईश्वर-प्राप्ति का एकमात्र सरल एवं सहज उपाय है। भक्ति, ज्ञान, कर्म और योग में से किसी एक द्वारा अथवा सबके समन्वय द्वारा अन्तः निहित ब्रह्म की अभिव्यक्ति करने में सफल होना ही ब्रह्म की प्राप्ति है।

ईश्वर प्रेम स्वरूप है और 'प्रेम ही सृष्टि के विकास का साधन, जीवन का मूल मंत्र

---

१. विवेकानन्द साहित्य - १, पृ० २३८
२. वही - २, पृ० ८८
३. वही, पृ० ८९
४. ज्ञानयोग - स्वामी विवेकानन्द, पृ० १०१
५. विवेकानन्द साहित्य - २, पृ० ८८

और सच्चिदानन्द है ।'[1] इसी के साथ ही साथ 'ईश्वर सर्वव्यापी, सर्वदर्शी, निराकार विभु है और वह प्रकृति के माध्यम से नित्य क्रियाशील है । यह सम्पूर्ण प्रकृति उसी के वश में है ।'[2] ईश्वर निर्दय है और निर्दय नहीं । वह एक साथ सत् और असत् भी । अतएव वह सर्वविरोधाभासी है ।[3] जैसा कि श्रीरामकृष्ण ने उसी सत्य को इस प्रकार व्यक्त किया है, ''ईश्वर साकार और निराकार, दोनो ही है । ईश्वर वह भी है, जिसमें साकार और निराकार, दोनो ही समाविष्ट हैं ।''[4] विवेकानन्द ने उसी ब्रह्म को जगन्माता महाशक्ति के रूप में भी कल्पित किया है । यही जगन्माता ही सृजन, पालन और विनाश का कारण है; माया रूपी धूल साफ होने के बाद ब्रह्म का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है और इसी को आत्मबोध या आत्म प्राप्ति भी कहा जा सकता है ।

जीवात्मा

विवेकानन्द के अनुसार आत्मा एवं परमात्मा एक ही हैं ! आत्मा अजर-अमर और अविनाशी है । आत्मा सर्वसमर्थ, अपराजित, स्वतंत्र एवं स्वयं ही विश्व - स्रष्टा स्वरूप है । समस्त बहिर्जगत उसी अन्तर्जगत (आत्मा) का प्रकाशन मात्र है । जीव मोह-माया और अज्ञान के कारण अपनी शक्ति और स्वरूप भूल जाता है । वे कहते हैं, ''तुम शरीर, मन या जीवात्मा के रूप में स्वप्नमय हो, तुम्हारा यथार्थ स्वरूप तो वही सत्, चित् और आनन्द का है । तुम्ही इस विश्व के ईश्वर हो । .... अतः ये सब जन्म और पुनर्जन्म, आना और जाना, सभी मायिक कल्पना मात्र हैं । तुम तो अनन्त हो । तुम भला कहाँ जा सकते हो । .... क्योंकि मैं तो सत्-चित्-आनन्द स्वरूप हूँ । सोण्हम् सोण्हम् ।''[5] रामकृष्ण की तरह विवेकानन्द भी मानव को ईश्वर मानते हैं । रामकृष्ण के अनुसार 'जीव ही शिव है और पीड़ित मानवता की सेवा ही ईश्वर पूजा है । जीव को शिव मानकर पीड़ित मानवता की सेव-सुश्रुषा में पूजा भाव की साधना नव्यवेदान्ती चेतना का कर्मकाण्ड कही जायेगी । अद्वैतवाद उसका ज्ञानकाण्ड और आत्म निवेदन

---

१. प्रेमयोग - स्वामी विवेकानन्द, पृ० १२१
२. विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० २३२
३. वही, पृ० २९९
४. विवेकानन्द साहित्य, भूमिका से
५. वही - १, पृ० २३८

भक्तिकाण्ड ।"[१] ऐसी बात करते हुए विवेकानन्द प्रस्तर-प्रतिमा को पूजने वालों से कहते हैं, " यदि प्रतिमा की ही पूजा करनी है तो मानव से अच्छी और कौन सी प्रतिमा हो सकती है ।"[२] आत्मा के मुक्त स्वभाव को व्यक्त करते हुए कहते भी हैं, "मेरा जन्म भी नहीं है, मेरी मृत्यु भी नही है; मेरे पिता भी नही है, माता भी नही हैं; मेरा शत्रु भी नही है, मेरा मित्र भी नही है; क्योंकि वे सब मैं ही हूँ । मैं ही अपना बन्धु हूँ, मैं ही अपना शत्रु हूँ, मैं ही अखण्ड सच्चिदानन्द हूँ, मैं ही वह हूँ, मैं ही वह हूँ ।"[३] वे मानव के अमरत्व को घोषित करते हैं, 'अमृत के पुत्रों! .... आप तो ईश्वर की संतान हैं; अमर, आनन्द के भागी हैं; पवित्र और पूर्ण आत्मा हैं । आप इस मर्त्यभूमि पर देवता हैं । आप भला पापी ? मनुष्य को पापी कहना ही पाप है, वह मानव स्वरूप पर घोर लांछन है । आप उठें ! हे सिहों ! .... आप हैं आत्मा, अमर, आत्मामुक्त, आनन्दमय नित्य ।"[४]

जगत्

विवेकानन्द के दर्शन में जगत भी ब्रह्म से अभिन्न नहीं है । 'ब्रह्म से ही जगत् की उत्पत्ति हुई है, यदि और अधिक ठीक कहें तो उसी का प्रसार है और यदि और यथार्थ पूछते हो तो साक्षात स्वयं ही ब्रह्म है ।"[५] 'यह समुदय जगत् मानो उस ब्रह्म का एक विशेष रूप है । ब्रह्म ही वह समुद्र है और तुम और मैं, सूर्य, तारे सभी उस समुद्र में विभिनन तरंग मात्र हैं । तरंगों को समुद्र से पृथक कौन करता है ? .... यह रूप । और यह रूप है देश-काल लिमित्त । यह देश-काल भी सम्पूर्ण रूप से इन तरंगों पर निर्भर रहता है ।"[६]

ब्रह्म के अन्तर्गत ही जगत् का प्रसार है । 'यहाँ पर जगत् शब्द से केवल जड़ जगत् ही नहीं; किन्तु सूक्ष्म और आध्यात्मिक जगत्, स्वर्ग, नरक, और वास्तव में जो कुछ भी है, सबको इसके अन्तर्गत लेना होगा ।"[७] ब्रह्म और जगत् के मध्य के सम्बन्ध को नीचे के चित्र द्वारा और

१. निराला और नवजागरण - डॉ० रामरतन भटनागर, पृ० १९४
२. प्रेम योग - स्वामी विवेकानन्द, पृ० १२१
३. विवेकानन्द साहित्य - ८, पृ० ७२
४. वही, - १, पृ० १२
५. ज्ञान योग,पृ० १२
६. विवेकानन्द साहित्य - २, पृ० ९१
७. वही, पृ० ८५

अधिक स्पष्ट किया है -:-

(क) ब्रह्म
(ग) देश काल निमित्त
(ख) जगत्

यच ब्रह्म (क) देश-काल-निमित्त (ग) में से होकर आने से जगत् (ख) बन गया है। यही अद्वैतवाद की मूल बात है। हम देश-काल-निमित्त रूपी काँचे में से ब्रह्म को देख रहे हैं; और उस प्रकार नीचे की ओर देखने पर ब्रह्म हमें जगत् के रूप में दिखता है। इससे यह स्पष्ट है कि जहाँ ब्रह्म है, वहाँ देश-काल-निमित्त नहीं है।''[१] इस जगत् में जो कुछ है, वह सब ईश्वर से आच्छन्न है।'[२]

माया

'श्रीरामकृष्ण देव के अनुसार 'माया' ब्रह्म का अवगुण्ठन है और ब्रह्म की कृपा से ही इसका निवारण हो सकता है, किन्तु भक्त माया का तिरस्कार न करके स्वयं को महामाया-रूप महाशक्ति के प्रति समर्पित कर देता है और उससे ब्रह्म साक्षात्कार में सहायक बनने के लिए प्रार्थना करता है।'[३] विवेकानन्द अज्ञात को ही माया मानते हैं और उसका प्रकृति के साथ सम्बन्ध जोड़ते हैं, ''माया को ही प्रकृति समझो और माया के शासक को स्वयं ईश्वर जानो।'[४] 'माया संसार की व्याख्या करने के निमित्त कोई सिद्धान्त नहीं है। वह संसार की वस्तु स्थिति का वर्णन मात्र है।'[५] अपने कठोर रूप में वह 'माया हमें चारों ओर से घेरे हुए है और वह अति भयंकर है।

१. युगनायक विवेकानन्द साहित्य - २ पृ० ८५
२. वही - १,पृ० १५०
३. निराला और नवजागरण - डॉ० रामरतन भटनागर, पृ० १८५
४. विवेकानन्द साहित्य - २, पृ० ४४
५. वही, पृ० ५२

फिर भी हमें माया में से हो कर ही कार्य करना पड़ता है ।'[१]

विवेकानन्द ने माया को एक भटकाने वाली शक्ति के रूप में स्वीकार किया है । संसार के साथ उसका सम्बन्ध भी चिर और स्थायी है और संसार के पूरक के रूप में भी इसको लिया जा सकता है । उसके भयानक रूप को मानसिकता से हटाकर तिरस्कार की भावना को भी त्याग देना चाहिए और इसके प्रति समर्पण कर देना चाहिए । समर्पण के बाद उससे आत्म साक्षात्कार या आत्मज्ञान के लिए प्रार्थना करना चाहिए; जिससे माया का आवरण हट जाता है और सत्य का दर्शन होता है ।

मुक्ति

श्री परमहंस देव के अनुसार मुक्ति का अर्थ है - परिपूर्णता की प्राप्ति या पूर्ण स्वातंत्र्य । एकता की अनुभूति में ही मानव की स्वतन्त्रता है और इसीलिए प्रेम, पवित्रता, ईमानदारी, निःस्वार्थता, भक्ति और विनय मानव जीवन के श्रेष्ठतम् उपकरण हैं, क्योंकि ये मनुष्य को नीलाकाश की तरह मुक्त करते हैं और उनके व्यक्तित्व को हीरे की तरह पारदर्शी और समुज्ज्वल बनाते हैं ।'[२] माया के आवरण को हटाने पर व्यक्ति मुक्त हो सकता है । भक्ति, ज्ञान, कर्म और योग में से किसी एक के द्वारा या सबके समन्वय द्वारा अन्तर्निहित ब्रह्म की अभिव्यक्ति करने में सफल हो जाना ही मुक्ति है और यही मुक्तावस्था ईश्वर की प्राप्ति है ।'[३] विवेकानन्द के अनुसार, ''जो सांसारिक इस मोह-मायामय संसार के भ्रम में न भटक कर आत्म साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, वे ही इससे मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं ।'[४]

मृत्यु

विवेकानन्द के दर्शन में मृत्यु सम्बन्धी दृष्टिकोण भी प्राप्त होता है । इसके

---

१. विवेकानन्द साहित्य - २ पृ० ५८-५९
२. निराला और नवजागरण - डॉ० रामरतन भटनागर, पृ० १९५
३. ज्ञान योग, पृ० १२१
४. वही, पृ० २१२

वास्तविक रूप में प्रतिभासित होने पर ही व्यक्ति निर्भय हो कर 'ख' में स्थित हो जाता है। 'वे मृत्यु रूपी तथ्य को एकमात्र गति मानते हैं, हमारी सभी प्रगति, हमारे व्यर्थ के आडम्बर पूर्ण कार्य - कलाप, हमारे समाज-सुधार, हमारी विलासिता, हमारे ऐश्वर्य, हमारा ज्ञान इन सब की मृत्यु ही एकमात्र गति है।'[१] वे सारे कर्मों का एकमात्र लक्ष्य मरण को ही मानते हैं ; 'इस सब का आखिर लक्ष्य क्या है ? मृत्यु। मृत्यु ही सब का लक्ष्य है। वह जीवन का लक्ष्य है, सौन्दर्य का लक्ष्य है, और तो और धर्म का भी लक्ष्य है।'[२]

वे मरण की उपासना को व्यक्तित्व शोधन का एक प्रबल माध्यम मानते हैं और उसमें प्रबल आकर्षण मानते हैं। उसकी उपासना की बात करते हैं, "कराल की उपासना ! मृत्यु की अर्चना ! और सब मिथ्या है। समस्त संघर्ष व्यर्थ है। यही अंतिम पाठ है। किन्तु यह कायर का मृत्यु प्रेम नहीं है, न निर्बलों का प्रेम है, और न यह आत्मघात है। यह तो उस वीर द्वारा किया गया स्वागत है, जिसने प्रत्येक वस्तु को गहराई से जान लिया है और जो यह जानता है कि अन्य मार्ग नहीं है।"[३]

विवेकानन्द मृत्यु को उस रूप में देखते हैं कि "जो कुछ विषमता है, उसे मृत्यु आत्मसात् कर लेती है।"[४] इसके बाद जीवन में समरसता का प्रवाह आता है। अन्य मुक्ति की तरह 'मृत्यु' से भी मुक्त होना वे अनिवार्य मानते हैं। इस मुक्ति के बाद ही व्यक्ति का जीवन सार्थक हो सकता है और सत्य की अनुभूति से एकाकार हो सकता है। विवेकानन्द कहते भी हैं, " हमें मृत्यु से मुक्त होना चाहिए और मृत्यु से मुक्त होने के लिए हमें जीवन से मुक्त होना चाहिए। जीवन केवल मृत्यु का सपना है। जहाँ जीवन है, वहाँ मृत्यु है, इसलिए मृत्यु से मुक्त होना हो तो जीवन से दूर होना चाहिए।"[५] विवेकानन्द की कई कविताओं में मृत्यु के प्रति विशेष आग्रह देखा जा सकता है, जो 'गाई गीत शुनाते तोमाये' नाचुक ताहाते श्यामा, 'काली माता' आदि कविताओं में काल, मरण, विनाश, प्रलय, मृत्यु आदि के आवाहन के रूप में देखी जा सकती है। शाश्वत सत्य के तौर पर मृत्यु कायान्तरण मात्र है 'मनुष्य की आत्मा अनादि और अमर है, पूर्ण और अनन्त है, और मृत्यु का अर्थ है - एक शरीर से दूसरे शरीर में - केवल केन्द्र परिवर्तन।'[६]

---

१. विवेकानन्द साहित्य - २, पृ० ४७ २. वही ३. वही - ८ पृ० १३२
४. वही - १० पृ० २४ ५. वही, पृ० २५ ६. वही - १ पृ० ११

!ख! मानवतावाद एवं विश्वबोध

मानव मात्र के लिए चिन्तन और उसी से सम्बन्धित क्रिया-कलाप, जिसमें किसी भी तरह का पक्षपात और ऊँच-नीच का भाव न हो, मानवतावाद कहलाता है । ईश्वर की इस कृति को हर स्तर पर एकत्व के भाव से देखा जाना चाहिए और उसके सुख-दुःख में विचारधारा के स्तर पर समभाव रखा जाना चाहिए। सभी के भीतर वही एक आत्मा निवास करती है,जो परमात्मा में जाकर एकाकार हो जाती है। विवेकानन्द के सिद्धान्त मानवतावाद के उदात्त दृष्टिकोण से प्रेरित हैं। ऊँचे-नीचे, अमीर-गरीब, छुआ-छूत, छोटे-बड़े जैसे शब्द ही मानव को मानव से एक करने में बाधा खड़ा करते हैं। उनका विचार था, " मानव जाति को सर्वत्र एवं तब तक सहायता व प्रेरणा देते रहना चाहिए, जब तक कि समग्र जाति ईश्वर के प्रति एकत्व का अनुभव नही कर लेती।" विकेकानन्द ने स्पष्ट रूप से इस बात को साबित किया कि मानवीय संवेदना, प्रेम, सेवा एवं सद्भावना का अद्वैत दर्शन अथवा वेदान्त से किसी भी तरह का और किसी भी प्रकार का द्वन्द्व नही है। वस्तुतः उनका व्यावहारिक वेदान्त मानवता में इतना रच-पच गया था कि दोनों में कोई भेद नहीं रह गया।

विवेकानन्द संन्यासी बनने के मुख्य ध्येय की चर्चा करते हुए कहते हैं " बहुजन हिताय बहुजन सुखाय ही संन्यासी का जीवन होता है । दूसरों के लिए प्राण देने, जीवों के गगन भेदी क्रन्दन को शान्त करने, विधवाओं के आँसू पोछने, अज्ञ सामान्य जनता को जीवन-संग्राम सक्षम बनाने' शास्त्रोपदेश का प्रचार करने, सबको ऐहिक तथा परमार्थिक मंगल करने और ज्ञानालोक देकर सबके भीतर प्रसुप्त ब्रह्मकेशरी को जागृत्र करने के लिए ही संन्यासी का जन्म होता है।"[१] उनका कहना था कि अगर हम लोग भी पापी-तापी, दीन-दुखी तथा पतितों के उद्वार कार्य से पीछे हट जायें तो फिर इन्हें कौन देखेगा ।"[२]

एक बार विवेकानन्द के पास गोरक्षण- सभा के एक प्रचारक आये और गाय की सेवा, पालन आदि के लिए धन की माँग करने लगे । उस समय दुर्भिक्ष पड़ा था और नौ लाख

---

१. विवेकानन्द साहित्य -३ पृ० ५-६

२. वही, पृ० ४

लोग मर गये थे । उन्होने प्रचारक से पूछा कि क्या आपकी सभा दुर्भिक्ष में कोई सहायता का आयोजन करती है । दुर्भिक्ष को मनुष्य के पाप कर्म का फल बताने और केवल गो- रक्षण सम्बन्धी कार्य करने की बात पर वे बहुत कुपित हुए और कहा,'' जो सभा समिति मनुष्यों से सहानुभूति नहीं रखती, अपने भाईयों को बिना अन्न मरते देखकर भी उनकी रक्षा के निमित्त मुट्ठी भर अन्न सहायता न दें कर, पशु पक्षियों के निमित्त हजारों रूपये व्यय कर रही है, उस सभा-समिति से मैं लेशमात्र भी सहानुभूति नहीं रखता।''[१]

विवेकानन्द ने दीन- दुखियों के प्रति विशेष संवेदना रखा और ईश्वर के साथ उसके सम्बन्धों के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण रखते हुए कहा, ''मै ऐसे ईश्वर को नहीं चाहता जो करोड़ो भूखों को भोजन न दे सके।'' यहाँ भौतिक कल्याण को वे अध्यात्मिक उन्नति का सहायक मानते है । ''खाली पेट धर्म नही होता। ''[२] इस तरह उनका धर्म या सन्देश शुष्क व नीरस नही हैं, अपितु मानव मात्र के लिए प्रेमपूर्ण और हितकारी है । इसी परिप्रेक्ष्य में, एक बार विवेकानन्द से मिलने महाकवि गिरीशचन्द्र घोष आये, उस समय वे एक शिष्य को वेद व्याख्या सुना रहे थे । उनसे गिरीश ने देश की हाहाकारी स्थिति और अत्याचार को रोकने के लिए वेदों का कोई उपाय बताने को कहा । जगत के दुःख और कष्ट को सोचते ही उनकी आँखो से आँसू टपकने लगे और निस्तब्ध होकर बाहर चले गये । इस अवसर पर गिरीश बाबू ने शिष्य को लक्ष्य करके कहा, ''देखो स्वामी जी कैसे उदार हृदय हैं । मैं तुम्हारे स्वामी जी का इसी कारण आदर नही करता कि वे वेद - वेदान्त के एक बड़े पण्डित हैं'' वरन् श्रद्धा करता हूँ उनकी महा- प्राणता के लिए । देखो न, जीवों के दुख से वे कैसे रो पड़ और रोते-रोते बाहर चले गये ! मनुष्यों के दुःख और कष्ट की बातें सुनकर हृदय दया से पूर्ण हो गया और वेद- वेदान्त न जाने कहाँ भाग गये !''[३] बाद में गिरीश से उन्होंने कहा,'' देखो गिरीश बाबू लगता है यदि जगत के दुःख दूर करने के लिए मुझे सहस्त्रों बार जन्म लेना पड़े, तो भी मै तैयार हूँ । इससे यदि किसी का तनिक भी दुःख दूर हो तो, वह मै करूँगा । और ऐसा भी मन में आता है कि कवेल अपनी मुक्ति से क्या होगा । सबको साथ लेकर उस मार्ग पर जाना होगा ।''[४]

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ६ पृष्ठ-१०
२ विवेक ज्योति - वर्ष ३५-२, पृ० - ४७
३. विवेकानन्द साहित्य - ६, पृ० ५७
४. वही, पृ० ५९

इन्ही सिद्धान्तों को व्यवहार में लाने के लिए विवेकानन्द अकाल और रोगादि के समय सम्पूर्ण मिशन को इन क्षेत्रों में लगा दिया करते थे। बंगाल में जब प्लेग फैला था, तब उन्होंने रोगियों के लिए तत्परता से लग जाने का आह्वान किया; अर्थाभाव के प्रश्न पर उन्होंने रामकृष्ण मठ की जमीन तक बेंच देने की बात कही थी जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि वे मनुष्य मात्र के हितैषी थे, आपसी द्वेषादि भावों को खत्म करने की बात करते हुए वे कहते हैं, "मेरे मित्रों, पहले मनुष्य बनो तब तुम देखोगे कि बाकी चीजें स्वयं ही तुम्हारा अनुसरण करेंगी .... आपस के घृणित द्वेषभाव को छोडो और सदुद्देश्य, सदुपाय, सत्साहस तथा सद्वीर्य का अवलम्बन करो, उठो - कमर कस कर खड़े हो जाओ और कार्य करते चलो।"[१]

मानवता का एक प्रमुख पक्ष आपसी सौहार्द्र और प्रेम की भावना है। एकत्व के धरातल पर अवस्थित मनुष्यों के बीच ही उदान्त प्रेम की भावना का उदय हो सकता है। उन्होंने प्रेम - केवल प्रेम का प्रचार किया और कहा,' मेरे उपदेश, वेदान्त की समता और आत्मा की विश्व व्यापकता - इन्हीं सत्यों पर प्रतिष्ठित हैं।'

उनके अनुसार प्रेम कभी विफल नही होता। प्रेम विजय प्राप्त करेगा। विकास ही जीवन और संकुचन ही मृत्यु है, इसलिए प्रेम ही विकास और स्वार्थपरता ही संकुचन है। इसलिए प्रेम ही जीवन का मूलमन्त्र है। प्रेम करने वाला ही जीता है, इसलिए प्रेम ही के लिए प्रेम करो।' इसी भावना के तहत ही विवेकानन्द ने सदैव, दलितो, उपेक्षितों और समाज के गरीबों के प्रति प्रेम भावना व्यक्त किया और हृदय से उनके प्रति सहानुभूति रखते हुए उनके उत्थान के लिए हर सम्भव प्रयास किया। इन्हीं के कल्याण से हिन्दू धर्म का विकास सम्भव होगा और सामाजिक समरसता की भावना का उदय होगा। वे वर्तमान समाज के पिछड़े होने का मुख्य कारण बहुसंख्यक वर्ग के लोगों का मुख्य धारा से कट जाना मानते हैं। इन्हें फिर से नारायणत्व या मनुष्यत्व का बोध कराके अभिनव समाज का निर्माण किया जा सकता है।

मानव में निहित दिव्यत्व को अभिव्यक्त करने के विवेकानन्द के आहवान ने तत्कालीन युग को आन्दोलित कर दिया सम्पूर्ण वातावरण उनके उदघोष से प्रभावित हुआ। इसे

---

१. विवेकज्योति, वर्ष - ३१, अंक - ३ पृ० २१

स्वीकार करते हुए रवीन्द्रनाथ ठाकुर कहते हैं -" विवेकानन्द ने कहा है कि प्रत्येक मानव में धर्म की शक्ति विद्यमान है, यह भी कहा है कि दीन-दुःखी लोगों में विद्यमान नारायण हमारी सेवा चाहते हैं । कितना आद्भुत सन्देश है ! इस सन्देश ने मनुष्य को उसके स्वार्थ बोध की सीमा से बाहर निकालकर उसके आत्म बोध को असीम मुक्तिपथ दिखाया है । .... छूआ-छूतवाद का विरोध तो इसमें स्वतः ही आ जाता है - इस कारण नहीं कि इससे राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति में सुविधा होगी, बल्कि इसलिए कि इससे मानवता का कलंक दूर होगा, क्योकि अस्पृश्यता हम सबके लिए लज्जा की बात है ।"[१]

समाज में व्याप्त असमानता का भाव उनके लिए असह्य था, इसी से वे पीड़ित मानवता का जन्म मानते हैं । उनके दृष्टिकोण में, समाज के सभी व्यक्तियों को धन, विद्या और ज्ञान उपार्जन करने के लिए एक समान अवसर मिलना चाहिए । हर एक विषय में स्वतन्त्रता अर्थात मुक्ति ही प्रगति के लिए मनुष्य का उच्चतम लाभ है । जो सामाजिक जीवन इस स्वन्त्रता के विकास के मार्ग में बाधक हैं, वे हानिकारक हैं और उनको नष्ट करने का उपाय शीघ्रता से करना चाहिए । जिन संस्थाओं के द्वारा मनुष्य इस समानता की ओर अग्रसर होते हैं, उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए । इसी भाव को स्पष्ट करते हुए वे कहते भी हैं, 'आत्मवत्, सर्वभूतेषु' अर्थात- सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखो - क्या यह उपदेश केवल पुस्तकों के भीतर ही रह जायेगा । जो भूखे के मुंह में एक टुकड़ा रोटी नही दे सकते वो मुक्ति कैसे देंगे ? जो दूसरों के केवल श्वास से ही अपवित्र हो जाते है, वे दूसरों को कैसे पवित्र बनायेंगे ।"[२]

विवेकानन्द ने मानवता की रक्षा के लिए 'सेवा' को विशेष स्थान दिया । रोग से ग्रस्त लोगों की सेवा हो अथवा अकाल ग्रस्त भूखी जनता ही अथवा महामारी से पीड़ित मानव हो अथवा बाढ़ग्रस्त लोग हों, विवेकानन्द हर समय सेवा के लिए तत्पर रहा करते थे । उन्होंने अपनी संस्था रामकृष्ण मिशन के उद्देश्य को भी मानव मात्र के कल्याण हेतु व्याख्यायित किया । इस को व्यक्त करते हुये विवेकानन्द ने १ मई १८९७ को उद्देश्य की घोषण की, " मानवमात्र के कल्याणार्थ श्रीराम कृष्ण ने जिन समस्त तत्वों की व्याख्या की है और उनके, जीवन द्वारा व्यवहार में

---

१. विवेक ज्योति - वर्ष -२४ अंक-३ जुलाई-सित० १९५६ पृ० १९२-३
२. विवेक-ज्योति-वर्ष ३५ अंक-२ पृष्ठ-४७

जो कुछ प्रतिपादित हुआ है, उनका प्रचार और ये समस्त तत्व जिस उपाय से मनुष्य के शारीरिक, मानसिक तथा परमार्थिक उन्नति मे सहायक हो सकें, उसमें सहायता करना, यही इस (मिशन) का उद्देश्य होगा। .... " मिशन का लक्ष्य एवं आदर्श चूंकि आध्यात्मिक तथा सेवा परक है, अतः राजनीति के साथ इसका कोई सम्बन्ध नही रहेगा।"[१]

इसी मानवता की सेवा और आदर्श की रक्षा के लिए विवेकानन्द आजीवन तपश्चर्या पूर्ण कठिन एवं दुःसाध्य श्रम के साथ भ्रमण करते रहे। उत्तरोत्तर स्वास्थ्य में गिरावट के बाद भी उनके सेवा में कहीं कोई कमी नहीं आई थी। एक बार वे ऐसा ही भाव व्यक्त करते हुये कहते भी हैं," मैं समझ रहा हूँ कि मेरा कार्य समाप्त हो चुका है - जीवन के अधिक से अधिक तीन चार वर्ष बच रहे हैं। अपनी मुक्ति की इच्छा अब मुझमें बिल्कुल नही है और सांसारिक सुख की कामना तो मैंने कभी की ही नहीं। मैं अपने यन्त्र को खूब सशक्त रूप से शुरू हो गया देखना चाहता हूँ और जब मैं निश्चित रूप से समझ लूंगा कि मानव जाति के कल्याणर्थ मैंने एक ऐसा यन्त्र अन्ततः भारत में चालू कर दिया है, जिसे कोई शक्ति नही रोक सकती, तब भविष्य की चिन्ता छोड़कर मैं सो जाऊँगा। मेरी अभिलाषा है कि मैं बारम्बार जन्म लेकर हजारों दुःख भोगता रहूँ, ताकि समस्त आत्माओं के समष्टि रूप अपने उस एकमात्र ईश्वर की पूजा कर सकूँ, जो सचमुच विद्यमान है और जिस पर मुझे विश्वास है। सर्वोपरि सभी जातियों तथा सभी वर्णों के पापी, तापी तथा निर्धन रूपी ईश्वर ही मेरे उपास्य है।"[२] ऐसा विचार सारी मानवता के लिए विवेकानन्द के पूर्ण समर्पण का प्रतीक है। जिसके लिए वे मुक्ति को छोड़ने का तैयार हैं और बार-बार यहाँ आकर मानव की सेवा और कल्याण करना चाहते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीयता या विश्व बोध

विवेकानन्द की विचारधारा में संकीर्णता का कोई स्थान नहीं था, वे उस हिन्दू जाति के प्रतिनिधि थे, जिनके लिए धन और शक्ति कभी आदर्श नहीं बन सका," पर हमें यह भी विदित

---

१. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द, - ३ पृ० १०-११
२. वही, पृ० २२

है कि हिन्दू जाति ने कभी धन को श्रेय नहीं माना .... युगों तक भारत शक्तिशाली बना रहा, पर तो भी शक्ति उसका श्रेय नहीं बनी, कभी उसने अपनी शक्ति का उपयोग अपने देश के बाहर किसी पर विजय प्राप्त करने में नही किया। वह अपनी सीमाओं से सन्तुष्ट रहा।''[१] ऐसी संस्कृति के प्रतिनिधि के रूप में विवेकानन्द ने अपने सन्देशों से मानव मात्र के कल्याण का उदात्त भाव लिए सम्पूर्ण विश्व को झकझोर डाला। अमेरिका की धर्मसभा में उनका सम्बोधन इसी भाव को व्यक्त करता है। '' मेरे मित्रों ! पहले मनुष्य बनो, तब तुम देखोगे, बाकी चीजें स्वयं तुम्हारा अनुसरण करेंगी। परम्परा के घृणित द्वेषभाव को छोड़ो और स सुदुद्देश्य, सदुपाय, सत्साहस एवं सद्वीर्य का अवलम्बन करो।''[२]

विवेकानन्द अंग्रेजी भाषा व साहित्य के भी विद्वान थे, और उनके प्रचार का लम्बा समय पाश्चात्य देशों में बीता। खोज और अनुसंधान की प्रवृत्ति उनमें सदैव से थी। उन्होनें हर्वट स्पेंसर और स्टुअर्ट मिल का अध्ययन किया था, वे शेली के सर्वात्मवाद और वर्ड्सवर्थ की दार्शनिकता को पसन्द करते थे।, हीगेल के वस्तु - निष्ठात्मक आदर्श के भी प्रशंसक थे। पाश्चात्य साहित्य ओर दर्शन के साथ भारतीय विचारधारा का समन्वय करने के बाद विवेकानन्द ने महसूस किया कि दोनों के आधार पर एक वृहत्तम सम्बन्ध हो सकता है। जिसका परिणाम मानव मात्र के लिए हितकर होगा। वे कहते भी हैं भारत में समाज की बेड़ी को तोड़ना होगा और यूरोप में धर्म की बेड़ी को। तभी मनुष्य का आश्चर्य जनक विकास और उन्नति होगी ....वेदान्त के प्रकाश से तुम समझोगे कि सारे विज्ञान धर्म की ही अभिव्यक्तियाँ हैं और जगत की सारी वस्तुएं भी उसी की अभिव्यक्तियाँ है।''[३] वे एक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपना कर लोगों के लिए मार्गदर्शन करते थे। पाश्चात्य देशों में जहाँ वैभव- विलास है, वहाँ निवृत्ति मार्ग की और भारत जहाँ पर निर्धनता एवं दरिद्र है, वहाँ पर प्रवृत्ति मार्ग की आवश्यकता बताते हैं। वे एक ऐसे चरित्र की कल्पना करते हैं, जिसमें फ्रांसीसी, जातीय मेरुदण्ड 'राजनीतिक स्वतन्त्रता' , 'अंग्रेजी जातीय चरित्र' 'आर्थिक स्वतन्त्रता' और हिन्दू जातीय चरित्र 'मुक्ति या आध्यात्मिक स्वतन्त्रता ' का समन्वय हो, तभी पीड़ित मानवता का उपकार हो सकता है।

विवेकानन्द पाश्चात्य एवं भारतीय विचारों की तुलना करते हुए कहते हैं,'' भारत

---

१. विवेकानन्द साहित्य - १० पृ० ४
२. वही, पृ० ६२
३. वही, - २, पृ० ६०

की वायु शान्ति प्रधान, यवनों की प्रकृति शक्ति प्रधान, भारत एक गम्भीर चिन्ताशील है, दूसरा अदम्य कार्यशील, एक का मूलमंत्र है त्याग, दूसरे का भोग'', एक की सबचेष्टाएँ है अन्तर्मुखी है, दूसरे की बहिर्मुखी, एक की प्रायः सब विद्याएँ आध्यात्मिक है, दूसरे की अधिभौतिक, एक मोक्ष की अभिलाषिणी है, दूसरी स्वाधीनता को प्यार करती है; एक संसार के सुख प्राप्त करने में निरुत्साह है और दूसरा इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने में सचेष्ट है, एक नित्य सुख की आशा में शंका कर अथवा उसको दूर जानकर यथासम्भव ऐहिक सुख प्राप्त करने में उद्यत रहता है।''[१] फिर वे इसके बाद भारत में रजोगुण के अभाव और पश्चिम में सत्वगुण के अभाव की चर्चा करते हैं और इन दोनों के आपसी समन्वय से एक उन्नत विश्व की सम्भावना प्रकट करते हैं। इन दोनों की एकता का परिणाम भी उन्हें दिखने लगता है,'' क्रमशः राष्ट्रों में परस्पर मेल होता जा रहा है और मेरी यह दृढ़ धारणा है कि एक दिन ऐसा आयेगा जब, राष्ट्र नामक कोई वस्तु नही रह जायगी - राष्ट्र - राष्ट्र का भेद दूर हो जायगा।''[२]

अपने सिद्धातों को व्यक्त करते हुए धर्ममहासभा के उद्देश्य '' संसार में सर्वोत्तम धर्म कौन सा है ?'' के सापेक्ष नवीन और उदात्त प्रश्न रखते हुए कहा '' धार्मिक एकता कैसे हो, इस बात की यहाँ काफी विचिकित्सा हुई है। इस संम्बन्ध में मेरा अपना मतवाद है, यदि कोई व्यक्ति यह समझता हो कि धार्मिक एकता का मार्ग एक धर्म की विजय और बाकी धर्मो का विनाश है, तो उससे मैं निवेदन करूँगा कि बन्धु ! तुम्हारी आशा कभी पूरी नहीं होगी। क्या मै यह चाहता हूँ कि सभी ईसाई हिन्दू हो जाँय ? भगवान करे कि ऐसा न हो। ईसाई को हिन्दू व हिन्दू को ईसाई नहीं होना है। .... प्रत्येक का कर्तव्य है कि वह अन्य धर्मो का सार अपने भीतर पचा ले।''[३] संन्यासी के लिए आदर्श वाक्य '' आत्मनो मोक्षार्थं जगाद्धितायच'' से ही विवेकानन्द का विश्वप्रेम का आदर्श जाना जा सकता है। अतएव विश्वबन्धुत्व नहीं बल्कि विश्व का एकत्व घोषित करते हुए वे कहते है, '' इसलिए वेदान्त का प्रतिवाद्य है 'विश्व का एकत्व', 'विश्वबन्धुत्व नहीं।' मैं भी वैसा ही हूँ, जैसा एक मनुष्य है, एक जानवर है बुरा भला या और कुछ भी। सब परिस्थितियों में एक ही देह , एक ही मन और एक ही आत्मा है।''[४]

---

१. विवेकानन्द साहित्य - १० पृ० १३४
२. विवेकानन्द साहित्य - २ पृ० १४६
३. विवेकानन्द साहित्य - ३ पृ० ८० ४. वही, पृ० ८३

सभी धर्मो के एक ही होने और सभी धर्मो के सत्य पर आधृत होने की प्रत्यक्ष अनुभूति उनहें अपने गुरू श्री रामकृष्ण परमहंस से हो गई थी, फलतः उनका यह सिद्धान्त प्रायोगिक, अतएवं वैज्ञानिक भी है। इसी का उद्घोष उनके धर्मसभा के अन्तिम भाषण में सुना जा सकताहै," प्रत्येक जाति या धर्म, दूसरी जाति या दूसरे धर्मो के साथ आपस में भावों का आदान-प्रदान करेगा और अपनी - अपनी अन्तर्निहित शक्ति के अनुसार उन्नति की ओर अग्रसर होगा। आज से सभी धर्मो के झण्डों पर लिख दो,' युद्ध नहीं सहायता, ध्वंस नही- आत्मस्थ कर लेना,' भेद - द्वन्द्व नही - सामंजस्य एवं शन्ति।"[१]

! ग !   राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम

विवेकानन्द की विचारधारा में देश - प्रेम, राष्ट्र उद्धार एवं राष्ट्रीय गौरव का स्वर मुखर रूप में सुना जा सकता हैं। देश की दयनीय अवस्था ने उन्हें सबसे अधिक उद्वेलित किया। राष्ट्रीय चेतना के प्रसार के लिए सम्पूर्ण भारतवर्ष को अपने ओजस्वी भाषणों के द्वारा विवेकानन्द ने जगाने का कार्य किया। वे भारत को एक सजीव एवं करुण प्राणी के रूप में देखते हैं। देश की वर्तमान दशा का वर्णन वे इन शब्दों में करते है," हमारे लोगों में न विचार है न गुण ग्राहकता, इसके विपरीत एक सहस्र वर्ष के दासत्व के स्वाभाविक परिणाम स्वरूप, उनमें भीषण ईर्ष्या तथा सन्देहशीलता भर गयी है, जिसके कारण वे प्रत्येक नये विचार का विरोध करते हैं।"[२] भारत की जनता में व्याप्त कुष्ठा ने उसके जीवन को जड़ बना दिया है। इस जड़ता को दूर करने के लिए कुछ भी त्यागने को व्यक्ति तैयार भी नहीं है।

विवेकानन्द भातरवर्ष के पतन के मूल में कई कारणों की चर्चा करते हैं। आत्म सन्तुष्टि' का भाव इसका मुख्य कारण है, हम अपने आप में सन्तुष्ट हैं और बाहर की दुनिया से हमारा कुछ लेना- देना नहीं है। समुद्र पार कर विदेश यात्रा करने को हम पाप समझते हैं और हमारी सोच है कि हम सही हैं, पूर्ण हैं,हमारा देश सही है, पूर्ण है। हमसे उत्तम कहीं और कोई व्यवस्था नही है। इस सोच ने हमें, हमारे समाज को, हमारे राष्ट्र को पंगु बना कर रख दिया हैं। जैसा

---

१. विवेकानन्द चरित - ११, पृ० ३३४
२. विवेक ज्योति, वर्ष -३१,अंक-२ पृष्ठ-५

वे कहते भी हैं," मेरे विचार से हमारे राष्ट्रीय पतन का असली कारण यह है कि हम दूसरे राष्ट्रों से नहीं मिलते जुलते, यहीं अकेला एकमात्र कारण है। हमें कभी दूसरों के अनुभवों के साथ अपने अनुभवों को मिलान करने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ। हम कूपमंडूक बने रहे।"[१]

राष्ट्रीय चेतना के पतन का दूसरा प्रमुख कारण भारत के बड़े जन- समुदाय की उपेक्षा है। जाति और वर्ग के कारण पिसे हुये बहुसंख्यक वर्ग की देश के नवनिर्माण मे कोई उल्लेखनीय साझेदारी न होने के कारण सम्पूर्णतः राष्ट्रीय चेतना का प्रसार न होना, विवेकानन्द के दृष्टिकोण में एक महत्वपूण कारक है," मैं समझता हूँ कि हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप जनसमुदाय की उपेक्षा है और वह भी हमारे पतन का एक कारण है। हम कितनी ही राजनीति बरते, उससे उस समय तक कोई लाभ नही होगा, जब तक कि भारत का जनसमुदाय एक बार फिर से सुशिक्षित, सुपोषित और सुपालित नहीं होता। .... यदि हम भारत को पुनर्जीवित करना चाहते हैं, तो हमें उसके लिए काम करना होगा।"[२]

राष्ट्रीयता की अवदशा के लिए एक बड़ा कारण आज्ञा पालन न करना और आपसी ईर्ष्या - द्वेष का भाव है। विवेकानन्द इसे बहुत बडी कमजोरी मानते हैं और आज्ञा देना आज्ञा के पालन से शुरू होना चाहिए, ऐसा मानते हैं। इसी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुये विवेकानन्द कहते हैं, " यहाँ भारत में प्रत्येक व्यक्ति नेता बनना चाहता है, आज्ञा पालन करने वाला कोई भी नहीं है। आज्ञा देने की क्षमता प्राप्त करने से पहले प्रत्येक व्यक्ति को आज्ञा पालन करना सीखना चाहिए। .... जब तक हिन्दू ईर्ष्या से बचना और नेताओं की आज्ञा का पालन करना नहीं सीखता, उसमें संगठन की क्षमता नही आयेगी।"[३]

विवेकानन्द ने भारतीयों के पतन के लिए अन्धानुकरण की प्रवृत्ति को भी उत्तरदायी बतलाया है। परिवर्तन के मूल में सांस्कृतिक गौरव और मौलिकता के समावेश को आवश्यक मानते हुये आधुनिकता की अन्धी दौड़ को अस्वीकार्य मानते हैं। हमारा विकास दूसरों की वेश -भूषा, खान-पान, रहम - सहन का अनुकरण करने से नहीं होगा, अपितु हमें विचारधारा को नवीन

१. विवेकानन्द साहित्य - ४ पृ० २५८-५९
२. विवेकानन्द साहित्य, –४ पृ० २७०
३. वही, पृ० २५५

धरातल प्रदान करना चाहिए, जिससे हमारा स्थिर और वास्तविक विकास हो। यही बात विवेकानन्द ने अपनी चिरपरिचित ओजस्वी वाणी से कुछ इस प्रकार कही, "ऐ भारत! क्या दूसरों की हाँ में हाँ मिलाकर दूसरों की ही नकल कर परमुखापेक्षी होकर इन दासों की सी दुर्बलता, इस जघन्य निष्ठुरता से ही तुम बडे-बडे अधिकार प्राप्त करेगे। क्या इसी लज्जास्पद कापुरुषता से तुम वीर भोग्या स्वाधीनता प्राप्त करोगे ? ऐ भारत! .... मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ शंकर हैं, मत भूलना कि तुम्हारा विवाह, धन और तुम्हारा जीवन इन्द्रिय सुख के लिए नहीं अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं है।"[१]

शिक्षा और संगठन का अभाव इन दो कारणों की चर्चा भी विवेकानन्द करते हैं और राष्ट्रीय पतन के लिए इन्हें भी जिम्मेदार मानते हैं। गुलामी का कारण एकता के अभाव को मानते हुये कहते हैं,' हम गुलाम इसलिए हुये कि हम संघ बद्ध राष्ट्र नहीं है।' शिक्षा व्यवस्था की कमी और अशिक्षा को भी विवेकानन्द राष्ट्रीयता के मार्ग का एक बडा अवरोध मानते हैं। इसी कारण से जनता में संकीर्णताओं को पनपने का अवसर मिलता हैं अशिक्षित व्यक्ति किसी भी बात को चाहे वह कितनी भी आधारहीन क्यों न हो, प्रमाण मान लेता है।

विवेकानन्द का कार्य केवल दोषों को दिखाना मात्र नहीं था, अपितु इनका उचित समाधान भी खोजना था। जिन मूल कारणों की चर्चा वे राष्ट्रीय अवनति के सन्दर्भ में करते हैं, उसको दूर करने की सम्भावना को भी व्यक्त करते चलते हैं। कूपमंडूकता को त्याग कर सभी राष्ट्रों के साथ मेल जोल और विचारों का आदान - प्रदान करना चाहिए। इसी परिप्रेक्ष्य में विवेकानन्द विभिन्न जातीय चरित्रों के मूलाधारों की बात करते हैं। फ्रांसीसी जातीय चरित्र का मेरुदण्ड राजनीतिक स्वतन्त्रता, अंग्रेजी जातीय चरित्र का आर्थिक स्वतन्त्रता और हिन्दू जातीय चरित्र का मेरुदण्ड मुक्ति या आध्यात्मिक स्वतन्त्रता' है। अगर इन सबके समन्वय से आदर्श की खोज कर उसकी प्रस्थापना की जाय तो वह मानवता के हित में होगा। इसी तरह स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि पूर्व का निवृत्ति मार्ग, अगर पश्चिम के प्रवृत्ति मार्ग के साथ संयुक्त हो जाय तो इनके संयोग से जो नवीन मार्ग उत्पन्न होगा वह अलौकिक व अद्वितीय होगा। इसी बात की गुणों के

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ९, पृ० २२८

माध्यम से बात करते हुये कहते हैं, "भारत में रजोगुण का सर्वथा अभाव है। इसी प्रकार पाश्चात्य देशों में सत्व गुण का अभाव है।"[१]

राष्ट्रीयता के समुचित विकास के लिए जनसाधारण का इससे जुडना अनिवार्य है। जब तक देश के सभी लोग इसकी मुख्य धारा में नही आ जाते, तब तक राष्ट्रीय प्रवाह सम्यक ढंग से बह नहीं सकता । बहुसंख्यक वर्ग के विकास के लिए प्रयत्न होने चाहिए। देश की दलित, शोषित जनता को राष्ट्र की बुनियाद मानते हुये विवेकानन्द उनकी और समुचित ध्यान देने की आवश्यकता पर जोर देते हैं और लोगों का आह्वान करते हुये कहते है," और फिर अछूत, मोची, मेहतर तथा उसी तरह के सभी लोगों के पास जाकर कहिए, तुम्हीं लोग तो राष्ट्र के प्राण हो। तुम्हारे भीतर ऐसी असीम शक्ति विद्यमान हैं, जो दुनिया को उलट दे सकती है । उठों, बन्धन को 'तोड़ फेंको और सारा संसार तुम्हें देखकर विस्मित हो जायगा' उनके बीच जाकर स्कूल खोलिए और उनके गलों में यज्ञोपवीत डाल दीजिए ।"[२]

भारतीय राष्ट्रीयता के समुत्थान के लिए विवेकानन्द ने नववेदान्त को आवश्यक बताया, जिससे देशवासियों को अपने गौरव का बोध हो सके । गौरव को बोध होने पर ही आत्म विश्वास प्राप्त हो सकता है । इसी से व्यक्ति समाज और राष्ट्र के लिए कुछ भी करने में सक्षम हो पायेगा। इसलिए विवेकानन्द वेदान्त की व्याख्या करते हुये कहते हैं," वेदान्त सबसे पहले अपने ऊपर विश्वास करने के लिए कहता है । जिस प्रकार संसार का कोई-कोई धर्म कहता है, जो व्यक्ति अपने से बाहर सगुण ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नहीं करता, वह नास्तिक है । उसी प्रकार वेदान्त भी कहता है, जो व्यक्ति अपने आप पर विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक है"[३] ऐसा होने पर ही भारतीयों को परानुवाद ओर परानुकरण की आवश्यकता नही रहेगी और सच्ची एवं मौलिक भारतीयता का विकास होगा ।

विकेकानन्द ने राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिए शिक्षा को प्रथम आवश्यक शर्त बताया, वे शिक्षा को व्यापक अर्थो में लेते है । और इसके द्वारा सभी समस्याओं के हल की बात

---

१. विवेकानन्द साहित्य - १०, पृ० १३६
२. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द, - ३, पृ० ३०
३. विवेकानन्द साहित्य - ८, पृ० ६

कहते हैं । उनके अनुसार 'शिक्षा' मनुष्य के भीतर पहले से ही विद्यमान पूर्णता की अभिव्यक्ति है, जो उस पूर्णता का प्रकटीकरण कर वाह्य जगत के साथ सामंजस्य कर देती है, जिससे उसकी आन्तरिक शक्ति का उपयोग समाज और देश के लिए हो सकता है । वे शिक्षण कार्य को सर्वश्रेष्ठ और महान कहते हुए, इसी से चरित्र निर्माण की भी बात करते हैं । अश्विनी कुमार दत्त से इसी सन्दर्भ में बातचीत करते हुये कहते भी है," सुना है कि आप कुछ शैक्षणिक कार्यो में लगे हुये हैं । वही सच्चा कार्य है । आपके भीतर एक महान शक्ति कार्य कर रही है और जो ज्ञानदान हो रहा है, वह एक बहुत बड़ा कार्य है । परन्तु ध्यान रखियेगा कि जनसाधारण में मनुष्य निर्माण करने वाली शिक्षा का ही प्रसार हो । उसके बाद चाहिए चरित्र निर्माण, अपने छात्रों का चरित्र वज्र के समान दृढ़ बना डालिए । .... युवकों की अस्थियों से ही वह वज्र तैयार होगा, जो भारतीय दासता की बेड़ियों को चूर कर डालेगा ।"[१] वे ऐसी शिक्षा की आवश्यकता पर बल देते हैं, जिससे चरित्र निर्माण हो, चरित्र से मानसिक शक्ति और बुद्धि प्राप्त हो और व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा होना सीखे । देश की उन्नति और शिक्षा के मध्य अन्योन्याश्रित सम्बन्ध की बात करते हुये कहते है," देश उसी अनुपात मे उन्नत हुआ करता है, जिस अनुपात में वहाँ के जनसमूह में शिक्षा तथा बुद्धि का प्रसार होता है । भारतवर्ष के पतन का मुख्य कारण यह रहा कि मुट्ठी भर लोगों ने देश की सम्पूर्ण शिक्षा और बुद्धि पर एकाधिपत्य कर लिया ।"[२] इसी सम्भावना को समाप्त करने के लिए वे शिक्षा का भार सही लोगों के हाथ में देखना चाहते है," जब तक इस देश में अध्यापन और शिक्षा का भार त्यागी और निःस्पृह पुरुष वहन नही करेंगे, तब तक भारत को दूसरे देशों के तलवे चाटने पड़ेगें ।"[३]

विवेकानन्द ने शिक्षा के माध्यम से समाज के निम्न और दलित वर्ग के वास्तविक उत्थान की बात की । स्त्रियों का विकास भी इसी के द्वारा हो सकता है । इनको शिक्षा देने का कार्य एक पवित्र यज्ञ के बराबर है, इसी बात का उल्लेख करते हुये १८९५ में अमेरिका से स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखे हुये पत्र में लिखते है," यदि निम्न श्रेणी के लोगों को शिक्षा दे सको, तो कार्य हो सकता है । ज्ञानबल से बढ़कर और क्या बल है ! क्या उन्हें शिक्षित बना सकते हो ? बडे आदमियों ने कब, किस देश में किसका उपकार किया है । सभी देशों में मध्यवर्गीय लोगों ने ही

१. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - ३ पृ० २९
२. शिक्षा संस्कृति और समाज - स्वामी विवेकानन्द, पृ० ३४
३. विवेकानन्द साहित्य - ८, पृ० २३२

महान् कार्य किया है।''[१]

संसाधनों के अभाव को विवेकानन्द शिक्षा की कमी में बहुत महत्वपूर्ण कारक मानते हैं । आर्थिक अवदशा के कारण कोई भी गरीब बच्चा कैसे विद्यालय आ सकताहै ? इसलिए आवश्यक यह है कि शिक्षा व्यवस्था मौलिक हो, '' गरीबों को शिक्षा देने में मुख्य बाधा यह है, मान लीजिए महाराज, आपने हर एक गाँव में एक निःशुल्क पाठशाला खोल दी, तो भी इससे कुछ काम न होगा, क्योंकि भारत में गरीबी ऐसी है कि गरीब लड़के पाठशाला में जाने के बजाय खेतों में अपने माता-पिता को मदद देने या किसी दूसरे उपाय से रोटी कमाने जायेगें । .... अगर गरीब लड़का शिक्षा ग्रहण करने के लिए न आ सके तो शिक्षा को ही उसके पास जाना पड़ेगा।''[२]

विवेकानन्द ने शिक्षा प्राप्त करने के बाद शिक्षित वर्ग द्वारा आम लोगों की ओर ध्यान न देने की कड़ी भर्त्सना की, ''जब तक करोड़ों मनुष्य 'मूर्ख तथा अज्ञानता' में जीवन बिता रहे हैं, तब तक मैं उस प्रत्येक मनुष्य को देशद्रोही मानता हूँ, जो उनके व्यय से शिक्षित हुआ है और उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दे रहा -''[३] इसके लिए सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली को दोषी ठहराते हैं ।

शिक्षा के परिणामस्वरूप जनसमुदाय में वैचारिक क्षमता का उदय होगा और वे राष्ट्र की मुख्य धारा में शमिल होंगे । विवेकानन्द की यह दृढ़ विचारधारा थी कि ,''उनमें तरह-तरह के विचार पैदा करने होगें । उनके चारों और दुनिया में कहाँ क्या हो रहा है, इस सम्बन्धमें उनकी आँखे खोल देनी होगी, इसके बाद फिर वे अपना उद्धार अपने आप कर लेंगे । प्रत्येक जाति, प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री को अपना उद्धार अपने आप ही करना पडेगा । उनमें विचार उत्पन्न कर दो- उन्हें उसी एक सहायता की जरुरत है, इसके फलस्वरूप बाकी सब कुछ आप हो जायगा ।''[४] और यह विचार बिना शिक्षा के असम्भव है । इसी के माध्यम से बौद्धिक वर्ग का उदय होगा और शिक्षित जनता ही इस वर्ग के विचारों को जीवन में उतार सकेगी ।

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ४ पृ० ३१५
२. वही - २ पृ० ३७०
३. शिक्षा संस्कृति और समाज - स्वामी विवेकानन्द, पृ० ३३
४. विवेकानन्द साहित्य - २ पृ० ३७०

विवेकानन्द ने शिक्षा के प्रसार को राष्ट्रीय चेतना हेतु इसलिए भी आवश्यक बताया कि पुस्तकों में ज्ञान का जो विस्तृत भंडार है, उसे लोग समझ सकेंगे और धर्म के बारे में तमाम आंशकाओं को भी दूर कर सकेगे। इससे समाज की संकीर्ण प्रथाओं का परित्याग कर गतिशीलता में सहायक भी सिद्ध होगें। वे समाचार पत्रों के प्रकाशन को बहुत महत्व देते थे। बँगला, अंग्रेजी, हिन्दी आदि भाषाओं में पत्रिकाओं के प्रकाशन के भी पक्षधर थे। मद्रास के आलसिंगा पेरुमल, को लिखे पत्र में, " यदि हो सके तो समाचार पत्र और मासिक पत्रिका दोनों निकालो— पल भर के लिए भी विचलित न होना।"[१] इसी सन्दर्भ में विवेकानन्द ने ब्रह्मानन्द को लिखा थी था," तुम लोगों को एक मासिक पत्रिका का सम्पादन करना होगा। उसमें आधी बँगला रहेगी औरा आधी हिन्दी में- हो सके तो एक अंग्रेजी में भी।"[२] इसीलिए उन्हें आधुनिक युग में पत्र-पत्रिकाओं का प्रवर्त्तक भी वहा जाता है। जैसा कि स्वामी निखिलेश्वरानन्द ने उन्हें यह श्रेय देते हुय कहा," इस प्रकार स्वामीजी ने अपने जीवन काल में ब्रहमवादिन्, प्रबृद्ध भारत, उद्बोधन तथा कम से कम तीन अंग्रेजी पत्रिकाओं का प्रत्यक्ष रूप से प्रवर्तन किया एवं अन्य कई पत्रिकाओं के प्रवर्तन में परोक्ष रूप से सहायता प्रदान की थी (जिनमें वसुमती, डॉन आदि हैं।) उनके देहत्याग के बाद भी कई पत्रिकाओं का प्रवर्तन उन्हीं की प्रेरणा से उनकी भावधारा को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए हुआ है और हो रहा है।"[३]

अमेरिका प्रवास के समय से ही विवेकानन्द इस प्रयास में थे कि अधिक से अधिक पत्रिकाओं का प्रकाशन हो, जिससे लोगो का वैचारिक स्तर सुधारा जा सके। हिन्दी में रामकृष्ण मिशन की पत्रिका विवेक ज्योाति के सम्पादक स्वामी आत्मानन्द ने लिखा है," स्वामी विवेकानन्द की बड़ी साध थी कि रामकृष्ण मठ मिशन की ओर से हिन्दी में एक नियत कालिक प्रसिद्ध पत्रिका हो। पर उनकी यह इच्छा उनके जीवन काल में पूरी न हो सकी। किन्तु सन् १९२१ में 'समन्वय' नाम से एक हिन्दी मासिक श्रीसूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के सहयोग से अद्वैत आश्रम, मायावती द्वारा निकाला गया, जो ८ वर्ष तक चला।"[४]

---

१. विवेक ज्योति, वर्ष - २५, अंक - ४, पृ० २५-२६ (रजत जयन्ती वर्ष)
२. वही, पृ० २६ (रजत जयन्ती वर्ष) दिसम्बर १९८७
३. वही, पृ० ५६
४. वही, पृ० १३

राष्ट्रीयता के समुचित विकास के लिए विवेकानन्द ने संगठन की आवश्यकता पर बल दिया। रामकृष्ण मठ स्थापित करने के समय उनके पास केवल बारह निर्धन एवं अज्ञात नवयुवक थे, जिन्होंने अपने परिश्रम और कर्मठता के बल पर एक सम्पूर्ण आन्दोलन पैदा किया और सम्पूर्ण विश्व को झकझोर कर भारत की कीर्तिपताका को लहराया। 'आत्मनो मोक्षार्थ जगत् हिताय च' का घोष करके रामकृष्ण मठ को मानवता और सेवा का प्रतिरूप बना दिया।

अपने विराट अनुभव से विवेकानन्द ने यह निष्कर्ष निकाला कि संगठन किये बिना शक्ति और आत्मविश्वास का आ पाना असम्भव है। इसके लिए अदम्य साहस और अद्वितीय त्याग को वे आवश्यक मानते है। रामकृष्णमिशन एसोसिएशन की स्थापना के अवसर पर उनका सम्बोधन और उद्देश्य वाक्य अद्वितीय बन पड़ा है, "हम लोग भी यदि पापी- तापी , दीन-दु:खी तथा पतितों के उद्धार कार्य से पीछे हट जाँय तो फिर इन्हें कौन देखेगा ?"[१] उस रात भोजन के बाद 'आत्मनो मोक्षार्थ जगत् हिताय च' का उदात्त उद्देश्य प्रचारित कर संगठन के लिए त्याग, त्याग, त्याग-न्याय: पन्था विद्यतेऽयनाय"[२] को उद्घोष कर उन्होने सभी को संवेदनशील कर दिया।

वे संगठन के लिए त्याग के साथ ही अपना सब कुछ होम कर देने की भावना को भी एक आवश्यक उपादान के रूप में ग्रहण करते हैं। आत्म बलिदान की भावना से ही व्यक्ति, देश ओर सम्पूर्ण मानवता महान बनती है। यही लोग राष्ट्र और स्वतन्त्रता के लिए मेरुदण्ड साबित होंगे। इस सन्दर्भ में वे कहते हैं, "जब तक आप के पास ऐसे मनुष्य होंगे, जो अपना सब कुछ देश के लिए होम कर देने को तैयार हों, भीतर तक एकदम सच्चे, जब ऐसे मनुष्य उठेंगे तो भारत प्रत्येक अर्थ में महान् हो जायगा। ये मनुष्य हैं जो देश को महान बनाते है।"[३] ऐसे लोग ही भारतीय स्वाधीनता के अग्रणी, राष्ट्र के धरोहर, संगठन के मेरुदण्ड, समाज के नेता और मानवता के रक्षक हैं। इसके विपरीत भारतीय समाज में कुछ विपरीत स्थिति दिखलाई पड़ रही है। यहाँ के वास्तविक नेता भूमिगत हैं अथवा अपनी साधना में रत हैं और कोई भी किसी की आज्ञा मानने वाला नहीं है। हमें एक ऐसा नेतृत्व विकसित करने के लिए प्रयास करना चाहिए, जो भारतीय समाज के

---

१. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - ३ पृ० ४
२. वही, पृ०५
३. विवेकानन्द साहित्य - ४ पृ० २४९-५०

मूलाधारों को अच्छी तरह समझता हो और उसके साथ आत्माहुति के लिए तैयार लोगों का संगठन हो, तभी भारतवर्ष की सर्वांगपूर्ण विकास सम्भव हो सकेगा, जिसमें उसकी अपनी मौलिकता भी प्राणवंत बनी रह सकती है।

स्वामी विवेकानन्द ने युवा वर्ग को देश की स्वतन्त्रता के लिए आगे आने का आह्वान किया। युवकदल के लिए उनके विचार अदम्य साहस, अपूर्व शौर्य और विराट ओज के जीवंत दृष्टान्त थे। विवेकानन्द युवकों की महत्ता को भली-भाँति जानते थे, वे कहते हैं, ''अग्निमंत्र में दीक्षित एक युवकदल का गठन करो और अपनी उत्साहाग्नि उनमें भर दो। कार्य की मामूली शुरूआत देखकर डर मत जाना।'' युवा शक्ति में उनका अदम्य विश्वास था,'' मेरा विश्वास युवा पीढ़ी में नयी पीढ़ी में है, मेरे कार्यकर्ता उनमें से आयेंगे। सिंहों की भाँति वे समस्त समस्या का हल निकालेंगे। मैंने अपना आदर्श निर्धारित कर लिया है और उसके लिए अपना जीवन दे दिया है।''[१]

युवकों को ही भारतीय चेतना का आधार मानते हुये विवेकानन्द उनको राष्ट्र प्रेम से परिपूर्ण रहने की शिक्षा देते है। आलासिंगा पेरूमल को १८९६ में लिखे अपने पत्र में इसी भाव को व्यक्त करते हैं ''मद्रास तभी जाग्रत होगा, जब उसके प्रत्यक्ष हृदय स्वरूप सौ शिक्षित नवयुवक संसार को त्यागकर और कमर कसकर, देश, देश में भ्रमण करते हुये सत्य का संग्राम लड़ने के लिए तैयार होंगे।''[२]

जापान को राष्ट्र प्रेम का आदर्श मानते हुये विवेकानन्द प्रत्येक नवयुवक को कम से कम एक बार वहाँ अवश्य जाने की बात करते हैं। वहाँ जाने से राष्ट्र गौरव का पवित्र आदर्श देखने से उन्हें बहुत कुछ सीखने का अवसर मिलेगा। जापानियों का हमारे प्रति भी बहुत अच्छा दृष्टिकोण है,''जापानी समझते हैं कि हिन्दूओं की प्रत्येक वस्तु महान है, और विश्वास करते हैं कि भारत पवित्र भूमि हैं। जापानी बुद्धमत उससे बिल्कुल भिन्न है जो हमें लंका में दिखाई देता है वह बिल्कुल वेदान्त है।''[३] जापानी अपने देश को सर्वश्रेष्ठ और देशहित को सर्वोपरि महत्व देते हैं।

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ४ पृ० २६०
२. वही - ५, पृ० ३१८
३. वही - ४, पृ० २४९

उनकी आराधना देश के लिए है और वे देश के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर देने के लिए उद्यत रहते हैं। वहाँ की यात्रा से देश प्रेम का अद्वितीय पाठ पढ़ा जा सकता है। " जापानी अपने देश के लिए सब कुछ बलिदान करने को तैयार हैं और वे महान् राष्ट्र बन गये हैं। पर आप ऐसे नहीं हैं और आप बन नहीं सकते; आप अपना सब कुछ केवल अपने परिवारों और अपनी सम्पत्ति के लिए ही बलिदान कर सकते हैं। " इस तरह की उदात्त बातें विवेकानन्द जापान के बारे में किया करते थे। इसलिए वे जापान को आदर्श राष्ट्र मानते हैं और वहाँ के निवासियों को विशुद्ध देश प्रेमी। नगेन्द्र बाबू से जापनियों के देश प्रेम के बारे में कहते हैं, " उनका स्वदेश ही उनके लिए धर्म है। उनकी राष्ट्रीय जयध्वनि है 'महामहिम जापान दीर्घजीवी है।'"[१] इस तरह विवेकानन्द का अभिमत है कि किसी भी राष्ट्र की व्यवस्थाएँ वहाँ के मनुष्यों के भलेपन पर निर्भर करती हैं। राष्ट् के प्रति लोगों का दृष्टिकोण क्या है, देश उनके लिए कितना अहमियत रखता है और उसके लिए लोगों मे कितना बलिदान कर देने की भावना है। इन सबसे वहाँ की व्यवस्था की आधार शिला तय होती है। इसीलिए कहा जाता है कि कोई राष्ट्र इसलिए महान् और अच्छा नहीं होता कि पार्लियामेन्ट ने यह या वह पास कर दिया है, वरन् इसलिए होता है कि उसके निवासी महान् और अच्छे होते है।

विवेकानन्द ने बल को ही जीवन और दुर्बलता को ही मरण कहा है, बल को चिरन्तन और शाश्वत जीवन के साथ अनन्त सुख का समन्वय माना। उनका बल मात्र शारीरिक ही नही अपितु मानसिक व बैद्धिक भी है। इससे व्यक्ति अगर खुद को कमजोर समझेगा तो कमजोर और यदि बलवान सोचेगा तो बलवान हो जायगा। बल से ही भय को समाप्त किया जा सकता है और निर्भयता की इस स्थिति में अज्ञान राशि वज्रवेग से पलायन कर जायगी और व्यक्ति के अन्दर साहस ओज और शौर्य का शक्तिपुंज जागृत हो जायगा, जिसके आलोक में मनुष्य का सब कुछ निखर कर सामने आयेगा।

युवकों में शक्ति भरने के लिए विवेकानन्द जगह-जगह शक्ति पौरुष और वीरता की बातें किया करते थे। वे बौद्धिक रूप से 'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क', सिद्धान्त का

---

१. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - २ पृ० ५६

समर्थन किया करते थे। इसीलिए वे युवकों को पहले गीता पढ़ने के बजाय फुटबाल खेलने की सलाह दिया करते थे। शारीरिक क्षमता भी व्यक्ति को मानसिक रूप से अधिक सुदृढ़ बनाती है। इसलिए वे युवकों कहते हैं, ''अब अपनी स्नायु को बलवान बनाओ। हमें लोहे के पुट्ठे और फौलाद की स्नायु की आवश्यकता है। हम लोग बहुत दिनों तक रो चुके। अब और रोने की आवश्यकता नहीं है। अब अपने पैरो पर खडे हो जाओ और मनुष्य बनो।''[१] विवेकानन्द ने गीता के 'क्लैब्यं मास्मः गम' .... 'क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं' .... ' व्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप', उपनिषदों के 'उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधत', को अपना आदर्श वाक्य बनाया, जिसके माध्यम से आत्मोत्थान और जागरण की बात किया करते हैं। 'वीर भोग्या वसुन्धरा' का समर्थन करते हुये वे कहते हैं,'' यह संसार कायरों के लिए नही है। पलायन की चेष्टा मत करो। सफलता अथवा असफलता की चिन्ता मत करो।''[२] इसी विचार को हम तीन भागों में विभक्त कर अच्छी तहर समझ सकते हैं -

१- मेरे शिष्य कायर नही हाने चाहिए। मुझे कायरता से घृणा हैं। गम्भीर से गम्भीर कठिनाईयों में भी मानसिक सन्तुलन बनाये रखो। क्षुद्र अबोध जीव तुम्हारे विरुद्ध क्या कहते हैं, इसकी तनिक भी चिन्ता मत करो।

२- तुम्हारी देश को वीरों की आवश्यकता है अतः सदैव वीर बनो।

३- साहसी बनो, साहसी बनो मनुष्य की मृत्यु एक ही बार होती है।''[३]

भारतीय वातावरण में जिस तरह के व्यक्तित्व को आगे आना चाहिए, उसी आदर्श को विवेकानन्द रूपायित करते हैं और वही भाव उनकी अंग्रेजी कविताओं में है, जिसका भावानुवाद है -

'' जागो, उठो, सपनों में मत खोये रहो
यह सपनों की धरती है जहाँ कर्म ......
साहसी बनो और सत्य के दर्शन करो,
उससे तादात्म्य सथापित करों ......
यदि सपने ही देखना चाहो तो
शाश्वत प्रेम और निष्काम सेवाओं के ही सपने देखो।''[४]

---

१. युगनायक विवेकानन्द - ३, स्वामी गम्भीरानन्द
२. विवेकानन्द साहित्य - ९, पृ० १९८
३. शिक्षा संस्कृति और समाज - स्वामी विवेकानन्द, पृ० १२६-२७
४. विवेकानन्द साहित्य - १०, पृ० १८९-९२

वस्तुतः विवेकानन्द का सम्पूर्ण सन्देश ही व्यक्ति के उत्थान और मानव मात्र के कल्याण के लिए है । उनका आत्मोत्थान मन, आत्मा और शरीर तीनों से सम्बन्धित है, जिससे व्यक्ति आत्मा, समाज और देश के लिए संघर्ष कर सके । शक्ति-पौरुष, क्षात्र-वीर्य, ब्रह्म- तेज इनके समन्वय से ही मानव का व्यक्तित्व निर्धारित होता है । वे परिस्थिति से लड़ने के लिए आक्रान्त भाव की भी आवश्यकता समझते है,'' मृत्यु का ध्यान करो । प्रलय को अपनी समाधि में देखो तथा महाभैरव रुद्र को अपनी पूजा से प्रसन्न करो। जो भयानक है, उसकी अर्चना से ही भय बस में आयेगा । .... सम्भव हो तो जीवन को छोड़कर मृत्यु की कामना करो। तलवार की धार पर अपना शरीर लगा दो और रुद्र शिव से एकाकर ही जाओ ।'' विवेकानन्द का नव वेदान्त उसी को नाष्तिक कहता है जो अपने आप पर विश्वास नहीं करता। अपने इसी विश्वास के बल पर परिस्थितियों से टक्कर ले सकता है, अपनी खोई हुई चेतना पुनः प्राप्त कर सकता है और उन्नति व कल्याण के लिए तैयार हो सकता है ।

विवेकानन्द में देश प्रेम की भावना का विराट प्रकाशन हुआ । वास्तव में उनका उद्देश्य भारतवर्ष का बहुमुखी विकास करना था । धर्म हो, समाज हो कोई भी चिन्तन का केन्द्र देश हित से बहर नहीं है । विवेकानन्द देश को एक सजीव और गतिशील प्राणी के रूप में देखते है,'' मैं भारत को एक करुण तथा सजीव प्राणी के रूप में देखता हूँ । .... इस समय हमें भारतीय प्रयोग में जैसे भी हो सहायता करनी चाहिए।''[१] देश की गुलामी, देश की आर्थिक अवनति, राजनीतिक पराभव, सांस्कृतिक पतन सब कुछ उन्हें बहुत संवेदनशील बना देता था। महासभा के अधिवेशन की विराट सफलता के बाद उनकी व्यवस्था बहुत ही सुसज्जित प्रासाद में की गयी और बेहद आतिथ्य सत्कार किया गया पर रात को देश की अवदश को याद कर उनका रुदन मर्माहत मन की करुण झाँकी प्रस्तुत कर देता है। भारत के दीन-दुःखी पापी-तापी और दतिल लोगों की स्थिति से उन्हें बहुत दुःख होता था । मद्रास में' भारत का भविष्य पर बोलते हुये उनकी भावुकता फूट पड़ती है,'' आगामी पचास वर्ष के लिए यह जननी जन्मभूमि भारतमाता ही मानों आराध्य देवी बन जाय । तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी - देवताओं के हट जाने में

---

१. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - ३ पृ० २१५

भी कुछ नहीं है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है । सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं, समझ लो दूसरे देवी-देवता सो रहे है ।''[१]

देशभक्ति को विवेकानन्द इतना महत्व देते थे कि एक बार आप के गुरु भाईयों के साथ भक्ति एवं मुक्ति के बारे में शास्त्रों में उपलब्ध स्रोतों की बात कर रहे थे। ज्ञान, भक्ति, मुक्ति आदि पर देश के सापेक्ष अधिक बल देने पर वे अति संवेदनशील होकर हुंकार कर उठते है,'' तुम लोग जिसे भक्ति कहते हो, वह एक भयानक मूर्खता है, वह मनुष्य को केवल दुर्बल बनाती है, यह बात तुम लोग समझ नहीं पाते। जाने दो, कौन तुम्हारी रामकृष्ण की परवाह करता है? कौन तुम्हारी भक्ति, मुक्ति की परवाह करता है? किसे यह जानने की चाह है कि तुम्हारे शास्त्रों में क्या लिखा है? यदि मैं अपने देशवासियो को जड़ता के कूप से निकाल कर मनुष्य बना सका, यदि उन्हें कर्मयोग के आदर्श में अनुप्राणित कर जगा सका, तो मैं हँसते हुये हजारों नरक में जाने को राजी हूँ । मैं तुम्हारे रामकृष्ण-वामकृष्ण किसी की भी बातें नहीं सुनना चाहता । जो मेरे उद्देश्य के अनुसार कार्य करना चाहता है, मैं उसी की बात सुनूँगा । मैं रामकृष्ण या किसी अन्य का गुलाम नहीं हूँ, गुलाम हूँ तो केवल उसी का जो अपनी भक्ति मुक्ति की चिन्ता न कर दूसरों की सेवा करने को प्रस्तुत हो ।''[२] बाद में शान्त होने पर वे अपनी भावनाओं को ज्ञान की जंजीरों से बँधे होने की बात करते हैं । मातृभूमि के प्रति उनके कर्त्तव्य बोध को व्यक्त करता यह दृष्टान्त देश के प्रति उनकी संवेदना को बहुत मुखर रूप में प्रस्तुत करता है ।

विवेकानन्द ने भारतीय राष्ट्र की सातत्यता के तब तक बरकरार रहने की बात कही है, जब तक उसका धर्म भाव अक्षुण्ण रहेगा,'' भारतीय राष्ट्र कभी नष्ट नहीं हो सकता । यह अमर है और उस समय तक टिका रहेगा, जब तक इसका धर्म भाव अक्षुण्ण रहेगा, जब तक इस राष्ट्र के लोग अपने धर्म को नहीं त्याग देते।''[३] इसी तरह वे भारत वर्ष का निर्माण इसी धर्म की नींव पर मानते है और इसी पर हमारा देश टिका हुआ है,'' पर भारतवर्ष में धर्म ही राष्ट्र के हृदय का

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ५, पृ० १९३
२. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - ३ पृ० १४
३. विवेकानन्द साहित्य - ६, पृ० २४१

मर्मस्थल है, इसी को राष्ट्र की रीढ़ कह लो अथवा वह नींव समझों जिसके ऊपर राष्ट्र रूपी इमारत खड़ी है।''[१] इसी तरह वे इस बात के पक्षधर है,'' राष्ट्रीय जीवन को जिस ईंधन की जरुरत है, देते जाओ, बस वह अपने ढंग से उन्नति करता जायगा ; कोई उसकी उन्नति का मार्ग नहीं निर्दिष्ट कर सकता। हमारे समाज में बहुत सी बुराईयॅा है, पर इस तरह की बुराईयां तो दूसरे समाजों में भी है।''[२] इस प्रकार वे भारतीय समाज और राष्ट्र को हीन भावना से दूर कर आत्म गौरव के माध्यम से मुख्य धारा में लाने की कोशिश करते हैं। इसके लिए कई कविताओं का सृजन भी करते है-

'' जागो फिर एक बार
यह तो केवल निद्रा थी, मृत्यु नहीं थी,
नवजीवन पाने के लिए,
+ + + +
नये सिरे से आरम्भ करो,
अपनी जननी-जन्मभूमि से ही,
जहॅा विशाल मेघराशि से बद्धकटि,
हिमशिखर तुममें नवशक्ति का संचार कर
चमत्कारों की क्षमता देता है।,''[३]

इस तरह हम देखते हैं कि विवेकानन्द ने देश प्रेम के विशिष्ट सन्देशें के साथ सम्पूर्ण भारत को जागरण का सन्देश दिया । भक्ति-मुक्ति पर राष्ट्र को श्रेष्ठता प्रदान कर संन्यासी के लिए एक नया मापदण्ड प्रदान किया और धर्म के साथ राष्ट्र को समन्वित कर दोनों को एक दूसरे का पूरक बना दिया । फलतः जनमानस में एक अद्वितीय चेतना का प्रसार हुआ, स्वाधीनता शब्द को आध्यात्म की 'मुक्ति' से जोड़कर इसके लिए प्रयास को उदात्त वातावरण प्रदान किया। अपने सर्वश्रेष्ठ रूप में विवेकानन्द राष्ट्रपुरूष की अपरोक्ष भूमिका में दिखाई पड़ते हैं । राष्ट्रीय आन्दोलनों के मूल किन्तु सूक्ष्म उत्प्रेरक के रूप में उनके अवदान को समझा जा सकता है। राष्ट्र और राष्ट्रीयता के निर्माण में विवेकानन्द का अप्रतिम योगदान विस्मृत नहीं किया जा सकता ।

---

१. विवेकानन्द साहित्य - १०, पृ० ९९
२. वही, पृ० १०८
३. प्रबुद्ध भारत के प्रति - १८९८ में लिखित, विवेकानन्द साहित्य - १०, पृ० १८९-९०

स्वाधीनता

विवेकानन्द मुक्ति का प्रश्न जोरदार ढंग से उठाते है। यह मुक्ति एक व्यापक संकल्पना है, जिसमें धार्मिक सामाजिक, आर्थिक के साथ-साथ राजनीतिक पक्ष भी समाहित हैं। मानव के सार्वभौमिक विकास के लिए मुक्ति आवश्यक है, उसका बन्धन चाहे जिस स्तर का हो, खुलना ही चाहिए। इस तरह की विचारधारा कई स्थानों पर व्यक्त हुई है,'' तुम यह स्मरण रखो कि विकास की पहली शर्त है- स्वाधीनता । जिसे बन्धनमुक्त नही करोगे, वह कभी आगे नहीं बढ़ सकता । .... तोड़ डालो मानव के बन्धन, उन्हें स्वाधीनता के प्रकाश में आने दे। बस यही विकास की एकमात्र शर्त है।''[१] इस प्रकाश में आने के बाद व्यक्ति का सर्वतोमुखी विकास होगा ।

विवेकानन्द विचार और कार्य करने की स्वतन्त्रता को सर्वाधिक महत्व देते हैं । इसके अभाव में मनुष्य का सम्यक विकास हो पाना अशक्य हैं । '' विचार और कार्य करने की स्वतन्त्रता ही जीवन, उन्नति और हित साधन का एकमात्र मार्ग है। जहाँ यह स्वतनत्रता नहीं है, वहॉ मनुष्य जाति और राष्ट्र की अवनति अवश्यम्भावी है।''[२] स्वाधीनता का यह विराट प्रश्न हर व्यक्ति के लिए है और इस बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ता कि मुक्ति या स्वतन्त्रता किससे प्राप्त करनी है, यह विदेशी अंग्रेज हो सकते है अथवा कोई देशी । जहॉं कही मानवता को ध्यान में रखकर शासन नही किया जाता, वहीं स्वाधीनता का प्रश्न खड़ा हो जाता है । स्वतन्त्रता प्राप्त करने से पहले हम लोगों को अपने आपको तैयारा करना होगा; मानसिक तौर पर हमारी जो दुर्बलताएँ है, उन पर विजय प्राप्त करनी होगी । जैसा कि वे कहते भी है, ''भारतवर्ष की उन्नति करनी है । .... हमारे नासमझ युवक अंग्रेजों से अधिक अधिकार पाने के लिए सभाएँ करते है। पर वे लोग सिर्फ हॅसते है, जो स्वतन्त्रता देने को तैयार नहीं है, वह स्वतन्त्रता पाने लायक नहीं हैं । मान लो, अंग्रेजों ने सभी अधिकार तुम्हें सौंप दिये, तब तो तुम प्रजा को दबाओगें और उन्हें कुछ भी अधिकार न दोगे गुलाम लोग गुलाम बनाने के लिए ही अधिकार चाहते है।''[३]इसलिए स्वाधीनता को पाने से पहले हमे उसके लिए अपने आप की तैयार करना होगा ।

---

१. विवेकानन्द साहित्य - २, पृ० ६९

२. जाति, संस्कृति, समाज और समाजवाद - स्वामी विवेकानन्द, पृ० २४

३. वही, पृ० २२

भारतीयों को स्वाधीनता की सही प्राप्ति तभी हो सकती है, जब वे शासक और शासित के मध्य का सम्बन्ध सच्चे मायनों में समझे और इसके व्यापक दृष्टिकोण से भी परिचित है। इसका उदाहरण देते हुये विवेकानन्द कहते है, " राजा, जो अपनी प्रजा की एकत्रित शक्तियों का केन्द्र है, शीघ्र ही भूल जाता है कि ये शक्तियाँ उसके पास इसलिये संग्रह कि गई हैं कि वह उन शक्तियों को बढ़ाये और सहस्र गुना अधिक बलशाली कर पुनः अपनी प्रजा को लौटा दे, ताकि परिणाम यह हो कि वे शक्तियों सारे समाज की भलाई के लिए फैल जाँय ।"[१]

विवेकानन्द इसके लिए कूपमंडूकता को त्यागने के साथ ही साथ वैचारिक संकीर्णता की सीमा को भारतीय अवनति का मुख्य कारण मानते हैं। इनसे मुक्त होने का आह्वान करते हुये कहते है," हमें यात्रा करनी चाहिए, विदेशों को जाना चाहिए । यदि हमें सचमुच एक देश या राष्ट्र बनना है, तो यह देखना चाहिए कि दूसरे देशों में समाज यन्त्र किस प्रकार चल रहा है । दूसरे राष्ट्रों की विचारधाराओं के साथ हमें मुक्त और खुले दिल होकर सम्बन्ध रखना चाहिए ओर सबसे बडी बात यह है कि हमें अत्याचार बन्द कर देना चाहिए ।"[२]

स्वाधीनता के लिए चरित्र की आवश्यकता पर विवेकानन्द विशेष जोर देते है," उसके बाद चरित्र निर्माण———— चरित्र वज्र के समान दृढ़ बना दीजिए," क्या आप मुझे कुछ योग्य लड़के दे सकेंगे ? तब तो मैं पृथ्वी को अच्छी तरह हिलाकर जा सकूँगा ।"[३] वे देशवासियों को ललकारते हुये कहते हैं," उठो, जागें और जब तक तुम अपने अन्तिम ध्येय तक नही पहुँच जाते,तब तक चैन न लो । —निर्बलता के इस व्यामोह से जाग जाओ । वास्तव में कोई दुर्बल नहीं है। —— हमारी जाति के ऊपर घोर आलस्य, दुर्बलता और व्यामोह छाया हुआ है। इसलिए ऐ आधुनिक हिन्दुओं ! अपने को इस व्यामोह से मुक्त करो ।"[४] इस आधार पर कहा जा सकता है । कि विवेकानन्द स्वाधीनता को व्यापक अर्थ में लेते हैं और इसको प्राप्त करने से पहले मानसिक और चारित्रिक उत्थान करने की बात करते हैं।

---

१. जाति, संस्कृति, और समाजवाद - स्वामी विवेकानन्द, पृ० ७६
२. वही, पृ० ४४
३. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - द्वितीय भाग पृ० ४०
४. विवेकानन्द साहित्य - ५, पृ० ८९

राजनीतिक विचारधारा

विवेकानन्द अधिकतर राजनीतिक क्षेत्र में प्रत्यक्ष विचार देने से बचते रहे, इसलिए उन्हें इस क्षेत्र के बारे में स्पष्ट रूप से बोलते हुये बहुत कम देखा गया। इसके बाद भी उनकी व्यापकविचार धारा से यह पक्ष भी प्रभावित हुये बिना न रह सका। भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन के सभी प्रमुख नेता विवेकानन्द के गरिमामय व्यक्तितक्त्व और विराट चिन्तन से अभिभूत हुये बिना न रह सके। गांधी जी विवेकानन्द के बारे में कहते है,'' मैंने स्वामीजी के ग्रन्थ बड़े ही ध्यानपूर्वक पढ़े है और इसके फलस्वरूप देश के प्रति मेरा प्रेम और भी बढ़ गया है।'' इसी तरह भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने मार्च १९४९ के मिशन के नई दल्ली में आयोजित एक सभा के दौरान कहा था, '' वे साधारण अर्थ में कोई राजनीतिकज्ञ नहीं थे, फिर भी मेरी राय में, वे भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के महान् संस्थापकों में से एक थे और आगे चलकर जिन लोगों ने उस आन्दोलन मे थोता या सक्रिय भाग लिया, उनमें से अनेक के प्रेरणा स्रोत स्वामी विवेकानन्द थे।''[१] भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के एक और धुरन्धर राष्ट्रीय नेता सुभाष चन्द्र बोस ने विवेकानन्द को भारत का आध्यात्मिक पिता कहा।

राजनीतिक क्षेत्र की प्रतिनिधि संस्था कांग्रेस की आरम्भिक उपलब्धियों से विवेकानन्द सन्तुष्ट नहीं थे। इसका प्रमाण हम इस संवाद के माध्यम से समझ सकते है -

'अश्विनी बाबू - परन्तु कांग्रेस जो कर रही है, उसमें क्या आपकी आस्था नहीं है?

स्वामीजी - नहीं मेरी आस्था नहीं है, पर हाँ बिल्कुल नहीं से थोड़ा अच्छा है,फिर सोये हुये राष्ट्र को जगाने के लिए उसे हर तरफ से धक्के देना अच्छा है, क्या आप मुझे बता सकते हैं कि कांग्रेस ने अब तक आम जनता के लिए क्या किया है ? आप क्या ऐसा सोचते हैं कि मात्र दो-चार प्रस्ताव पास कर देने से ही स्वाधीनता मिल जायगी।'[२]

---

१. विवेक ज्योति; १ वर्ष - २४, अंक - ३, जुलाई-सितम्बर १९८६, पृ० १९०

२. युगनायक विवेकानन्द - २, पृ० २९

कालान्तर में काग्रेंस के बारे में उनके विचार कुछ परिवर्तित दिखार्द पड़ते है और इसकी सफलता की हार्दिक कामना करते है, " मैं यह नहीं कह सकता कि मैने काफी ध्यान दिया है, मेरा कार्य क्षेत्र दूसरा है । पर मैं इस आन्दोलन को महत्वपूर्ण मानता हूँ और हृदय से उसकी सफलता चाहता हूँ। भारत की विभिन्न जतियों से एक राष्ट्र का निर्माण किया जा रहा है। "[१] आगे इसी कड़ी में इस संस्था के सम्भावित परिणाम को भारत में लोकतन्त्र के भविष्य के साथ जोड़ते है और इस प्रकार की आशा करते है," इसका अन्त निश्चय ही भारत की एकता सम्पादित करने में, और उसके द्वारा वह प्राप्त करने में होगा, जिन्हें हम जनतांत्रिक विचार कह सकते है। .... शिक्षा आ रही है और इसके बाद अनिवार्य शिक्षा आयेगी। हमारे लोगों में जो कार्य करने की महान् क्षमता है, उसका उपयोग किया जायगा। भारत की सम्भावनाएँ बड़ी है और उनको प्रस्फुटित किया जायगा।"[२]

भारत के राजनीतिक जागरण के बारे में इंग्लैण्ड में प्रश्नों का उत्तर देते हुये विवेकानन्द ने कहा :-

प्रश्न - क्या कभी कोई राष्ट्र बिना महान् सैनिक बने महान् हुआ है ?
हाँ, चीन हुआ हैं ।
क्या भारत को उस जागरण का ज्ञान है?

" अच्छी तरह, संसार उसे शायद मुख्यतया कांग्रेस आन्दोलन और सामाजिक सुधारों के क्षेत्र में देखता है, पर यह जागरण धर्म में भी उतना ही वास्तविक है, यद्यपि वहाँ अधिक निस्तब्धता से काम करता है।"[३]

विवेकानन्द ने तत्कालीन व्यवस्था के प्रति अपना असन्तोष कई बार व्यक्त किया है। अंग्रेजो द्वारा भारतीयों के प्रति किये जा रहे व्यवहार से भी वे अप्रसन्न थे, यही भाव लन्दन प्रवास के दौरान फूट भी पड़ा, "अंग्रेज जाति के प्रति मुझसे अधिक घृणा का भाव लेकर और किसी व्यक्ति ने ब्रिटिश भूमि पर पदार्पण नहीं किया है।"[४]

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ४, पृ० २४०
२. वही,
३. वही, पृ० २४०-४१
४. विवेकानन्द चरित, पृ० २७४

उनके मूल में अंग्रेजों द्वारा किये जा रहे अत्याचार, भेदभाव, धर्मान्तरण और मानवता हनन के प्रश्न थे। फिर भी उन्होंने अंग्रेजो शासन प्रणाली का स्पष्ट विरोध नहीं किया, क्योंकि उनका क्षेत्र भिन्न था और कोई बात प्रकारान्तर से ही कहने पर बल देते हैं। फिर इस दिशा में उनका दृष्टिकोण भी प्रगतिशील था, "भारत की वर्तमान शासन प्रणाली में कई दोष हैं, पर साथ ही साथ कई बड़े गुण भी हैं। सबसे बड़ा गुण तो यह है कि सारे भारत पर एक ऐसे शासन यन्त्र का प्रभाव है, जो इस देश में पाटलिपुत्र साम्राज्य के पतन के बाद कभी नहीं हुआ।"[१]

विवेकानन्द राष्ट्रीय भावना और आत्म गौरव के विकास के लिए देशवासियों को अपने अतीत का अवलोकन करने के लिए कहते हैं। भारत का इतिहास ही उसे अपनी महानता का बोध करा सकता है। धार्मिक एवं सामाजिक रूपसे हमारी परम्पराएँ श्रेष्ठ, मानवीय और उदात्त भावनाओं की जीवंत प्रतीक हैं। अतीत का प्रयोग वर्तमान को प्राणवंत करने के लिए और सुप्त चेतना जागृत करने हेतु विवेकानन्द कहते हैं, "ऐ हिन्दुओं ! तुमने जो कुछ किया है, वह अच्छा ही किया है, परन्तु आओ, अब हम उससे भी अधिक अच्छा कार्य करें।"[२] उनका विचार था कि अपना विकास जितना भविष्य को देखकर करने की आवश्यकता है, उतना ही अतीत को देखना भी आवश्यक है, तभी सन्तुलित वर्तमान का सृजन हो सकता है, जो चिरस्थायी और मानवीय भी होगा। हमें इतिहास की भूलों से सबक लेना चाहिए, जिससे वही गलतियों फिर से न दुहरा दी जाँय। राष्ट्र का नव निर्माण इतिहास की ही बुनियाद पर हो सकता है, इसी भाव को व्यक्त करते हुये विवेकानन्द कहते भी है, " जिस राष्ट्र का अपना कोई इतिहास नहीं है, वह इस संसार में अत्यन्त हीन और नगण्य है। .... इसी तरह राष्ट्र का गौरवमय अतीत राष्ट्र को नियन्त्रण में रखता है।"[३] वस्तुतः विवेकानन्द राष्ट्र के इतिहास को, उसकी गौरवमयी परम्परा को, उसका प्रेरक और नियन्त्रक दोनों मानते हैं। जिससे विखराव और असन्तुलन की स्थिति नहीं आती और देश वांछित प्रगति की और उन्मुख रहता है।

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ९, पृ० २२२
२. शिक्षा, संस्कृति और समाज - स्वामी विवेकानन्द, पृ० ९५
३. विवेकानन्द साहित्य - ८, पृ० २२८

!घ! सामाजिक विचार धारा

भारत का उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध का सामाजिक वातावरण भी एक द्वन्द्व में उलझा हुआ था। परम्परागत विचारों में आधुनिकता का समावेश होने से समाज का स्वरूप भी परिवर्तित हो रहा था। पाश्चात्य विचारधारा के प्रभाव से सामाजिक आचार - विचार, भोजन, पहनावा आदि के क्षेत्र में क्रान्तिकारी बदलाव दिखाई पड़ता है। अति आधुनिकता के मोह में युवा वर्ग शराब, कबाब और अन्यान्य दुर्व्यसनों में फँस रहा था। ऐसी परिस्थिति में विवेकानन्द ने भारतीय समाज को नवीन आलोक देने का कार्य किया। उनका कहना था, ''मैं किसी क्षणिक समाज - सुधार का प्रचारक नहीं हूँ। मैं समाज के दोषों को सुधार करने की चेष्टा नही कर रहा हूँ।''[१] इसी के साथ, जाति भेद तोड़ने से उनका मतलब यह नहीं था कि शहर भर के लोग एक साथ मिलकर शराब कबाब उड़ाये या जितने मूर्ख पागल हैं, वे सब चाहे जिसके साथ शादी कर लें और सारे देश को बहुत बड़ा पागल खाना बना दें और न उनका यही विश्वास था, कि जिस देश में जितने ही अधिक विधवा विवाह हों, वह देश उतना ही उन्नत समझा जायेगा। इस प्रकार से किसी जाति की उन्नति होते मुझे अभी देखना है।''[२]

उपरोक्त कथन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि विवेकानन्द का सामाजिक चिन्तन सकारात्मक दिशा की ओर अग्रसर था। भारतीय समाज का सुधार भारतीय पद्धति से ही हो सकता है। इसके लिए हमें किसी अन्य पद्धति की आवश्यकता नहीं है। विवेकानन्द का दृष्टिकोण कुछ भी तोड़ने के खिलाफ था। वे जोड़ने और मोड़ने की क्रिया में विश्वास करते थे। जिससे समाज में समरसता का वातावरण बना रहे।

भारतीय समाज में व्याप्त विसंगतियों को स्वीकार करते हुए विवेकानन्द ने इनको समाप्त करने के लिए धर्म और वेदान्त का आश्रय लेने की बात कही। उनके दृष्टिकोण से ''समाज की आँखो पर बहुत दिनों तक पट्टी नहीं बाँधी जा सकती है। समाज के ऊपरी हिस्से में कितना ही कूडा-करकट क्यों न इकट्‌ठा हो गया हो, परन्तु उस ढेर के नीचे प्रेम रूप निःश्वार्थ सामाजिक

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ५ पृ० ९२
२. वही, पृ० ९२

जीवन का प्राण - स्पन्दन होता रहता है। सब कुछ सहने वाली पृथ्वी की भाँति समाज भी बहुत सहता है, परन्तु एक न एक दिन वह जागता ही है और उस जागृति के वेग से युगों की एकत्र मलिनता तथा स्वार्थपरता दूर जा गिरती है।''[१]

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समाज सुधार के लिए देश को स्वप्रेरणा की आवश्यकता पर विवेकानन्द ने अधिक जोर दिया। प्रत्येक व्यक्ति के अन्तःकरण में स्थित आत्मतत्व को जगा देने से ही उसका उत्थान सम्भव है। इसी से सामाजिक असमानता और उनके विसंगतियों को समाप्त किया जा सकता है। समाज के तुलनात्मक अध्ययन में वे भारतीय समाज में अवनति के कुछ लक्षण अवश्य देखते हैं, और उसका समाधान करने की व्यवस्था भी देते हैं।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति - प्रथा एक विवादास्पद व्यवस्था मानी जाती है। विवेकानन्द ने कहा, ''जाति - प्रथा का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। ...... यह तो अपेक्षाकृत एक नूतन सामजिक कुप्रथा है।''[२] इसके ऐतिहासिक विवेचना की आवश्कता पर बल देते हुए लाभ - हानि को देखने की बात करते हैं। जाति - प्रथा के गुण - दोषों का स्पष्टीकरण स्वामी जी ने यह कह कर किया कि उसका बुरा पक्ष तो है, पर उससे होने वाले लाभ का पलड़ा अधिक भारी है। संक्षेप में यह जाति - प्रथा पुत्र द्वारा पिता के व्यवसाय को अपनाने से बढी।''[३] इसके कुछ और लाभों की चर्चा करते हुए विवेकानन्द कहते हैं,'' मैं जातियों को किसी प्रकार मिटाने की बात नहीं कहता। जाति - प्रथा एक बहुत अच्छी व्यवस्था है। .... भारत में योजना है कि प्रत्येक मनुष्य को ब्राह्मण बनाया जाय, ब्राह्मण मानवता के आदर्श हैं।''[४] इस प्रथा की उदात्त भावनाओं का समर्थन करते हुए भी विवेकानन्द इसके रुढ़िबद्ध और जड़ हो जाने का विरोध भी करते हैं। इसके आधार पर समाज में ऊँच - नीच एवं छुआ - छूत आदि को वे अस्वीकार्य बताते हैं और ऐसी किसी भी संकीर्णता का विरोध भी करते हैं। आपका समस्त दर्शन रसोई में है। आजकल भारत का धर्म मत छुओ - वाद है।''[५] इस तरह के कथनों के द्वारा

---

१. विवेकानन्द साहित्य खण्ड-९ पृ० २१६
२. वही खण्ड-१ पृ० २७०
३. वही, पृ० २७४
४. वही - ४, पृ० २५३
५. वही - ४ पृ० २६०

विवेकानन्द भारतीय समाज की आलोचनाकरते हैं । सभी मनुष्यों में एक ही आत्मा का निवास है, उनके साथ भोजन करने और साथ - साथ रहने में कोई बुराई नहीं है । ऐसा न होना समाज की समानता के सिद्धान्त का खण्डन करता हैं और समरसता स्थापित न होने का एक बहुत बड़ा कारक है ।

जाति प्रथा को कर्तव्य के साथ जोड़ते हुए विवेकानन्द कहते हैं । "किसी भी प्रकार के कर्तव्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । जो व्यक्ति कोई छोटा या नीचा काम करता है । वह केवल इसी कारण ऊँचा काम करने वाले की अपेक्षा छोटा या हीन नहीं हो जाता । मनुष्य की परख उसके कर्तव्य की उच्चता या हीनता की कसौटी पर नहीं होनी चाहिए, वरन् यह देखना चाहिए कि वह कर्तव्यों का पालन किस ढंग से करता है ।"[१] बाद में वे ललकारते हुए कह भी देते हैं, "........... तुम मत भूलना कि नीच - अज्ञानी, दरिद्र, चमार और मेहतर तुम्हारा रक्त, तुम्हारा भाई है । ऐ वीर ! साहस का आश्रय लो । गर्व से बोलो कि मैं भारत वासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, बोलो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, सब मेरे भाई हैं ।"[२]

भारत में व्याप्त झूठे जातिगत अहंकार पर व्यंग्य करते हुए विवेकानन्द ने कहा, "इस देश के हाल का क्या कहा जाय? शूद्रों की बात तो अलग रही, भारत का ब्राह्मणत्व अभी गोरे अध्यापकों में है और इसका क्षत्रियत्व चक्रवर्ती अंग्रेजों में । इसका वैश्वत्व भी अंग्रेजों की नस - नस में है । भारतवासियों के लिए तो केवल भारत ही पशुत्व अथवा शूद्रत्व ही रह गया ।"[३]

इस प्रकार विवेकानन्द जातिगत अहंकार की परिणति को भारत की चिर-गुलामी से जोड़कर इसमें व्याप्त संकीर्णता को समाप्त करने की बात करते हैं और समाज के विभिन्न वर्गो ओर लोगों में जातिगत एक रूपता की आवश्यकता पर जोर देते हैं । सभी जातियाँ खुद को ब्राह्मण घोषित कर ऐसा कर सकती हैं ।

---

१. विवेकानन्द साहित्य — ९ पृ० १८३
२. वही, -५, पृ० २२८
३. वही, पृ० २१९

विवेकानन्द नारी- समस्या के प्रति भी सजग थे। भारत की स्त्रियों के स्थिति से वे सन्तुष्ट नही थे । उनमें व्याप्त हीनता के परिप्रेक्ष्य में उनका दृष्टिकोण बहुत सजग था । स्त्रियों के प्रति किये जा रहे अमानवीय व्यवहार से वे अत्यन्त क्षुब्ध थे । भारत की प्रगति तभी सम्भव है, जब स्त्रियों की सहभागिता सुनिश्चित हो जाय । वे कहते हैं, " स्त्रियों की अवस्था को सुधारे बिना जगत के कल्याण की कोई सम्भावना नहीं है । पक्षी के लिए एक पंख से उड़ना असम्भव है।"[१]

स्त्रियों की दुरवस्था के लिए विवेकानन्द मूल कारणों की ओर अधिक ध्यान देते हैं । 'बाल-विवाह' को वे इसी रूप में देखते हैं । बाल-विवाह को धर्म के अन्तर्गत व्याख्या करने के प्रश्न पर लताड़ते हुये विवेकानन्द का कहना था, " आठ वर्ष की कन्या के साथ तीस वर्ष के पुरुष का विवाह करके कन्या के पिता -माताओं के आनन्द की सीमा नहीं रहती । .... फिर इस काम में बाधा पहुचने से वे कहते हैं कि हमारा धर्म ही चला जायगा । आठ वर्ष की लड़की के गर्भाधान की जो लोग वैज्ञानिक व्याख्या करते हैं; उनका धर्म कहाँ का धर्म है ।"[२] इसके लिए युवाओं का आवाहन करते हैं कि वे इस कुप्रथा के कलंक को दूर करने के लिए आगे आयें । विवेकानन्द के इसी विचार को अपने संस्मरण में हरिपाटन मित्र लिखते भी हैं," मैने पहले से ही स्वामी जी को बाल विवाह के विरुद्ध देखा, वे सदैव सभी को विशेषतः बालकों को हिम्मत बाँधकर समाज के इस कलंक के विरोध में खड़े होने के लिए तथा उद्योगी और सन्तुष्टचित्त होने के लिए उपदेश देते थे ।"[३]

भारतीय नारी की समस्या और उसके समुचित समाधान की भी चर्चा उनके द्वारा की जाती है," पर हमारा हस्तक्षेप करने का अधिकार केवल शिक्षा का प्रचार कर देना तक ही सीमित है । हमें नारियों को ऐसा स्थिति में पहुँचा देना चाहिए, जहाँ वे अपनी समस्या को अपने ढंग से स्वयं सुलझा सकें । उनके लिए यह काम न कोई कर सकता हैं और न किसी को करना चाहिए । हमारी भारतीय नारियाँ संसार की अन्य किसी भी नारियों की भाँति इसे करने की क्षमता रखती हैं ।[४] इसी के साथ ही साथ उन्होनें शिक्षा के द्वारा ऐसी चेतना की बात की "निश्चय ही उनकी

---

१ विवेकानन्द सहित्य - ४ पृ० ३१७

२. वही, पृ० ३०८ ३. वही, -१० पृ० ३२२,

४. वही, - ४ पृ० २६७

समस्याएँ बहुत सी हैं और गम्भीर हैं पर उनमें से एक भी ऐसी नही है, जो जादू भरे शब्द शिक्षा से हल न की जा सकती हो। पर वास्तविक शिक्षा की तो अभी तक लोगों में कल्पना भी नहीं की गयी है।''[१] इस तरह विवेकानन्द स्त्रियों के लिए शिक्षा की आवश्यकता पर जोर देते हुए उन्हे स्वयं अपने उद्देश्य और गरिमा के लिए आत्मप्रेरणा विकसित करने की बात करते हैं। तभी उनका सम्यकरूप से विकास हो पायेगा और वे राष्ट्र की मुख्य धारा में सम्मिलित हो सकेंगी।

स्त्रियों की शिक्षा पर विवेकानन्द का विशेष जोर था। उनके शिक्षित होने पर ही भारत की भावी पीढ़ी का भविष्य उज्जवल होगा और देश में विद्या, ज्ञान एवं शक्ति जाग उठेगी स्त्रियों का आदर एवं पूजा करके ही सभी जातियाँ बडी बनी हैं। जिस देश में, जिस जाति में स्त्रियों का सम्मान नहीं, वह देश और जाति न कभी बड़ी बन सकी है और न कभी बन ही सकेगी। इन स्त्रियों का उत्थान किये बिना भारत की उन्नति सम्भव नहीं है। विवेकानन्द भारतीय नारियों का आह्वान करते हुए कहते हैं। ''इस देश की नारियों को ही क्यों, मैं उनसे भी वही बात कहता हूँ, भारत में विश्वास करो और हमारे भारतीय धर्म में विश्वास करो। शक्तिशाली बनो और संकोच छोड़ो और याद रखो कि यदि हम बाहर से कोई वस्तु लेते हैं, 'तो संसार की अन्य जाति की तुलना में हिन्दू के पास उसके बदले में देने को अनन्त गुना अधिक है।''[२] शिक्षा के अभाव में ही विवेकानन्द भगिनी निवेदिता को लिखते हैं, ''अब मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि भारत के कार्य में तुम्हारा भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। भारत के लिए, विशेषतः भारत के नारी समाज के लिए पुरुष की अपेक्षा नारी की - एक सच्ची सिंहनी की आवश्यकता है। भारतवर्ष अब भी महीयसी नारियों को जन्म नहीं दे पा रहा है, ... तुम्हारी शिक्षा, निष्ठा, पवित्रता, असीम प्रेम, दृढ़ता ओर सर्वोपरि तुम्हारी धमनियों में प्रवाहित होने वाले केल्टिक रक्त के कारण तुम एक ठीक वैसी ही नारी हो, जिसकी आज आवश्यकता है।''[३]

इस तरह हम देखते हैं कि विवेकानन्द स्त्रियों की समस्या को पुरुषों से बहुत अलग करके नहीं देखते और स्वयं उन्हीं के द्वारा अपनी सभी समस्याओं को हल करने के लिए उचित

---

१. विवेकानन्द साहित्य –४ पृ० २६८

२. वही, पृ० २६९

३. युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - ३, पृ० ७२

परिस्थिति का निर्माण कर देने की बात करते हैं।

भारतीय समाज की विविधता को विवेकानन्द स्वीकार करते हैं और आवश्यकता के अनुसार उसमें गतिशीलता ओर परिवर्तन की सम्भावना को भी बनाये रखने की बात करते हैं। उनका विचार था कि वर्ण-व्यवस्था का आधार कर्म होना चाहिए। वे क्रमशः ब्राहमण शासन, क्षत्रिय शासन और वैश्य प्रभुत्व की विवेचना करते हैं और वर्तमान युग को शूद्र शासन की परिधि में आने की बात करते हैं। द्विजेतर जातियों को भी द्विज बनाओ, की बात करते है, "समस्त द्विजातियों को उपनयन - संस्कार में अधिकार है। वेद स्वयं की इसका प्रमाण है। आज श्रीरामकृष्ण के जन्मदिन पर जो लोग यहाँ आयेंगे, मैं उन सबको जनेऊ पहनाऊँगा। ये सभी व्रात्य (पतित) हो गये हैं। शास्त्र कहते हैं कि प्रायश्चित कर लेने पर व्रात्यगण पुनः उपनयन संस्कार के अधिकारी हो जाते हैं। .... क्रमशः देश के सभी लोगों को ब्राह्मण की पदवी पर आरूढ़ कराना होगा; ठाकुर के भक्तों का तो कहना ही क्या ! सभी हिन्दू आपस में एक दूसरे के भाई हैं। नही छूऊँगा, नहीं छूऊँगा ..... कहते - कहते हमने इन्हें हीन बना डाला है। इसी कारण हमारा देश हीनता, भीरुता, मूर्खता एवं कापुरुषता की चरम सीमा तक पहुँच गया है। .... बतलाना होगा - तुम लोग भी हमारे समान मनुष्य हो, तुम्हारा भी हमारे समान ही सब अधिकार है।"[१]

विवेकानन्द समाज सुधार में हस्तक्षेप के विरोधी प्रतीत होने पर भी लगता है , यहाँ पर स्वेच्छापूर्वक ही उन्होंने अपनी नीति का उल्लंघन किया। तथापि इस आचरण के मूल सूत्र उनके उपदेशों के विरोधी नही हैं। .... सतयुग में सभी ब्राह्मण थे, वर्तमान युग में अधिकार - साम्य की स्थापना करने के लिए ब्राह्मण को अवनत नहीं करना होगा, बल्कि शिक्षा एवं संस्कृति की सहायता से सबको पुनः ब्राह्मणत्व में प्रतिष्ठित करना होगा और इस उन्नयन का उत्तरदायित्व उच्च वर्ण को ही स्वीकार करना होगा।"[२] इसके लिए विवेकानन्द खुद को समाजवादी घोषित करते हुये कहते हैं, "मैं समाजवादी हूँ **(I am a socialist)**; परन्तु साथ ही साथ वे यह भी बता देते हैं कि वे इसे एक आदर्श मतवाद नहीं मानते, परन्तु कुछ नहीं से थोड़ा कुछ अच्छा है। निम्न स्तर के लोगों को उन्नति का अवसर नहीं मिला और उपरोक्त मतवाद के अनुसार जब यह सुयोग आ रहा है तो इसे ग्रहण करना ही उचित है।"[३] जातिवाद के एक नकारात्मक पक्ष की ओर संकेत करते हुये इसे

१- युगनायक विवेकानन्द - स्वामी गम्भीरानन्द - ३, पृ० ७८

२. वही, पृ० ७९

३. वही

भारत की अवनति का एक प्रमुख कारण माना है,"जातिवाद का सबसे बुरा पक्ष यह है कि वह प्रतियोगिता को दबाती है और वास्तव में प्रतियोगिता का अभाव ही भारत की राजनीतिक अवनति और विदेशी जातियों द्वारा उसके पराभूत होते रहने का कारण सिद्ध हुआ है।"[१]

इसी तरह शिक्षा व्यवस्था के परिणम स्वरूप सामाजिक चेतना का विस्तार नही हो पा रहा है क्यों कि कुछ उपाधियाँ प्राप्त करने या अच्छा भाषण दे सकने से क्या तुम्हारी दृष्टि में वे शिक्षित हो गये! जो शिक्षा साधारण व्यक्ति को जीवन संग्राम में समर्थ नहीं बना सकती, जो मनुष्य में चरित्र, पर-हित भावना तथा सिंह के समान साहस नहीं ला सकती, वह भी कोई शिक्षा है।"[२] शिक्षा की इसी प्रभवोत्पादिकता के अभाव के कारण शिक्षित वर्ग 'स्व' के घेरे से बाहर नहीं आ पाता और विवेकानन्द उन्हें फटकरते हैं, "......... आपका मद्रास का स्नातक एक नीची जात के व्यक्ति का स्पर्श नहीं करेगा, पर वह अपनी शिक्षा के लिए उससे रुपया खींचने को तैयार है।"[३] इन्हीं तमाम विडम्बनाओं के कारण विवेकानन्द वौद्धिक वर्ग को 'अहं' के घेर से बाहर आने का अवाहन करते हैं और समाजिक संरचना में व्याप्त अहमन्यता और संवेदनहीनता को दूर कर ज्ञान के प्रकाश से समाज को आलोकित करने के लिए प्रेरित करते हैं ।

विवेकानन्द की विचार धारा इतनी व्यापक है कि मानवमात्र के जीवन के विविध पक्ष उसमें आत्मसात हो जाते हैं। आर्थिक क्षेत्र भी इसका अपवाद नहीं है। वस्तुतः वे इन प्रश्नों पर सबसे अधिक संवेदनशील हो जाते हैं। 'रोटी' के प्रश्न को वे बहुत ही शिद्दत के साथ समझते हैं, और अर्थाभाव से संकटापन्न जनता से धर्म की आशा करने वालों को दया का पात्र समझते हैं। तत्कालीन भारत में गरीबी, बेकारी और भुखमरी सर्वत्र व्यापत थी। अधिकांश जनता आर्थिक झंझावातों से जूझ रही थी, उस पर सामाजिक तिरस्कार और उपेक्षा, उनके दुःखों को और घनीभूत कर देती थी। विवेकानन्द ने ऐसी असंख्य स्थिति को समझा और देश को इसके लिए ललकारा। वे रोटी को धर्म से भी ऊपर मानते थे, उनका कहना था," यदि पड़ोसी भूखा हो तो मन्दिर में प्रसाद चढ़ाना ईश्वर का अनादर है। भारत का प्रधान अभाव धर्म नहीं है। भारत में कोटि-कोटि क्षुधार्य

---

१. विवेकानन्द साहित्य-१, पृ० २७४
२. वही,-६ पृ० १०६
३. वही,-४ पृ० २६०-६१

नर - नारी शुष्क कंठ से रोटी-रोटी चिल्ला रहे हैं और हम उनहें देते है - पत्थर ! भूँखे लोगों को धर्म का उपदेश देना या दर्शन सिखना, उनका अपमान है।''[१]

नव वेदान्त सभी मनुष्यों की समानता का उद्घोष करता है । अतः कार्य करने वाले लोगों के प्रति विशेष आग्रह की अपेक्षा रखता है । वे बताते हैं ,'' करोडों की संख्या में जो गरीब व निम्नवर्ग के लोग हैं, ये ही राष्ट्र के प्राण हैं । ये किसान, जुलाहे आदि जो भारत के नगष्य मनुष्य हैं .... छोटी - छोटी जातियाँ है, वही लगातार काम करती जा रही हैं और अपने परिश्रम का वांछित फल भी नहीं प्राप्त कर रही हैं । इन लोगों ने मौन रहकर, हजारों वर्षो तक अत्याचार सहा है । ...... चिरकाल से दुःख भोगा है, जिससे पायी है अटल जीवन शक्ति ।''[२] अतएवं इनके कल्याण के लिए हमें विशेष प्रयास करना चाहिए ।

आलासिंगा पेरुमल को लिखे पत्र में उन्होनें इसी बात को कहा है; ''दुःखी लोगों की सहायता करने में मैं विश्वास करता हूँ और दूसरों को बचाने के लिए मैं नरक तक जाने को तैयार हूँ ।''[३]

आर्थिक विपन्न लोगों के प्रति जहाँ विवेकानन्द आक्रोश और दुःख प्रकट करते हैं, वहीं उनका आशावादी दृष्टिकोण भी व्यक्त होता है,'' भारत वर्ष के सभी अनर्थों की जड़ है - गरीबी ! पाश्चात्य देशों के गरीब तो निरे दानव हैं, उनकी तुलना में हमारे यहाँ के गरीब देवता हैं । इसलिए हमारे गरीबों की उन्नति करना सहज है ।''[४] उनका विचार था कि समय रहते हमें निर्धनों की समस्याओं का हल कर देना चाहिए नहीं तो बहुत ही बिडम्बना पूर्ण स्थिति खड़ी हो सकती है अतएव लोगों से चेतावनी भरे स्वर में कहते हैं, '' हा शोक! देश के गरीबों का कोई विचार नहीं करता । वे ही तो देश के मेरुदण्ड हैं । जो अपने परिश्रम से अन्न उत्पन्न करते हैं । ये मेहतर और मजदूर, यदि ये लोग एक दिन काम करना बन्द कर दें तो देश भर में घवराहट फैल जाय । पर उनके साथ सहानुभूति रखने वाला कौन है ?''[५]

---

१. युगनायकविवेकानन्द स्वामी गम्भीरतानन्द, भाग-३ पृ०८
२ विवेक ज्योति, वर्ष - ३१, अंक - ३ पृ० १५
३. विवेकानन्द सहित्य, खण्ड - ३ पृ० ३२४ ४. वही, - २ पृ० ३६९
५. जाति, संस्कृति और समाजवाद, पृ० ६१

विवेकानन्द नई विश्व व्यवस्था के तहत होने वाले अर्थ- प्रबन्धों से भी सन्तुष्ट नहीं हैं, '' पर यह मैं अनुभव करता हूँ कि स्वर्णमान गरीबों को अधिक गरीब ओर धनी को और धनी बना रहा है । .... मैं समाजवादी हूँ, इसलिए नहीं कि मैं उसे सभी बातों में पूर्ण मानता हूँ, वरन इसलिए कि 'अन्धे मामा से काना मामा अच्छा है' । ''[१] वस्तुतः विवेकानन्द का आर्थिक दर्शन उनके सामाजिक दर्शन में समहित है और मानव मात्र के कल्याण की उदात्त भावना सभी कुछ अनर्तसमाहित कर लेती है ।

---

१. जाति, संस्कृति और समाजवाद पृ० ८१
(मैसूर के महाराज को लिखित पत्र, २३ जून १८९४)

तृतीय अध्याय

निराला पर
स्वामी विवेकानन्द
का प्रभाव

निराला पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव

विवेकानन्द भारतीय नवजागरण की एक प्रमुख सांस्कृतिक कड़ी थे । उन्होंने भारतीय संस्कृति को नये सिरे से व्याख्यायित किया था । शंकराचार्य से भिन्न विवेकानन्द ने अद्वैत - वेदान्त को व्यावहारिकता के धरातल पर प्रस्थापित किया, निराला अपने को उनके काफी करीब पाते हैं । अपने जीवन की आर्थिक अवनति की स्थिति में उन्हें किसी आश्रय की विशेष आवश्यकता थी तो हिन्दी पुरोधा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का सुझाव स्वामी माधवानन्द ने स्वीकार किया । 'समन्वय' पत्र में अपने प्रथम लेख 'भारत में श्री रामकृष्णावतार ' में जिस मौलिकता और विद्वता का प्रदर्शन किया, उससे उन्हें द्विवेदीजी से साघुवाद भी प्राप्त हुआ । फिर वे महिषादल की नौकरी छोड़कर उदबोधन कार्यालय, बागबाजार कलकत्ता (रामकृष्ण मिशन का) आ गये ।

विवेकानन्द की विचारधारा से प्रथम प्रत्यक्ष परिचय महिषादल में हुआ । पिता के स्थान पर वहाँ वे कार्य करने लगे थे ।'' तभी एक दिन वहाँ रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी प्रेमानन्द आये । रामकृष्ण ने बंगाल के धार्मिक जीवन में अपनी साधाना से जबरदस्त क्रान्ति कर दी थी, उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त ज्ञान से ब्रिटेन और अमेरिका चमत्कृत हो उठे थे । उन्हीं स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई साक्षात रामकृष्ण परमंहस के शिष्य स्वामी प्रेमानन्द महिषादल पधारे थे ।''[१] निराला ने भी उनका अभिनन्दन किया और बहुत सी मालाएँ उन्हें पहना दिया । वहीं पर प्रेमानन्द द्वारा सबसे बड़े भक्त, जो कि एक किसान था, की कहानी सुनाई जाती है, जिससे आडम्बरहीनता व कार्यशीलता सिद्ध होती है । उनकी कथा और उनके संन्यासीपन पर निराला मुग्ध हो जाते है।, आर्थिक अवनति और मानसिक विखराव के कारण इसमें शान्ति दिखाई देती है, '' शान्ति संन्यास में है, बड़ा वह है जो संसार का मोह त्याग देता है । स्वामी रामकृष्ण ने तो ईश्वर को प्रत्यक्ष देखा था, क्या सुर्जकुमार को भी ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं ।''[२]

महिषादल में मित्र श्यामपद मुखर्जी से उनकी वेदान्त चर्चा होती, स्वामी विवेकानन्द की

---

१. निराला की साहित्य साधना - १ पृ० ३४
२. वही, पृ० -३५-३६

पुस्तकों का गहन अध्ययन किया और सुर्जकुमार के लिए ज्ञान का एक नयामाजिक संसार सामने आ गया, वे सोचते थे,'' सुर्जकुमार एन्ट्रेन्स न पास कर पाये तो क्या हुआ ? साधना का द्वार तो उसके लिए भी खुला है।''[१]

विवेकानन्द के विचारों से तो महिषादल में ही निराला परिचित हो गये थे, किन्तु, समन्वय' के लिए मिशन आकर वहाँ का हो जाना उनके लिए क्रान्तिकारी पहलू था ।''स्वामी माधवानन्द तथा अन्य संन्यासियों के साथ वह रहने लगे, उन्हीं के साथ भोजन करते, उन्हीं की तरह सादा जीवन व्यतीत करते, गेरुए वस्त्र न पहनते थे, पर आचार - विचार बहुत कुछ संन्यासियों जैसा था । 'समन्वय' का काम उन्हें पसन्द आया । वह बँगला लेखों का अनुवाद करते, टिप्पणियाँ लिखते, जब - तब 'समन्वय' में अपनी कविताएँ भी प्रकाशित करते ।''[२]

मिशन आकर वहाँ रहना और क्रमशः 'भी रामकृष्ण वचनामृत' का अनुवाद करने से आध्यात्मिक पिपासा का विस्तार हुआ । उसी में दार्शनिक नाम से इनके कई लेख भी प्रकाशित होते थे, कभी -कभी वे साधक के तौर पर भी सामने आते दिखाई पडते थे । ''विश्वजयी स्वामी विवेकानन्द अब नही है, पर उनके सहयोगी विद्यमान हैं । इन्ही में संन्यासी श्रेष्ठ सारदानन्द महाराज है।—— उनके स्पर्श से सारे दैनिक मानसिक क्लेश दूर हो जाते थे ।''[३] संन्यासियों के साथ रहते-रहते सूर्यकान्त को आभास होता है कि वह भी बहुत जल्दी सिद्ध पुरुष होने जा रहे है ।— एक दिन उन्होंने स्वामी सारदानन्द से कहा,'' सो जाने पर मेरे साथ देवता बातचीत करते है।'' हँसकर उन्होंने कहा,'' बाबूराम महाराज (प्रेमानन्द) से भी करते थे ।''[४] उनके ऊपर स्वामी सारदानन्द का विशेष स्नेह था, विशेष कृपापात्र होने का प्रतीक'दो-रसगुल्ला प्रसाद स्वरूप देना इसी बात को व्यक्त करता है ।''

एक दिन उन्होंने सारदानन्द से पूछा,'' यह संसार मुझमें है या मै इस संसार में हूँ।''——— उन्होंने कहा ऐसे नही—— स्वामीजी ने कहा '' हम लोग तो श्रीरामकृष्ण को ही

---

१. निराला की साहित्य साधना, -१ पृ० ३६
२. वही पृ० ५६
३. वही, पृ० ५७
४. वही - पृ०५८-५९

ईश मानते है।'' सूर्यकान्त ने कहा,'' ऐसा तो मैं भी मानता हूँ।'' इसके बाद स्वामी सारदानन्द निकट आये। सूर्यकान्त को लगा कि ढंडी छाँह में डूबते जा रहे हैं। स्वामी ने ऊँगली से गले के नीचे कुछ लिख दिया।'' यह प्रकरण हमें नरेन्द्र और रामकृष्ण के मध्य हुए भावात्मक सम्बन्ध की पुनरावृत्ति प्रतीत होता है।

इस तरह दीक्षा गुरु सारदानन्द जो कि स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई थे के सम्पर्क से निराला गहन तौर पर विवेकानन्द से जुड़े और यह प्रभाव इतना चिरस्थायी रहा कि निराला ने अपने को विवेकानन्द के विचारों का वाहक बना डाला। 'समवन्य' के सम्पादन ने निराला के व्यक्तितत्त को वह आधार दिया, जिससे वे साहित्य जगत के सर्वोच्च बिन्दुओं को स्पर्श करके महाकवि होने का गौरव प्राप्त कर पाये। निराला और मिशन के विवेकानन्द के गुरुभाइयों के मध्य सम्बन्धों और प्रभाव की व्यापकता को आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी समझते है और कहते है कि रामकृष्ण मिशन ने 'परिमल' के कवि को अद्वैतवादी बनाया। परन्तु मेरे अनुसार निराला का साहित्य विवेकानन्द की विचारधारा का साहित्यिक प्रकटीकरण है। मिशन में रहते हुए उन्होंने विवेकानन्द के विचारों का गहन अध्ययन किया। गम्भीरता पूर्वक उनके कई ग्रन्थों का अनुवाद कार्य किया-' 'भारत में विवेकानन्द', ' राजयोग' आदि व अनेको कविताओं के अनुवाद का कार्य भी किया। वे रामकृष्ण को ईश्वर मानते थे,'' परन्तु रामकृष्ण की अपेक्षा वे विवेकानन्द से कहीं ज्यादा अभिभूत थे। वे विवेकानन्द और स्वयं में गहरा साम्य भी स्थापित करते थे। उनका यह कथन बड़ा प्रसिद्ध है कि '' जब मैं बोलता हूँ तो यह मत समझो निराला बोल रहा है। तब समझो मेरे भीतर विवेकानन्द बोल रहे हैं। यह तो तुम जानते हो कि मैने विवेकानन्द का सारा वर्क हजम कर लिया है।''[१]

विवेकानन्द और निराला के सम्बन्धों पर निराला रचनावली की भूमिका में नन्दकिशोर नवल लिखते हैं,''निराला पर विवेकानन्द के भाववाद का गहरा असर था। इसी कारण 'बाहर और भीतर' शीर्षक निबन्ध में वे सामाजिक स्वतन्त्रता को बाहरी स्वतन्त्रता और भौतिक उन्नति का लक्ष्य ध्वंस बतलाते है।''[२]

---

१. महाकवि श्री निराला 'अभिनन्दन ग्रन्थ'- सं०व लेखक श्रीऋषि बरूआ, पृ० ११४
२. निराला रचनावली - ६ पृ०१०

निराला मिशन से प्रत्यक्षतः जुड़ने के बाद कई परिवर्तन के दौर से गुजरे । एक तो उनकी जीवन पद्धति, जिसमें सादगी और संयम का भाव बढ़ा और दूसरे विचार पद्धति जिसमें प्रखरता और ओजस्विता का प्रवाह बढ़ा । विवेकानन्द की विचारधारा को समझने के लिए सारी पृष्ठिभूमि तैयार थी, निराला की साधना और सर्वतोमुखी प्रतिभा ने इस विचारधारा को साहित्य का रूप दे दिया । '' निराला में अद्वैतवादी विचारणा का जन्म वेदान्त के माध्यम से हुआ । रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द ने निराला की उर्वर मनीषा को दिशा- संकेत किये। इन्हीं सूत्रों से निरीला ने नवहिन्दू जागरण की संजीवनी ग्रहण की, जो उनके राष्ट्रीय काव्य का केन्द्र बिन्दु बन गई निराला को विवेकानन्द का प्रज्ञापुत्र कहा जा सकता है ।

'' निराला स्वयं अपने में और विवेकानन्द में गहरी समता देखते है ।''[1] मैं भी विवेकानन्द और निराला के मध्य कई समानता देखता हूँ । बचपन में ही निराला का जीवन विवेकानन्द के प्रारम्भिक जीवन की तरह भौतिक व सामाजिक द्वन्द्वों में उलझा रहा । असमय पिता के काल-कवलित हो जाने के बाद परिवारिक उत्तरदायित्व के साथ-साथ वैचारिक बदलाव की दिशा भी प्रारम्भ हो गई । विवेकानन्द के जीवन में गुरु रामकृष्ण देव ने क्रान्ति उत्पन्न किया, जिससे विवेकानन्द ने सांस्कृतिक एवं सामाजिक (धार्मिक भी) क्षेत्र में नेतृत्व करने का पुनीत कार्य किया तो निराला के जीवन को पत्नी मनोहरा देवी ने आमूल परिवर्तित कर साहित्यिक क्षेत्र में नेतृत्व करने के लिए प्रेरित किया । निराला और विवेकानन्द शारीरिक क्षेत्र में भी समानता रखते है, दोनों ही स्वस्थ, पुष्ट एवं बलशाली देह के स्वामी थे । दोनों खेल के क्षेत्र में भी बढ़-चढ़ कर भाग लिया करते थे ।

निराला और विवेकानन्द दोनों का अध्ययन गहरा और ज्ञान विस्तृत था ।, स्वाध्याय के बल पर भारतीय दर्शन और ज्ञान के साथ- साथ विश्व साहित्य का भी दोनों ने अनुशीलन किया। विवेकानन्द ने अपने ओजस्वी भाषणों से धार्मिक - बौद्धिक संसार में खलबली मचा दिया तो निराला ने क्रान्तिकारी साहित्य रचकर अपनी लेखनी से हिन्दी साहित्य संसार में क्रान्ति कर दी। विवेकानन्द और निराला में अन्याय के प्रतिकर करने की भावना समान रूप से पायी जाती है ।

---

१. महाकवि श्री निराला 'अभिनन्दन ग्रन्थ'- सं०व लेखक श्रीऋषि बरुआ, पृ० ११४

विवेकानन्द ने सामाजिक, धार्मिक और मानसिक व बौद्धिक अन्याय के खिलाफ जमकर हुंकार किया और अन्याय के हर पक्ष का मुखर विरोध किया तो निराला ने समाज और साहित्य के क्षेत्र में व्याप्त अन्याय के विरुद्ध विगुल बजाया। दोनों ने अपनी - अपनी महानता को सिद्ध किया।

निराला भी विवेकानन्द के समान मानव मूल्यों के पक्षधर हैं। मानव से सम्बन्धित क्रिया-कलापों में किसी भी तरह की प्रताड़ना या यों कहें, बिडम्बना दोनों को स्वीकार्य नहीं है। दर्शन के क्षेत्र में भी दोनों के चिन्तन में गहरी समानता दिखाई देती है। विवेकानन्द का दर्शन, जिसे उन्होने गुरु रामकृष्ण देव से प्राप्त किया था, जब निराला के संसर्ग में आता है तो वह परिवर्तित होकर 'निराला- दर्शन बन जाता है। निराला भी विवेकानन्द के वेदान्त दर्शन को भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड बतलाते है। दोनों का ही वेदान्त जीवन से जूझने वाला वेदान्त है और लोगसंग्रह व वेदान्त एक दूसरे के पूरक बन गये हैं।

शक्ति व पुरुषार्थ को आदर्श मानकर उसके सही प्रयोग को विवेकानन्द के साथ ही निराला ने भी महत्व दिया है। शक्ति के होने पर ही स्वाधीनता एवं मुक्ति की सफलता मिल सकती है या बनी रह सकती है। भारतीय गुलामी के लिए उन दोनों ने ही पुरुषार्थ एवं शक्ति की कमी को उत्तरदायी ठहराया है। शक्तिहीनता ही व्यक्ति में कायरता उत्तपन्न कर उसे समाज के लिए अहितकर बना देती है।

विवेकानन्द और निराला दोनों राष्ट्र प्रेम और अतीत गौरव के प्रति विशेष प्रेम महसूस करते है। इतिहास के माध्यम से ही दोनों राष्ट्रीय चेतना जगाना चाहते है। एक इसके लिए प्राचीन ऐतिहासिकता को प्रेरक मानता है तो दूसरे का प्राचीन के साथ ही मध्यकालीन इतिहास भी प्रेरक बनता है। अतीत गाथा के द्वारा व्यक्ति के लुप्त आमविश्वास को जगाने का कार्य दोनों ही का ध्येय था। राष्ट्र प्रेम जब मानवतावाद के विस्तृत भाव से जुड़ता है तो विवेकानन्द और निराला इस संसार के कल्याण की सर्वोच्च भावना से जीवमात्र के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति करने लगते है।

अतएव हम यह कह सकते हैं कि निराला एवं विवेकानन्द जीवन एवं विचार दोनों

में ही समरूप दिखाई पड़ते हैं,''विद्रोही, तेजस्वी स्वामी विवेकानन्द के चरित्र में निराला को अपने व्यक्तित्व का समर्थन प्राप्त हुआ। तेजस्विता, दूसरों को दुःखी देखकर विह्वल होना तथा विपत्ति में धैर्य न छोड़ते हुए भी निर्विकार चित्त से कर्त्तव्य करते जाने की साधना के तत्व स्वामी विवेकानन्द के चरित्र से मिला।''[१]

निराला के जीवन में विवेकानन्द का अप्रतिम स्थान है। उन्होंने अपने कई लेखों में विवेकानन्द के विचारों को श्रृंखलाबद्ध रूप में प्रस्तुत किया।१९४६ में रचित उपन्यास 'चोटी की पकड़', को उन्होंने श्री मत स्वामी विवेकानन्द जी महाराज की पुण्य स्मृति में समर्पित किया है। ' 'स्वामी सारदानन्द महाराज और मैं' नामक कहानी में विवेकानन्द के गुरुभाई के साथ प्रत्यक्षअनुभव का वर्णन है। 'प्रबन्ध पद्म ' का समर्पण विवेकानन्द के गुरुभाई 'भगवान श्री रामकृष्ण देव के पद को प्राप्त मेरे मनोराज्य के सत्य, शिव और सुन्दर आचार्य श्री मत स्वामी सारदानन्द जी महाराज की स्नेह दृष्टि को सभक्ति'' किया है। उन्होंने गुरु रामकृष्ण से सम्बद्ध ५' निम्बन्ध लिखे -१ '' भारत में श्री रामकृष्णावतार,-२ जातीय जीवन और श्री रामकृष्ण , ३ परमहंस श्रीरामकृष्ण देव, ४ युगावतार भगवान श्री रामकृष्ण,५ युगावतार भगवान श्री रामकृष्ण। इसी के साथ ही ' वेदान्त केशरी स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त-केसरी स्वामी विवेकानन्द और भारत' दो निबन्ध विवेकानन्द के ऊपर लिखा है।

विवेकानन्द की विचारधारा बहुत व्यापक थी, इसी तरह निराला का साहित्य भी बहुत व्यापक है, दोनों का उद्देश्य भी उसी तरह से व्यापक है। निराला के अचेतन मन पर विवेकानन्द की गहरी छाप है। ''निराला के मानस पर जिस हद तक स्वामी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द और उनके मिशन के सारदानन्द एक बौद्धिक मूल्य के रूप में स्थित थे, उतना चिन्तन का कोई अन्य पक्ष नहीं। निराला को स्वामी रामकृष्ण की संवेदनशीलता , व्यापक अनुभूति और स्वामी विवेकानन्द का आत्म विश्वास मिला है। ''[२]

कहीं- कहीं हम देखते है कि निराला कल्पनालोक में विवेकानन्द के

१- निराला: पुनर्मूल्यांकन-डॉ० धनंजय वर्मा पृ० ६९

२- निराला: अन्तस्तात्विक अध्ययन - डॉ० रामप्रवेश सिंह , भूमिका से

सहचर बन गये हैं, जैसा कि'' कैलाश में शरत्'' कविता में निराला घोड़े पर सवार होते है।, जिनके साथ संन्यासियों में श्रेष्ठ विवेकानन्द और गुरुमाता, शिष्य- शिष्याएँ और श्रेष्ठ राजपुरूष के साथ भारत के कई नागरिक भी हैं और यह सम्मिलित यात्रा अफगानिस्तान पार करके दुर्गम रास्ते की ओर बढ़ जाती है । निराला युवक समाज पर विवेकानन्द के प्रभाव को भी कई जगह रेखांकित करते हैं युवक समाज उनके लिखे ग्रन्थों का बड़े चाव से अध्ययन करता है और उनके प्रभाव से अपने चरित्र का शोधन भी करना चाहता है ।

वे इस कलियुग में विवेकानन्द के आगमन को मानव मात्र के उद्धार से जोड़ते हैं। विश्व प्रसिद्ध विराट चेता ज्ञान के अथाह सागर विवेकानन्द जनता के लिए काफी कुछ कह गये हैं, अब उन्हीं के अनुसार हम लोगों को काम करना चाहिए । भारत की विविध आध्यात्मिक धाराओं के रुप में वे श्री विवेकानन्द, ब्रह्मानन्द, प्रेमानन्द और सारदानन्द का उल्लेख करते हैं; जिन्होंने ज्ञान, योग, कर्म, भक्ति और धर्म के माध्यम से लोक मंगल का कार्य किया। बहुत समय बाद विवेकानन्द अमेरिका की धर्म महासभा में भारत को मुक्त ज्ञान छन्द बनाया। भारतीयता के जीवन से बँधी भारत की नवीन शक्ति को जगाने का कार्य उन्होंने किया। विवेकानन्द के सन्देशों में कविताओं का भी विशेष स्थान था, जिसका निराला ने अनुवाद किया और उनसे प्रेरणा ग्रहण किया ।

'दर्शन के क्रियात्मक पक्ष अर्थात मानवीय सेवा, कर्तव्य- परायणता की जानकारी निराला को स्वामी प्रेमानन्द से ही मिली । खेत में हल चलाने वाला किसान भगवान का सर्वाधिक प्रिय भक्त है, क्योंकि वह कर्मरत है, आडम्बरी नहीं, यह कहानी निराला को प्रेमानन्द के माध्यम से ही मालूम हुई थी।''[१] साधक की अवस्था का प्रत्यक्ष स्वरूप उन्होंने सारदानन्द की

---

१. निराला के काव्य में मानव मूल्य और दशर्न - देवन्द्र नाथ त्रिवेदी पृ० २३६

ध्यानस्थ स्थिति में देखा था, उन्हीं से आध्यात्म की सूक्ष्मता का अनुभव हुआ और उनके साहित्य की तपस्या में एक और तपस्या जुड़ती गई, जिससे निराला का साहित्य और अधिक मूल्यवान, प्राणवान और ओजस्वी हो गया; जिसके फलस्वरूप अपने भीतर के केन्द्र में प्रतिष्ठित होकर निराला शाश्वत को छूते हैं और उनकी व्यक्तिमत्ता चुतर्दिक प्रसारित होकर निर्वैयक्तिक तथा सार्व भौमिक बन जाती है।

विवेकानन्द भावधारा के प्रतिनिधि सन्त" श्री सारदानन्द जी महाराज के आशीर्वाद को उन्होंने अपने काव्य और साहित्य में इस प्रकार पल्लवित किया है कि वह नव्यवेदान्त और श्री रामकृष्ण परमहंस की आध्यात्मिक ऊर्जा के साथ ही उतनी ही सघनता और तेजस्विता से श्री स्वामी विवेकानन्द की नवीन सांस्कृतिक विचारधारा के भी प्रतिनिधि कवि बन गये हैं।——— यदि वेदान्त ही सिद्ध धर्म है तो निराला उसके सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।"[१]

विवेकानन्द की भावधारा के सानिध्य और उत्प्रेरणा के फलस्वरूप निराला की साधना,साहित्य तक ही सीमित न रहकर मानवता के व्यापक धरातल तक विस्तृत हो जाती है। इसके द्वारा न केवल साहित्य प्राणवान बनता है, बल्कि संस्कृति का विराट स्वरूप भी जीवंत हो उठता है। भारतीय नवजागरण को विवेकानन्द ने विश्व- प्रसिद्ध किया और बौद्धिक आयाम दिया तो निराला ने उनके सन्देशों को साहित्य में प्रतिष्ठित कर हिन्दी साहित्य जगत के सुधी पाठकों के हृदय में स्थापित कर जन-जन के लिए ग्राह्य बनाया।

'समन्वय' का सम्पादन कार्य बन्द होने जाने के बाद्र भी निराला का मिशन से सम्बन्ध नहीं टूटा। वे अक्सर वहाँ जाते और उपलब्ध पत्र-पत्रिकाएँ देखते और पुस्तकालय को अपने यहाँ आई पुस्तकें व पत्रिकाएँ भी देते। साथ ही साथ ' संन्यासियों से बँगला में मिशन की कार्यवाही के बारे में बातें करते। "[२]

उनके ऊपर रामकृष्ण मिशन का इतना अधिक प्रभाव था कि वे रामविलास शर्मा से कहते," मैं स्वामी सारदानन्द का यन्त्र हूँ, ब्रह्म में लीन होकर वही मुझसे साहित्य लिखाते हैं,

---

१. निराला की साहित्य साधना - १ पृ० २५२
२- वही पृ० २५१

अन्य सभी साहित्यकार इस अनुभूति से वंचित है।''[१] इसी अनुभूति के बल पर निराला अपने आपको अन्य कवियों से अलग और श्रेष्ठ मानते थे।

निराला के अचेतन मन पर विवेकानन्द छाये थे, इसलिए कभी- कभी के विवेकानन्द ही बन जाते थे,'' इन दिनों वह विवेकानन्द ' मूड' में थे। सर पर रेशमी साफा बाँधकर वह आईने मे छवि देखते और विवेकानन्द के चित्र से मिलान करते।''[२] भारतीय स्वतन्त्रता के समय उनकी मानसिक स्थिति बदल गई और वे बहुत ही विक्ष्क्षुब्ध और उद्दण्ड हो गये, लोगों को मारने-पीटने व झगड़ने लगे, फलतः चौधरी राजेन्द्र शंकर ने चार दिन तक कमरे में बन्धक बना कर रखा, जहाँ से '' एक दिन मौका पाकर निराला निकल भागे। जेब में पैसा न था, वह उन्नाव से कानपुर पैदल गये और वहाँ रामकृष्ण मिशन में आश्रय ग्रहण किया। वहाँ से पूर्ण स्वस्थ होकर वापस युग मन्दिर आये।''[३]

आध्यात्मिक साधना पर पूर्णतः खरा न उतरने का दुःख निराला के जीवन में सदा बना रहा। अचेतन मन पर यह छाप बहुत गहरी थी और कदाचित बीच-बीच में यह भाव प्रबल हो उठता था। विवेकानन्द का प्रतिरूप बनने की आकांक्षा को हम मनौवैज्ञानिक रूप से देखें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है। संन्यास न ले पाने का भाव भी प्रबल रहा और भावावेश में भतीजे केशव लाल को पत्र में लिखते है, '' हमने संन्यास ले लिया है, क्वार सुदी एकादशी को। तुम लोगों की कुशल चाहते हैं। इसी से अपने बँगले में संन्यास लिया है। ''[४] उनके अचेतन मन पर विवेकानन्द के छाने की बात एक और घटना से प्रमाणित हो जाती है-'' (गंगा प्रसाद) पाण्डेय के साथ वह संसद गये। गंगा जल पिया और सो गये। रात में इतने जोर से हँसे कि पाण्डेय जी जग गये और बोले, निराला जी अब तो आपसे भय लगता है। मैं नीचे जा रहा हूँ । निराला ने बहुत ही सहमें शब्दों में जबाब दिया- नहीं- नहीं सोओ, अब मैं कुछ न बोलूँगा। स्वामी विवेकानन्द ने एक ऐसी बात कह दी कि मैं हँस पड़ा।''[५]

---

१. निराला की साहित्य साधना -१ पृष्ठ २५१
२. वही पृ० ४२६
३. वही, पृ० ४२८
४. वही पृ० ४३४
५-. वही पृ० ४३२

साहित्य सृजन के उत्तरार्ध काल में निराला जितना अधिक लौकिक और भौतिक विषयों की ओर झुके, उनका अचेतन मन उतना ही अलौकिक और आध्यात्मिक होता गया। कालान्तर में मानसिक पर्यावरण में असन्तुलन को मैं इसी सन्दर्भ में देखना चाहूँगा। जीवन की सान्ध्य बेला में निराला का काव्य आत्मनिवेदन और आराधना की ओर अधिक केन्द्रित हो गया था। अपने आपको उन्होंने उसी परम सत्ता के आगे समर्पित कर दिया, जिसे विवेकानन्द और निराला दोनों ही ब्रह्म, ईश्वर, शिव,शक्ति , दुर्गा काली आदि विविध नामों से पुकारा करते थे। अन्त में 'ब्रह्म' की तरह निराला की कविता भी शून्य ' शब्द मात्र' रह जाती है, जहाँ कोई विशेषण, कोई संज्ञा नही रह जाती -

'ताक कमसिनवारि'
ताक कम सिनवारि
ताक कमसिन वारि
सिनवारि सिनवारि।'[१]

सिर्फ शब्द और शब्दों की ध्वनि बची रह जाती है, जो हमें अन्तरिक्ष का आभास दिलाकर' निराला- विवेक'का सृजन करती है।

निराला के जीवन पद्धति पर विवेकानन्द के अप्रतिम प्रभाव के सन्दर्भ को हम श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के ' हमारे साहित्य- निर्माता' नामक ग्रन्थ में व्यक्त इस विचार से समझ सकते हैं कि '' श्री निराली जी हिन्दी में स्वामी विवेकानन्द के साहित्यिक प्रतिनिधि है। वे एक वास्तविक दार्शनिक व्यक्ति है।—— स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त के दो स्वरूप हैं- शक्ति, सेवा और करुणा। उनका हृदय कवि है, मस्तिष्क दार्शनिक। जहाँ वे तत्वदर्शी बन जाते हैं, वहाँ उनके उर्वर मस्तिक का ही परिचय मिलता है, वहीं वे दुर्बोध्य भी हो जाते हैं।''[२] तत्कालीन समय में अपने मित्रों और परिचितों से मिलने पर वे दर्शन के वेदान्त पक्ष पर ही अधिक चर्चा करते थे। विवेकानन्द की विचारधारा के केन्द्र स्थल वेलूर के प्रति उनमें विशेष आकर्षण दिखाई पड़ता है। परमानन्द शर्मा का एक संस्मरण प्रस्तुत है—— ''जब बेलूर का मन्दिर दूर से दिखायी पड़ने लगा तो उन्होने स्वामी विवेकानन्द का उपर्युक्त इतिहास बताया। ———''बेलूर में कई छोटे-छोटे मन्दिर बने हुये है।

---

१. सान्ध्यकाकली, निराला रचनावली -२ पृ० ४८९
२. महाकवि श्री निराला अभिनन्दन ग्रन्थ सं०व०लेखक बरुआ , पृ० २६

सर्वप्रथम उन्होंने उन मन्दिरों में जाकर दर्शन किया और मुझे भी दर्शन कराया ।—— यह सब(यहाँ का धन) दरिद्र नारायणों में जाता हैं यहाँ कोई साधू बी०ए०, एम०ए० से कम नहीं । वे सब गैरिक वस्त्र पहने हुये दरिद्रों की सेवा में बराबर निरत रहते हैं। यहाँ सेवा व्रत बडा अनोखा है।''[१] इसी आनेखे सेवा व्रत से निराला बीच-बीच में प्रत्यक्षतः जुड़ भी जाते थे, जैसा कि ' समन्वय' के सम्पादक माधवानन्द को लिखे इस पत्र के इस विचारों में देखा जा सकता है कि मिशन के अधीन दरिद्र नारायणों की सेवा में एकाध बार खुद को प्रस्तुत कर चुका हूँ । 'समन्वय' के बन्द हो जाने के बाद भी रामकृष्ण मिशन से उनका सम्बन्ध बना रहा, वहाँ के संन्यासी उनसे परिचित रहते थे और बीच-बीच में निराला वहाँ जाया भी करते थे। इसी तरह का एक संस्मरण इस तथ्य को और अधिक पुष्ट कर देता है। '' निराला जी ने एक दिन मुझसे कहा,' चलो रामकृष्ण मिशन चले।— वहाँ पहुँचने पर निरालाजी ने आश्रम के सभी स्वामियों को भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। संन्यासी ने कहा, ''बेश, बेश, सूर्ज्योकान्तो, आर की खबर आछें! (सूर्यकान्त, बैठ, बैठ और क्या समाचार है?)''[२] कालान्तर में यही प्रभाव इतना सघन एवं व्यापक हो गया कि उनके अचेतन मन पर स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण मिशन आच्छादित हो गया । मानसिक अशान्ति के लिए मिशन का आश्रय और विवेकानन्द की'राजयोग' पुस्तक ही उनका एकमात्र उपचार होती थी। बौद्धिक उत्प्रेरणा का उत्स विवेकानन्द तो थे ही शारीरिक रूप से भी निराला उन्हीं के सम पर खुद को देखना पसन्द करते थे । यह बात तत्कालीन विद्वानों में सर्वज्ञात भी थी। बहुधा वे विवेकानन्द के गेरुआ वस्त्र एवं साफा पहने हुये ओजस्वी मुद्रा का अनुसरण करते थे । शीशे मे स्वयं को देखकर निराला इस तरह का विचार व्यक्त करते है,'' विवेकानन्द भी पचास वर्ष की उम्र ऐसे ही लगते की नहीं ?'' हम लोगों ने निराला के भीतर बैठे हुये शाश्वत शिशु को दुलराते हुये कहा- इसमें क्या शक है, आज तो आप विवेकानन्द से बढ़कर जच रहे है। ' निराला की आँखों में अविश्वास नहीं आया ।''[३] इसी अतिरंजित प्रभाव को चर्चा रामविलास शर्मा ने इस तरह किया है, '' जनवरी ४६ में जब उनकी स्वर्ण जयन्ती मनाई गई, तब वह संन्यास वाले भाव में थे। विवेकानन्द की तरह उन्होंने साफा बाधा था। उन्नाव में चौधरी राजेन्द्र शंकर से झगड़ा होने पर वह-कानपुर में सीधे रामकृष्ण मिशन पहुँचे ।

---

१ महाकवि श्री निराला अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ८४
२- वही
३- महाप्राण निराला - गंगा प्रसाद पाण्डेय पृ० २७७-७८

सन् ४९ में जब वह साहित्यकार संसद में थे, तब उन्होंने गेरू से कपड़े रँगकर संन्यासी वेश धारण किया। ''[१]

निराला की कई कविताओं में विवेकानन्द का प्रत्यक्ष जिक्र हुआ है। ' सेवा प्रारम्भ' ,'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज',' कैलाश में शरत्' और उनके गुरु 'श्रीरामकृष्ण परमहंस के प्रति' आदि कविताओं में देखा जा सकता है। इन कविताओं में विवेकानन्द का नाम, उनके प्रभाव सहित आया है। ' सेवा - प्रारम्भ कविता में उनसे सम्बन्धित सभी विशिष्ट लोगों को मिलाकर एक भावधारा का सृजन किया गया है-

''श्रीविवेक',' ब्रह्म',' शारदा,'
ज्ञान- योग- भक्ति- कर्म-धर्म- नर्मदा-
बही विविध आध्यात्मिक धाराएँ
बहुत काल बाद
अमेरिका - धर्ममहासभा का निनाद
विश्व ने सुना- काँपी संसृति की थी दरी,
गरजा भारत का वेदान्त केशरी
श्रीमत्स्वामी विवेकानन्द
भारत के मुक्त- ज्ञान छन्द
बँधे भारती के जीवन से
गान गहन एक ज्यों गगन से
आए भारत, नूतन शक्ति ले जगी।''[२]

इस कविता में विवेकानन्द को विश्व विजयी नेता के रूप में चित्रित किया, जिन्होंने अमेरिका की धर्म महासभा में अपने उद्बोधन से सारी धरती को कँपा डाला। भारत के वेदान्त केशरी विवेकानन्द ने भारत के नूतन एवं मौलिक शक्ति का फिर से अवबोध कराया। इस कविता के चरित्र नायक स्वामी अखण्डानन्दजी है। कहा जाता है कि '' उन्होंने ही स्वामी विवेकानन्द को पीड़ित जन-नारायणों की सेवा के लिये प्रवृत्त किया था।''[३]

---

१ निराला की साहित्य साधना -१ पृ० ५०८

२- निराला रचनावली -१ पृ० ३३४-३५

३- वही पृ० ३३३

'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' कविता में विवेकानन्द के कई रूपों का वर्णन किया है। विशेषतः चरित्र शोधन के लिए युवक वर्ग का उनके प्रति आकर्षक का वर्णन है-

'युवक समाज बड़े चाव से पढ़ता है
स्वामी विवेकानन्दजी के लिखे हुये ग्रन्थ
शोधन भी चाहता है करना चरित्र का
\+ + + + +

ऐसे कलिकाल में
रामकृष्ण आये हैं, स्वामी श्री विवेकानन्द
ऐसे ही जनों के परम बन्धु हो गये।
\+ + + + +

एक ब्रह्मचारी ने
स्वामीश्री विवेकानन्दजी की वीर वाणी से
'सखा के प्रति' विशिष्ट पद्य की आवृत्ति की
\+ + + + +

बोलेंगे हममें जो श्रेष्ठ श्रुतिधर थे विवेकानन्द
जानता है विश्व उन्हें
जनता के अर्थ वे
सब कुछ गये है,
सिर्फ काम करना है,''[१]

स्वामी प्रेमानन्दजी के साथ निराला का व्यक्तिगत सम्बन्ध था और कहा जाता है कि 'भक्त और भगवान' की कथा उनसे ही निराला को सुनने को मिली थी।

निराला पर अप्रतिम प्रभाव के परिप्रेक्ष्य में उनकी कैलाश में शरत्! कविता उल्लेखनीय है। इसमें निराला एक दुर्गम यात्रा पर निकलते हैं, जिनके सहयात्री विवेकानन्द भी हैं-

"चले हम घोड़े पर।
सन्यासिश्रेष्ठ श्री विवेकानन्दजी भी है;
श्रीमती श्रीमाता जी और शिष्य- शिष्या वर्ग।
साथ श्रेष्ठ राजपुरुष, नागरिक भारत के।''[२]

---

1 - निराला रचनावली -२ पृ० ९१-९७
२- वही पृ० २००

इसके अतिरिक्त 'आवाहन' कविता पर भी विवेकानन्द का प्रकारान्तर प्रभाव देखा जा सकता हैं इसमें शक्ति का एक बार फिर से असुरों का संहार करने के लिए भावाहन किया।

"एक बार बस और नाच तू श्यामा !
सामान सभी तैयार,
कितने ही हैं असुर, चाहिए कितने तुझको हार?"[१]

इसको हम अगर स्वामी विवेकानन्द की कविता 'नाचुक ताहाते श्यामा' से जोड़कर देखें तो कथ्य और शिल्य दोनों ही दृष्टियों से बहुत साम्य दृष्टिगोचर होता है, जैसा कि 'हिन्दी साहित्य के वृहद इतिहास' में लिखा गया है" आवाहन शीर्षक कविता निश्चय ही 'राम की शक्तिपूजा' के शक्ति दर्शन की पूर्व संकेतक कविता है और इस पर स्वामी विवेकानन्द की 'नाचुक ताहाते श्यामा 'और श्रीरामकृष्ण परमहंस द्वारा निर्दिष्ट 'मातृभाव से साधना' का प्रकारान्तर प्रभाव है।"[२] इसी तरह 'राम की शक्तिपूजा' पर भी प्रभाव है किन्तु अधिक सूक्ष्म और भाव रूप में।

निराला विवेकानन्द से बहुत शिद्धत के साथ प्रभावित थे; इस बात का प्रमाण उनके द्वारा विवेकानन्द से सम्बद्ध अनुवाद कार्य से मिल जाता है। 'समन्वय' पत्रिका से जुड़ने के बाद लगातार अनुवाद कार्य में संलग्न रहे। उनकी विचारधारा से सम्बन्धित भाषाणों और पुस्तकों का क्रमशः अनुवाद किया। 'समन्वय' पत्रिका में ही 'एक दार्शनिक ' नाम से कुछ लेख निराला के प्रकाशित हुये थे, उन पर भी विवेकानन्द की विचारधारा का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। उनकी कविताओं का अनुवाद कार्य करने में निराला ने विशेष उत्साह दिखाया।

विवेकानन्द की कविता' गाइ गीत शुनाते तोमाय' का ' गाता हूँ गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को' नाम से अनुवाद किया है। इस कविता में जीवन, मृत्यु और सत्य आदि दर्शनों की विवेचना है।' नाचुक ताहाते श्यामा' को 'नाचे उस पर श्यामा नाम से रूपान्तरित किया है।

१- निराला रचनावली -१ पृ० ७३
२- हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास -१० पृ० १८२-८३

इस कविता में मृत्यु और प्रलय के माध्यम से शक्ति को एक बार फिर से अन्याय और अत्याचार समाप्त करने का आवाहन है। निराला ने विवेकानन्द की कविता' सखार प्रति' का' सखा के प्रति' नाम से अनुवाद किया है, जिसमें भी दार्शनिक विवेचना है । विवेकानन्द की ' सागर-वक्षे' रचना को निराला ने 'सागर के वक्ष पर' शीर्षक से अनूदित किया है, जिसमे महीयान भावों के आकाशीय उड़ान का वर्णन है। जब कि 'प्रलय वा गभीर समाधि' का अनुवाद' समधि' नाम से किया, जिसमे अन्तर्तम के विनाश के बाद व्यक्ति की परम भावस्थ स्थित का वर्णन हैं । इन सभी कविताओं को निराला ने बॅंगला भाषा से रूपान्तरित किया है।

उनकी दो अंग्रेजी कविताओं का भी निराला ने अनुवाद किया है । विवेकानन्द की एक अंग्रेजी कविता का ' काली माता' नाम से अनुवाद किया है, जिसमें मृत्यु और विनाश की प्रेरणा लिए माता की उपासना है । उनकी 'चौथी जुलाई के प्रति' नाम से एक और अंग्रेजी कविता का अनुवाद निराला ने किया है, जिसमें बन्धनों से मुक्ति और स्वाधीनता से युक्त सम्पूर्ण विश्व की कल्पना की गई है। एक और कविता' शिव-संगीत-२ ' के नाम से अनूदित किया है ।

निराला के अनुवाद कार्य के सम्बन्ध में निराला रचनावली के सम्पादक नन्द किशोर नवल लिखते है।,'' निराला ने बांग्ला गन्थ ' श्री रामकृष्ण कथामृत का तो तीन खण्डों में श्रीरामकृष्ण वचनामृत' के नाम से हिन्दी में अनुवाद किया है, उन्होंने विवेकानन्द की पुस्तक' परिव्राजक' का भी, जो कि उनकी भ्रमण कहानी है, हिन्दी में अुनवाद किया है । —— विवेकानन्द की पुस्तक' राजयोग' का आधे से थोड़ा कम भाग उन्ही द्वारा अनूदित है। उनकी ' इन्डियन लेक्चर्स' नामक पूरी पुस्तक का उन्होने ' भारत में विवेकानन्द'नाम से अनुवाद किया है। ' वचनामृत' और परिव्राजक के साथ ये पुस्तकें भी रामकृष्ण मठ, धन्तौली , नागपुर से प्रकाशित हैं।''[१] इस तरह हम देखते है कि निराला कई स्तरों पर विवेकानन्द से जुड़े हुये है। इतने व्यापक सम्पर्क को उनके जीवन से सम्पृक्त किये बिना फलीभूत नही समझा जा सकता । वैयक्तिक प्रभाव के न होते हुये इतने बड़े सृजन का निर्माण हो पाना असम्भव था । विवेकानन्द की कुछ प्रार्थनओं

१- ज्ञप्ति, निराला रचनावली -१ पृ० १२

का अनुवाद भी इसी की एक कड़ी कहा जा सकता है। विवेकानन्द की ' शिवस्तोत्रम', ' अम्बास्तोत्रम्',' श्रीरामकृष्ण स्तोत्रम्' और ' श्री रामकृष्ण आरत्रिकम्', का भाव प्रवण अनुवाद निराला के ऊपर विवेकानन्द के व्यापक प्रभाव को व्यंजित करता है ।

निराला के कई निबन्ध प्रत्यक्ष तौर पर विवेकानन्द और उनके गुरु श्री रामकृष्ण से सम्बद्ध है । इनसे सहमत होते हुये निराला ने धर्म और दर्शन के तत्वों की विवेचना की है।' श्रीराम कृष्ण पर उनका पहला निबन्ध ' भारत में श्रीरामकृष्णवतार ' है। जिसमें भारत के प्राकृतिक धर्म और शान्त वातावरण के आत्याचार से परिक्षुब्ध होने की परिस्थिति में श्रीरामकृष्ण देव के अवतरित होने का वर्णन है। ' इस बार भी भारत शान्ति स्थापना का केन्द्र बना । संसार में आज जो आध्यात्मिक प्रवाह बह रहा है। उसकी उत्पत्ति भगवान श्री रामकृष्ण महान् आध्यात्म तत्व स्वरूप से हुई।——— विश्व विजयी वेदान्त केशरी स्वामी विवेकानन्द की वीरवाणी को मंत्रगुग्धवत-संसार सुन रहा है—— आज भारत में एकता- लता पर जो फूल खिल रहा है उसके निपुण माली हैं- भगवान श्रीरामकृष्ण।''[१]

विवेकानन्दके गुरु श्रीरामकृष्ण पर निराला का दूसरा निबन्ध ' जातीय जीवन और श्रीरामकृष्ण है । इसमें उन्होंने भारतीय जातीय परम्परा और उसके नवोत्थानकर्त्ता के रूप में श्रीरामकृष्ण के योगदान की चर्चा की है। श्रीरामकृष्ण के निष्कलक चरित्र पर आज सारा संसार आश्चर्यचकित हो रहा है। उनके जीवन का यदि हम विश्लेषण करते हैं तो हमे मालूम हो जाता है कि उन्होने साधना अपनी मुक्ति के लिए नहीं ,दूसरों को उपदेश देने के लिए की थी।''[२] आगे वे श्रीरामकृष्ण के सभी धर्मो और पद्धतियों के माध्यम से चरम तक पहँचने का वर्णन करते है और उसके शिखर के रूप में विवेकानन्द की गर्जना को मानते है । ' शिकागों की धर्म सभा का उद्योग, बौद्धिक सभ्यता के नशें में चूर पाश्चात्य जातियों में धर्म लाभ की लालसा, महासभा का अधिवेशन—हिन्दू धर्म की विजय, हिन्दू संन्यासी की प्रतिष्ठा,—अमेरिका मे वेदान्त का प्रभाव और प्रचार, दूसरी स्वाधीन जाति से भारत का गहरा सम्बन्ध , धर्म, शिक्षा, दान-आदि बातों पर ध्यान देने से विदित होता है कि श्रीरामकृष्ण की आध्यात्मक शक्ति ने भारत को प्रबुद्ध करने के

१- भारत में श्री रामकृष्णावतार , निराला रचनावली-६ पृ० ३३-३४
२- जातीय जीवन श्री रामकृष्ण- वही पृ०४४

लिए दूसरी स्वाधीन जाति से भी उसका सम्बन्ध जोड़ा और संसार भर के ज्ञान पिपसुओं को शान्ति दी, संसार की विचार परम्पराओं में घोर हलचल मचा दी।''[१]

विवेकानन्द के उत्स उनके गुरु पर निराला का तीसरा निबन्ध है- ' परमहंस श्रीरामकृष्ण देव' इसमें निराला ने उनकी साधना को व्यावहारिकता के धरातल पर परखा है। '' व्यावहारिक साधना में उन्होंने दिखलाया कि वे हिन्दू धर्म के रामकृष्ण, शक्ति आदि देवी-देवताओं के भी सिद्ध उपासक थे और मूर्ति-उपासना- वर्जित वेदान्त के भी सिद्ध महापुरुष थे, वे इस्लाम धर्म के भी अनुयायी थे और क्रिस्तान धर्म की साधना भी उन्होंने की थी। क्यों ?क्यों ऐसा किया? सिद्ध हो गये तो इतनी उपासनाएँ क्यों ? उत्तर स्पष्ट है कि संसार को ऐसे ही एक आदर्श महापुरुष की आवश्यकता थी, जो संसार को धर्म के एक ही बन्धन से बाँधता । श्रीरामकृष्ण ने बतलाया, धर्म के पथ अनेक हैं किन्तु लक्ष्य एक है। अतएव किसी को यह कहने का अधिकार नहीं कि वह अपने धर्म को श्रेष्ठ और दूसरे धर्म को निकृष्ट कहे। आपके सुयोग्य शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने संसार की कितनी बड़ी आवश्यकता पूरी की, यह विज्ञ पाठकों को विदित है।''[२]

निराला विवेकानन्द को रामकृष्ण देव के विचार- वाहक के रूप में स्वीकार करते हुये रामकृष्ण पर लिखे चौथे निबन्ध 'युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव' में लिखते हैं, ''श्रीमत् स्वामी विवेकानन्द के द्वारा संसार को श्रीरामकृष्ण ने अपना सन्देश दिया और यह विद्याशक्ति का कितना बड़ा इन्द्रजाल एकाएक संसार पर से गुजर गया कि मनन करने पर अपार आनन्द की प्राप्ति होती हैं विद्या वेदान्तमूर्ति श्रीमत् स्वामीजी महाराज की संसार पर विजय भारत की विजय है।''[३] भारत में स्वतंत्रता के लिए किये जा रहे आन्दोलन और उसके प्रेरक की चर्चा के मूल में रामकृष्ण विवेकानन्द विचारधारा की परिव्याप्ति को देखते हुये निराला ने इनके असीम महत्व को स्वीकार किया है। राष्ट्रीय आन्दोलन की एकांगिता को स्पष्ट करते उसे व्यापक सन्दर्भो के साथ

---

१. जातीय जीवन और श्री रामकृष्ण - निराला रचनावली -६ पृ० ४६

२ परमहंस श्री राम कृष्यदेव वही पृ० ६०

३. युगावतार भगवान श्री रामकृष्ण , वही पृ० ८१

जोड़ने का श्रेय भी इसी विचारधारा का देते हैं। 'स्वाधीनता' शब्द को और अधिक विस्तृत कर उसे मुक्ति शब्द से सम्बद्ध कर राष्ट्रीयता को नवीन आयाम प्रदान कर उसे प्राणवंत कर दिया। लिखते भी हैं, " आजकल भारतवर्ष की राष्ट्रीय मुक्ति पर जो आवाजें उठ रही हैं और जो अनेकानेक उपाय सोचें जा रहे हैं, वहाँ भी मीमांसा के रूप में श्रीरामकृष्ण और उनकी अपार साधना ही काम करती है।"[१]

'युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण नाम से ही निराला ने एक और निबन्ध लिखा, जिसमें उन्होंने आध्यात्मिक साहित्य के पाठक की हैसियत से श्रीरामकृष्ण देव को महान् तेजस्वी, अद्भुवत, जितेन्द्रिय तथा अपार भाव- राशि सम्पन्न महामानव बताया और उनके वृहद उत्तरदायित्व बोध को स्वीकारा। "जिस अर्थ में स्वामी विवेकानन्द जी का उनसे सहयोग हुआ था,वह उनके जीवन में परिस्फुट हुआ, वे उसके लिए पहले से ही तैयार थे, स्वामी विवेकानन्द जी ने पहचाना, श्रीरामकृष्ण की आत्मा तत्काल उनसे मिली, उनकी आत्मा ने भी उस अवस्था तक खिलकर उसे पहचाना। तमाम संसार का, उस युगावतार का यह संयोग उत्कर्ष की ओर लिए चल रहा है।—— मौलिकता के केन्द्र में, उस ब्रह्म में वे लीन हुये है। तमाम मौलिकता के वे मुख्य स्थान है, 'मुकं करोति वाचालाम्'। भारतवर्ष को सब तरह से उन्नत करने के लिए ही उनका आना हुआ है, वे एक रूप में रहकर संसार के सब धर्म रूपों में मिले हुये है।"[२]

निराला के रामकृष्ण देव पर लिखे गये निबन्धों में अन्तिम है,' श्रीदेव रामकृष्ण परमहसं'। इसके प्रारम्भ में ही विवेकानन्द के कथन का विवेचना किया है।" स्वामी विवेकानन्दजी ने एक जगह कहा है- संसार चिरकाल से ज्ञान तथा कर्म के धागे में एक ग्रह परिवार की तरह या तारों से आकाश के शून्य- तन्तु से पिरोया हुआ, ज्ञात या अज्ञात भाव से परस्पर आदान-प्रदान करता आ रहा है। जिस तरह पश्चिम को पूर्व के रिक्त भाण्डार में कुछ देने का हक है- उसी तरह पूर्व को भी पश्चिम के अँधेरों में कुछ प्रकाश फैलाने का अधिकार प्राप्त है। उन लोगों ने ऐश्वर्य की मदिरा बहुत पी, अब शुष्क- तालु- प्रेम- पीयूष पान करना चाहते हैं।"[३] इसके बाद निराला ने युगीन सन्दर्भो के साथ श्रीरामकृष्ण को जोड़कर देखा ओर उनके सन्देशों को रूपायित करने का

---

१. युगावतार भगवान श्री रामकृष्ण, निराला रचनावली-६ पृ०८३
२. वही पृ०९८ ३. वही पृ० १३०

कार्य शिष्य विवेकानन्द ने किया। उन के आगमन को व्यापक उद्‌देश्य से जोडेते हुये अन्त में कहते है,'' बिना विशद उद्‌देश्य लिये हुये अवतार पुरुष संसार में नहीं आते। श्रीरामकृष्ण का यह आगमन तथा उनकी तपस्या और शिक्षाएँ, जो महान् अर्थ रखती है, यदि मुक्ति ही किसी बन्धन का यथार्थ लक्ष्य है।''[१] इसके परिणाम स्वरूप आज सम्पूर्ण संसार में भारतवर्ष की कीर्ति पताका लहरा रही है और देश की कुण्ठा, संकीर्णता एवं हीन भावना समाप्त हुई और राष्ट्रीय चेतना के साथ आध्यात्मिक गरिमा बहाल हुई।

निराला ने 'वेदान्त केशरी स्वामी विवेकानन्द' और 'वेदान्त-केसरी स्वामी विवेकानन्द और भारत' नाम से दो निबन्ध युगनायक विवेकानन्द के आविर्भाव और प्रभाव पर लिखा। अपने आदर्श नायक पर लिखे गये इन दोनों निबन्धों में विवेकानन्द के प्रति निराला की श्रद्धा देखी जा सकती है।'' स्वामी विवेकानन्द जी भारतवर्ष की उसी तरह की सन्दिग्ध परिस्थिति में आये थे जिस तरह की परिस्थिति में 'विनाशाय च दुष्कृताम्' तथा ' धर्मसंस्थापनार्थाय' महापुरुष आते है। यज्ञों की धार्मिक क्रियाओं में बलि की आड़ में अधर्माचार होते देख, जिस तरह भगवान बुद्ध का आविर्भाव हुआ, फिर बौद्धों के अहिसां धर्म के लुप्त- प्राय काल में सिद्ध वेदान्त केशरी भगवान शंकर की जम्बुकों के विपिन में सिंह गर्जना सुनाई दी, वेदान्त के विजय घोष से एक बार फिर धर्म जीवन भारतवर्ष की निष्क्रिय शिराओं में ' एकमेवाद्वितीयम्' की अखण्ड ज्ञान ज्योति मृत संजीवनी संचारित हो गयी।''[२]

उनके आगमन के समय भारतीय वातावरण का जिक्र करते हुये निराला ने लिखा,'' पंडितों के शास्त्र ज्ञान के साथ अंग्रेजी दाँ युवकों का विरोधी तर्क जोर पकड़ता जा रहा था, शिक्षा की नवीन धारा प्राचीन शिक्षा के प्रतिकूल बह चली थी, पांडित्य का अंहकार क्रमशः अन्धकार फैलाता जा रहा था। ऐसे समय भगवान श्रीरामकृष्ण अपनी अतिमानवीय साधनाओं द्वारा अनेक पंथों से चलकर सिद्ध हो चुके थे और अपने प्रिय शिष्य नरेन्द (स्वामी विवेकानन्द) की प्रतीक्षा में बैठे हुये, कभी रो- रोकर एकान्त में उच्चस्वर से पुकारते, कभी माता जगद्धात्री से तकाजे के तौर पर

---

१. श्रीदेव रामकृष्ण परमहंस, निराला रचनावली- ६, पृ० १३०
२. वेदान्त केशरी स्वामी विवेकानन्द, वही पृ० ८४

कहते," माता अभी तो वह न आया।"[१] इस प्रतीक्षा के अनन्तर हृदय और बुद्धि के भावपूर्ण मिलन का उल्लेख निराला करते हैं। आवागमन, तर्क- वितर्क शुरू हो जाता है। पर रामकृष्ण तो दूसरी ही मिट्टी के बने थे। " एक बार इन्होने श्रीरामकृष्ण से कहा भी था कि अब मै नास्तिक दर्शन पढ़ रहा हूँ। श्रीरामकृष्ण ने उसी तरह शान्त स्वर से उत्तर दिया- नास्तिक दर्शन से भी वे मिलते है।"[२] इसी प्रकार की सत्य अनुभूतियों से रामकृष्ण ने विवेकानन्द को अभिभूत कर लिया। गुरु रामकृष्ण के प्रयोगजन्य अनुभवों को 'सत्य सनातन धर्म' का नाम दिया। " सत्य सनातन धर्म के उदार भावों के प्रचार के लिए स्वामीजी ने दो संवाद पत्र निकलवाए, एक बँगला मे उद्बोधन और एक अंग्रेजी में प्रबुद्ध भारत। हिन्दी में भी पत्र निकालने का आपका विचार था,शायद साधनों के अभाव के कारण आप सफल हो नही सके अब 'समन्वय' द्वारा उस अभाव की पूर्ति हुई है।"[३]

विवेकानन्द ने शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया, विशेष रूप से स्त्री शिक्षा के वे प्रबल समर्थक थे। वे आधुनिक परिवेश मे भारतीय और पाश्चात्य प्रवृत्तियों के मध्य समन्वय पर जोर देते थे," भारतीयों के लिए जो लोग स्वामीजी से पूछते थे कि हम क्या त्याग करें, वे हमेशा उत्तर पाते थे, तुम्हारे पास है ही क्या? पश्चिम वालों के लिए कहते थे, उन्होने भोग की मदिरा खूब पी ली है, अब उन्हें त्याग की जरूरत है- सच्चे अमृत की। अमेरिका में वेदान्त प्रचार की भूमि तैयार है, यह समझकर स्वामीजी प्रचार की एक मजबूत नीव डालने के उद्देश्य से दोबारा अमेरिका गये।"[४]

'वेदान्त -केसरी स्वामी विवेकानन्द और भारत' निबन्ध में निराला ने राष्ट्र के लिए उनके अवदान का उल्लेख किया है और उनके आकर्षक व्यक्तित्व के विश्वव्यापी प्रभाव की चर्चा की है। देश के आत्मविश्वास को फिर से बहाल करने में उनके योगदान की सराहना करते है," स्वामी विवेकानन्दजी की तरह देश को कोई नहीं उठा सका। यथार्थतः ज्ञान की तरह से उठाना ही उठाना है। यह महाज्ञान सबमें नहीं होता। —— ऐसा चरित्र, ऐसी मेधा, ऐसी वाग्मिता, ऐसा हृदय, ऐसा ज्ञान,ऐसी धर्मनिष्ठा संसार में दुर्लभ है। विद्या तो उनकी आत्मा थी।"[५] निराला स्वामी विवेकानन्द को इसलिए भी राष्ट्रनायक मानते है, क्योंकि वे राष्ट्र की नब्ज पहचानते थे। " हिन्दी

---

१. वेदान्त केशरी स्वामी विवेकानन्द, निराला रचनावली-६, पृष्ठ ८५
२. वही
३. वही पृ० ९१ ४. वही
५. वेदान्त- केसरी स्वामी विवेकानन्द और भारत, वही पृ० १४५

स्वामीजी बहुत अच्छी बोलते थे। सबसे पहले हिन्दी में ही पत्र निकालने की सलाह उन्होंने दी थी, पर जनाभाव था। पश्चिमोत्तर भारत को उन्होने बडी मर्यादा दी है। कहा है- संन्यासियों की सेवा वही ठीक- ठीक होती है। .... प्राचीन संस्कारों के वे बडे खिलाफ थे, यदि उनके पीछे ज्ञान न रहा। इस तरह की उनकी कई टिप्पणियाँ है। नवीन भारत का क्या रूप होना चाहिए, इसके वे स्वयं चित्र हैं। .... उनकी वक्तृता में जो आनन्द है, वह बड़े-बड़े कवियों की कविता में नही है। उनकी मूर्ति में जो वीरत्व की व्यंजना है, वह नेपोलियन, नेल्सन और कैसर में नही। उनकी महत्ता की तुलना उन्हें छोड़ और किसी से नही हो सकती और यहीं जागृत भारत की यथार्थ व्याख्या है और यही भारत के नवीन युग का स्वतन्त्र प्रकाश। ''[१] इस तरह निराला की दृष्टि में विवेकानन्द अतुलनीय हैं और साक्षात भारत की व्याख्या है।

निराला के निबन्धों पर विवेकानन्द के प्रत्यक्ष प्रभाव की श्रृंखला मे उनकी संस्था 'श्रीरामकृष्ण मिशन'(लखनऊ) पर लिखा गया निबन्ध भी रखा जा सकता है। इसके गठन के मुख्य प्रेरकों की चर्चा करते हुये निराला लिखते है,'' स्वामीजी ने रामकृष्ण मिशन के संगठन के पश्चात् समागत उच्च शिक्षित युवक त्यागियों को शास्त्रानुशीलन और चरित्र गठन के साथ-साथ पीड़ितों की सहायता के लिए भी प्रेरित किया।''[२] निराला पर स्वामी विवेकानन्द से सम्बद्ध एक घटना का बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा जिसका संस्मरण निराला इस निबन्ध में लिखते है,'' इसी समय (वेदान्त पाठ के) बंगभाषा के शेक्सपीयर नाट्य- सम्राट महाकवि गिरीश चन्द घोष स्वामीजी से मिलने गये। गिरीश बाबू स्वामीजी के गुरु भाई थे।—— स्वामीजी को पढ़ाते हुये देखकर व्यंग करते हुये बोले-''मुक्ति पढ़ा रहे हो, उधर देश में हाहाकार मचा हुआ! बाढ़ से सारा बंगाल बह गया। '' स्वामीजी के पलाश-नयन सजल हो गये। वे उठकर बाहर दीवार की आड़ मे चले गये। विद्यार्थी गिरीशचन्द्र को देखने लगे।'' देखा'' गिरीशबाबू बोले, '' तुम्हारे स्वामीजी में इतनी करुणा है और तुम सूखे पन्ने निचोड़ रहे हो।'' कवि के मजाक का युवक विद्यार्थियों पर बुरा प्रभाव न पड़े शास्त्राध्ययन से उन्हें अरुचि न हो जाय इस विचार से स्वामीजी फिर तुरन्त आ गये, और ''तुम लोग पढो, अध्ययन ही प्रथम लक्ष्य होना चाहिए।'' कहकर एकान्त में गिरीश बाबू को ले गये।''[३]

---

१. वेदान्त- केसरी स्वामी विवेकानन्द और भारत, निराला रचनावली- ६, पृष्ठ १४६
२. श्रीरामकृष्ण मिशन (लखनऊ) निराला रचनावली, भाग-६ पृ० १८९
३. वहीं पृ० १८९

इस तरह हम देखते है कि निराला विवेकानन्द की विचारधारा से प्रत्यक्ष रूप में जुडे हुये हैं। इनसे हम निराला के अन्तःकरण पर विवेकानन्द की अमिट छाप को समझ सकते है। भाव-प्रवण वर्णन और वर्णनो में व्यापक दृष्टि को देख आसानी के साथ इस बात का भी निर्णय लिया जा सकता हैं कि निराला के ऊपर विवेकानन्द का अप्रतिम प्रभाव है, जो उनके जीवन और साहित्य में व्यक्त हुआ है।

चतुर्थ अध्याय

निराला की रचनाओं पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव – काव्य साहित्य

(क) आध्यात्मिक एवं दार्शनिक प्रभाव

(ख) मानवतावाद एवं विश्वबोध का प्रभाव

(ग) राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम का प्रभाव

(घ) सामाजिक विचारधारा का प्रभाव

निराला की दार्शनिक अवधारणा का आधार 'समन्वय' के सम्पादन से ही निर्मित होता है। 'श्रीरामकृष्ण मिशन' की यह दार्शनिक पत्रिका उन्हें दर्शन के स्तर पर वेदान्तवादी बना देती है। वेदान्त एवं लोक-संग्रह को समन्वित कर निराला ने उसे अपनी कविताओं में स्थान देकर साहित्य में प्रस्थापित किया। विवेकानन्द की दार्शनिक विवेचना ने निराला के दर्शन का मुख्य पक्ष निर्धारित करने में महती भूमिका का निर्वाह किया। उनके दर्शन में 'ब्रह्मवादी और शून्यवादी ' विचारों का भी समावेश मिलता है। उनकी 'परिवर्तन' कविता में ब्रह्मवाद का उत्कृष्ट प्रतिपादन हुआ है। 'शून्यवाद' को तो अद्वैतवाद का ही एक रूप स्वयं निराला ने 'शून्य और शक्ति' निबन्ध में ही स्वीकार किया है। उनके दर्शन में तुलसीदास का भी अवदान है, जिसके फलस्वरूप समन्वयवादी दृष्टिकोण भी विकसित हुआ है। जिससे उनमें पारमार्थिक और व्यावहारिक दर्शन का संश्लिष्ट रूप विकसित देखा जा सकता है। इतना सब होते हुये भी निराला का मुख्य स्वर अद्वैतवादी ही है और विवेकानन्द का अद्वैत नववेदान्त इसका मुख्य उत्प्रेरक कहा जा सकता हैं। अन्य पक्ष इतने गौण और संक्षिप्त हैं कि उनके आधार पर कोई चित्र नहीं बनाया जा सकता। वस्तुतः विवेकानन्द को वेदान्त और लोकसंग्रह की भावना ने निराला के लिए दार्शनिक आधार बनाया और नववेदान्त उसका मेरुदण्ड है।

'निराला के सम्पूर्ण काव्य का तात्विक प्रतिनिधित्व इनकी तीन रचनाएँ करती हैं:- 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति पूजा' तथा 'सरोज-स्मृति'। निराला की ये तीन रचनाएँ क्रमशः भक्ति, शक्ति तथा व्यथा के तत्वों का काव्यात्मक रूपायन हैं। वस्तुतः भक्ति, शक्ति तथा व्यथा के इन्हीं तीन विशद आयामों से निराला का वह त्रिकोणात्मक व्यक्तित्व निर्मित हुआ था, जिसमें समयानुसार अद्वैतवाद, शक्तिवाद और अहंवाद की तरंगे उठा करती थीं। इस प्रसंग में यह भी स्मरणीय है कि मुख्यतः अद्वैतवादी होने के कारण निराला की प्रायः सभी उत्कृष्ट कविताओं में दार्शनिक सम्बोधनों की प्रचुरता हैं।'[1] इसी बात को पुष्ट करते हुये डा० प्रेम नाराणय टंडन लिखते हैं, ''श्रीरामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द की वेदान्त-धारा का उन पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा था और इसी से उनकी कविताओं में सबसे प्रबल स्वर वेदान्त का ही है। वेदान्त के चिन्तन के फलस्वरूप कवि में अवश्यम्भावतया ही तीव्र विरक्ति अथवा जगत के प्रति उदासीनता का भाव

---

१. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास-१०, डॉ० नगेन्द्र, पृ० १६६

परिलक्षित होता है।"[१]

विवेकानन्द ने धर्म को उदात्तभाव से परिभाषित किया। मत, अनुष्ठान, पद्धति आदि को इसका वाह्याचार मानते हुये इसकी अनुभूति के साथ जोड़कर देखा। निराला की कविताओं में धर्म का यही रूप देखा जा सकता है। उन्होंने धर्म को जटिल और दुरूह समझने के मान्यता का खण्डन करते हुये, उसे सरल और सरस बताया। धर्म के प्रचलित विधि-विधान उसके वाह्य स्वरूप हैं। धर्म अन्तःवृत्तियों की अनुभूति से जुड़ा हुआ है, जो उन वृत्तियों के दमन से ही उत्पन्न होती है और वासना से मुक्ति के बाद ही धर्मप्राणता का उदय होता है। इसीलिये वे ईश्वर से प्रार्थना करते हैं—

'मानव मन को शान्त करो हे!
काम, क्रोध, मद, लोभ, दम्भ से
जीवन को एकान्त करो हे!
हिलें वासना-कृष्ण-तृष्ण उर,
खिलें विटप छाया जल-सुमधुर
\+ \+ \+ \+ \+
नभ-नभ कानन-कानन छा के
ऐसे तुम निष्कान्त करो हे![२]

निराला का धर्म भी विश्वजन्य है, उसमें संकीर्णता का कोई स्थान नहीं है। उनकी दृष्टि में सभी लोग उस अनन्त के प्रति हाथ पसारे हुये खड़े हैं —

'द्वार पर तुम्हारे,
खड़ा हुआ था विश्व
कर पसारे।
ऐसी दयनीयता हुई क्या,
बिसरा यह नहीं रे बिसारे।'[३]

वे प्रभु को सम्पूर्ण मानव का और मानव के लिए मानते हैं ....

---

१. निराला : व्यक्तित्व एवं कृतित्व- डॉ० प्रेम नारायण टण्डन, पृ० ३९
२. अर्चना- ५७, निराला रचनावली- २, पृ० ३६४
३. आराधना- १३६, वही पृ० ४०८

नव वेदान्त का प्रभाव

विवेकानन्द ने वेदान्त जैसे शुष्क दर्शन को व्यावहारकि बनाकर सामाजिक सन्दर्भो के साथ जोड़ा, तो निराला ने उसे साहित्य संसार में मान्यता प्रदान किया। मानव के अन्दर निहित दिव्य शक्तियों को प्रकट करना ही वेदान्त है, इसके लिए 'आध्यत्मिक और व्यावहारिक जीवन के बीच जो काल्पनिक भेद है, उसे भी मिट जाना चाहिए, क्योंकि वेदान्त एक अखण्ड वस्तु के सम्बन्ध में उपदेश देता है- वेदान्त कहता है कि एक ही प्राण सर्वत्र विद्यमान है। धर्म के आदर्शो से सम्पूर्ण जीवन को आविष्ट करना, हमारे प्रत्येक विचार के भीतर प्रवेश करना और कर्म को अधिकाधिक प्रभावित करना चाहिए। ''[१] यह सन्देश निराला के लिए एक आदर्श बन गया था। प्रत्येक व्यक्ति के केन्द्र में एक ही सार्वभौम सत्ता का अस्तित्व स्वीकार करते हुये मानव मात्र की समानता का उद्‌घोष उनकी कविताओं का मुख्य स्वर बन गया था। उसी धर्म के आदर्श को प्रत्येक विचार के भीतर प्रवेश करना ही निराला का व्यापक उद्‌देश्य है। मानव में एकत्व के भाव का निदर्शन ही उनके काव्य का मेरुदण्ड है, प्रत्येक व्यक्ति के भीतर शक्ति का महान केन्द्र है, जिसे समझने को वे बार-बार आवाहन करते हैं। 'जागो फिर एक बार', 'महाराज शिवाजी का पत्र', ' 'पंचवटी प्रसंग', 'आवाहन', 'तुलसीदास' , 'राम की शक्तिपूजा' आदि अनेकानेक कविताओं में काफी कुछ नववेदान्ती स्वर सुनाई पड़ता है। यहाँ तक कि 'कुकुरमुत्ता' को व्यापक सन्दर्भो से जोड़ते हुये उसे निराला ब्रह्म सरीखा' बना देते हैं। पददलित और अनपेक्षित 'कुकुरमुत्ता' को गुलाब के सापेक्ष अधिक उपयोगी सिद्ध कर मानो विवेकानन्द के 'जीव ही शिव है' के आदर्श को एकदम से यथार्थ धरातल पर ला दिया है। इसीलिए बौद्धिक वर्ग में यह एक क्रातिकारी विचार माना जाता है, मुझे तो लगता है कि निराला की विशिष्ट रचनाएँ अचेतन मन की सक्रियता पर ही अधिक निर्भर करती है और निराला के अचेतन मन पर विवेकानन्द छाये हुये हैं, जैसा कि पहले हम कह भी आये हैं कि निराला ने विवेकानन्द का सारा वर्क हजम कर लिया है और जब वे इस तरह बोलते है तो समझो कि विवेकानन्द ही बोल रहें हैं। निराला की इस व्यापक स्वीकारोक्ति को हम कविताओं के सन्दर्भ में देखे तो उनकी 'कुकुरमुत्ता' नववेदान्त का अति यथार्थवादी पक्ष है,

---

१. विवेकानन्द साहित्य- ८ पृ० ३

जिसकी व्यापकता में सब कुछ समाहित है; जिस तरह विवेकानन्द के ब्रह्म सर्वव्यापी है, दीन-हीन पीड़ित, शोषित, अछूत, चाण्डाल, मेहतर, मजदूर सब में ईश्वर की व्यापकता है, उसी तरह निराला का 'कुकुरमुत्ता' भी सब में व्याप्त है। समाज, साहित्य, संगीत, धर्म एवं सांसारिकता हर स्थानों से वह सम्बद्ध है।

विवेकानन्द के सन्देशों को साहित्य में स्थान देकर 'वेदान्त केशरी' को 'साहित्य केशरी' बनाने का श्रेय निराला को जाता है। निराला स्थान-स्थान पर लोगों को मुक्त और ब्रह्म घोषित करते है। 'प्रपात के प्रति' कविता में उन्होंने 'मुक्त-मानव' का अत्यन्त सुन्दर चित्र उकेरा है, 'क्षुद्र प्रपात' उसी का प्रतीक है, जो 'घन-वन- अन्धकार' में सामाजिक कर्तव्यो के साथ जुझता हुआ निरन्तर गतिशील रहता है। वह भौतिकता के व्यामोह में उलझता नही अपितु निरन्तर स्वल्प प्रयोग से ही उसकी निस्सारता को समझ कर मुक्त भाव से आगे बढ़ जाता है।

विवेकानन्द का 'वेदान्त' आदर्श का उपदेश देता है और आदर्श वास्तविक की उपेक्षा कहीं अधिक उच्च होता है। हम लोगों के जीवन में दो प्रवृतियाँ देखी जाती हैं। एक है अपने आदर्श का सामंजस्य जीवन से करना, और दूसरी है जीवन को आदर्श के अनुरूप उच्च बनाना।''[१] दोनों ही ढंग से जीवन की प्रगति सम्भव है, जो निराला में फलीभूत दीखती है। इसीलिए वे व्यक्ति की महानता का बार-बार उद्घोष करते हैं–

'मुक्त हो सदा ही तुम,
बाधा विहीन बन्ध छन्द ज्यों,
डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द रूप।.......................
तुम हो महान्, तुम सदा हो महान्
है नश्वर यह दीन भाव,'[२]

विवेकानन्द का 'नववेदान्त ' प्रत्येक व्यक्ति को अपने ऊपर विश्वास करने की शिक्षा देता है। निराला अपनी कविताओं के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति में आत्म विश्वास भरने का कार्य करते हैं। उन्होंने 'सोऽहम्' की दार्शनिक अवधारणा को व्यावहारिकता की व्याख्या से जोड़कर

---

१. विवेकानन्द साहित्य-८, पृ० ५
२. जागो फिर एक बार, परिमल, निराला रचनावली-१ पृ० १४२

साहित्य के माध्यम से लोकभूमि पर प्रवाहित करने का कार्य किया–

'धवल पताका देवत्व की,
ज्योतिर्मात्र, अशरीर,
चिर अधीरता पर
विजय गर्व से उड़ती हुई
व्योम -पथ पर
'सोऽहम्' का शान्त स्वर
भरा हुआ प्रतिमुख में
'अण्वप्युचितम्' विशाल हृदय,"[१]

'जागरण' का यहीं सन्देश व्यक्ति की सुप्त चेतना को जागृत करता है, इससे लक्ष्य तक पहुँचने की अप्रतिम शक्ति का बोध होता है।

'निरालाजी की यह दार्शनिकता बौद्धिक श्रम मात्र नहीं है, इसमें संघर्ष-निरत जीवन की व्यावहारिकता भरी हुई है। स्वामी विवेकानन्द स्वयं भी व्यावहारिक वेदान्ती थे और उनके वेदान्त की प्रमुख विशेषता शक्ति, करुणा और सेवा है। अतः जब निराला ने उन्हे अपनाया तो वेदान्त को प्रगतिशीलता के आधार-रूप में भी प्रस्तुत कर दिया।"[२] नववेदान्त के सभी पक्ष निराला की कविताओं में अपना प्रमाण पाते हैं। शक्ति और गैरव से सम्बन्धित विभिन्न कविताओं का जिक्र हम पहले ही कर चुकें हैं। 'करुणा' की भावना से ओत-प्रोत कई काव्य कृतियाँ प्राप्त होती है; देश के गरीबों की दुर्दशा, भिक्षुकों की वेदना, दलितों की यातना और महिलाओं की पीड़ा के अनेक चित्र उनकी कविताओं में देखने को मिल जाते हैं :-

'दलित जन पर करो करुणा
दीनता पर उतर आये
प्रभु तुम्हारी शक्ति अरुणा।'[३]

इसी तरह की तमाम कविताओं में निराला के करुण हृदय की रागिनी बज उठती है

---

१. जागरण, परिमल, निराला रचनावली-१ पृ० १७४
२. निराला: व्यक्तित्व एवं कृतित्व- डॉ० प्रेम नारायण टण्डन पृ० ३९
३. अणिमा, निराला रचनावली- २ पृ० ३३

और वे 'दीन' पर दया, 'दान' का आडम्बर, 'भिक्षुक' की दुर्दशा, 'बादल-राग' का क्षुब्ध तोष व कोष कृषक, 'तोड़ती पत्थर' की श्रमिक महिला सभी को अपनी कविता का विषय बनाकर विवेकानन्द के 'जीव ही शिव है' - भावना का सृजनात्मक विकास करते हैं।

ब्रह्म

विवेकानन्द ब्रह्म को सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान समझते है, जो ज्ञात-अज्ञात, साकार-निराकार सबसे परे है। वे ब्रह्म को अनन्त और अव्यक्त मानते है। निराला भी इस बात को पूर्ण रूप में स्वीकार करते हैं। जीवन-मृत्यु, सुख-दुःख, सृजन-विनाश सब में वह विद्यमान है, सृष्टि का कण-कण ब्रह्ममय है। उससे कुछ भी अलग नही है-

'निःस्पृह, निःस्व, निरामय, निर्मम,
निराकाङ्क्ष, निर्लेप, निरुद्‌गम,
निर्भय, निराकार, निःसम शम,'[१]

विवेकानन्द के ब्रह्म सम्बन्धी विचार का निराला पर व्यापक प्रभाव पड़ा, सम्पूर्ण संसार और बह्म एकान्वित हैं। हालांकि वाहय तौर पर अनेकता का बोध होता है। सम्पूर्ण विश्व उनमें और उन्ही में सम्पूर्ण विश्व समाया हुआ है-

'तुम तो अखिल विश्व में
या यह अखिल विश्व है तुममें
अथवा अखिल विश्व तुम एक
यद्यपि देख रहा हूँ भेद अनेक?'[२]

निराला का ब्रह्म तेजोमय प्रकाश रूप है, जिसमें सारा विश्व प्रकाशमान है। व्यष्टि से लेकर समष्टि तक वहीं 'सच्चिदानन्द घन' प्रसारित हो रहा है। एक भी व्यक्ति उससे वंचित

---

१. आराधना, निराला रचनावली- २ पृ० ४२६
२. कण, वही-१ पृ० १०१

नही है -

'सौर ब्रह्माण्ड को उद्भासमान देखते हो
उससे नहीं वंचित है एक भी मनुष्य भाई!
व्यष्टि और समष्टि में समाया वहीं एक रूप,
चिद्घन आनन्द कन्द।'[१]

ब्रह्म की इच्छामात्र से ही सृष्टि, स्थिति और प्रलय होता है। समस्त जीव उसकी इच्छा से ही गतिमान रहते हैं—

'व्यष्टि तो समष्टि से अभिन्न है,
देखता है, सृष्टि-स्थिति-प्रलय का
कारण-कार्य भी है वही
उसकी इच्छा है रचना चातुर्य में
पालन-संहार में।'[२]

ब्रह्म की 'शक्ति' के संकेत मात्र से करोड़ों ब्रह्मा, विष्णु और महेश, करोड़ों सूर्य, चन्द, तारे और ग्रह, करोड़ों इन्द और सुरासुर उत्पन्न, पोषित और विनष्ट होते हैं। समस्त बह्माण्ड के मूल में रहने वाला वह ब्रह्म आदि- अनादि से परे सर्वोपरि शक्ति है। उससे सभी संसार और सारे जीव मिले हुए हैं—

'जिनके कटाक्ष से करोड़ों शिव-विष्णु-अज
कोटि-कोटि सूर्य-चन्द्र-तारा-ग्रह
कोटि इन्द्र-सुरासुर
जड़ चेतन मिले हुये जीव-जग
बनते-पलते हैं-नष्ट होते हैं अन्त में......................
जिनके गुण गाकर भवसिन्धु पार करते नर,'[३]

ऐसे अद्वितीय परम ब्रह्म से जीवात्मा को अलग करके नहीं देखा जा सकता है। सांसारिक प्रपंच के कारण जीव स्वयं को उससे दूर समझने लगता है, फलतः वह कई बन्धनों में

---

१. पंचवटी प्रसंग, अनामिका व परिमल, निराला रचनावली- १ पृ० ४६
२. वही, पृ० ४७
३. वही, पृ० ४१-४२

बँध जाता है। यही बन्धन भ्रम पैदा करते हैं, जिससे जीवात्मा में वासना का उदय होता है। विवेकानन्द के इस दृष्टिकोण को निराला अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त करते हैं। बन्धनों का यही भ्रम समाप्त हो जाने पर आत्मबोध होता है और जीव भी अपने मूल स्वरूप को जानने में सफल हो जाता है—

'तुमसे लाग लगी जो मन की
जग की हुई वासना बासी।
गंगा की निर्मल धारा की
मिली मुक्ति मानस की काशी।'[१]

विवेकानन्द ब्रह्म को महाशक्ति के रूप में भी स्वीकार करते हैं। उनकी कई कविताओं- 'नाचुक ताहाते श्यामा', 'काली माता' आदि- में इस तरह की कल्पना देखी जा सकती है, जिसका निराला पर व्यापक प्रभाव आसानी से देखा जा सकता है। उनकी प्रतिनिधि कविता 'राम की शक्तिपूजा' पर इसको सीधे तौर पर समझा जा सकता है। इससे पूर्व उनकी एक कविता 'आवाहन' में भी इसी प्रभाव की अभिव्यंजना मिलती है :

'एक बार बस और नाच तू श्यामा!.....................
तभी बजेगी मृत्यु लड़ायेगी जब तुझसे पंजा ;
लेगी खड्ग और तू खप्पर,
उसमें रुधिर भरूँगा मा
मैं अपनी अंजलि भर-भर ;
ऊँगली के पोरों में दिन गिनता ही जाऊँ क्या मा '[२]

'आवाहन' शीर्षक कविता निश्चय ही 'राम की शक्तिपूजा' के शक्ति दर्शन की पूर्व संकेतक कविता है और इस पर स्वामी विवेकानन्द की 'नाचुक ताहाते श्यामा' और श्रीरामकृष्ण परमहंस द्वारा निर्दिष्ट 'मातृभाव से साधना' का प्रकारान्तर प्रभाव है।'[३]

'राम की शक्तिपूजा' शक्ति दर्शन का महाकाव्य है, इस कविता से और भी पहले रचित

---

१. आराधना, निराला रचनावली- २ पृ० ४२६
२. आवाहन, परिमल, वही-१ पृ० ७३
३. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास- १० पृ० १८२-८३

'पंचवटी प्रसंग' में ही इस दर्शन का उत्स देखा जा सकता है, जहाँ परम शक्ति के रूप में उनकी महत्ता का गुणगान है—

'माता की चरण-रेणु मेरी परम शक्ति है—
माता की तृप्ति मेरे लिये अष्ट सिद्धियाँ..................
सारे ब्रह्माण्ड के जो मूल में बिराजती हैं
आदि-शक्ति-रूपिणी,
शक्ति से, जिनकी शक्तिशालियों में सत्ता है—
माता है मेरी वे।'[१]

उसी शक्ति की विराट कल्पना को लिए हुये निराला 'राम की शक्तिपूजा' का सृजन करते है। इसके मूल में निराला द्वारा 'समन्वय पत्रिका' में लिखी हुई एक टिप्पणी को भी प्रेरक मान सकते हैं। ''शक्तिपूजा की ओर झुकाव 'समन्वय' पत्रिका से सम्बन्ध स्थापित होने के समय ही था। निराल ने 'समन्वय' में विविध प्रसंग के अन्तर्गत 'शक्तिपूजा' पर एक डेढ़ पृष्ठ की प्रभावपूर्ण टिप्पणी लिखी थी। लगता है, इस टिप्पणी में भी व्यक्त भावों का संस्कार 'राम की शक्तिपूजा' लिखते समय निराला के मन में रहा होगा। इस टिप्पणी की ये पंक्तियाँ ध्यातव्य है— 'संसार में शक्ति की पूजा करने वाला ही अपना व्यक्तित्व कायम रख सकता है। जिस जाति या देश में शक्ति की पूजा नहीं होती, वह इस भूमण्डल पर कुछ ही दिनों का मेहमान होता है।''[२] इसी संस्कार को हम 'राम की शक्तिपूजा' में फलीभूत देख सकते हैं, शक्ति की मौलिक कल्पना का सन्देश देकर उसकी पूजा को कविता का केन्द्रीकृत भाव माना जा सकता है। युद्ध के परिणाम को लेकर शंकित राम को शक्ति रूपा 'पृथ्वी-तनया' स्वरूप ही याद आता है— 'जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका छवि'[३]। जो मूल रूप में शक्ति से सम्बन्धित है, फलस्वरूप उनमें शक्ति का संचार होता है। 'निराला ने सीता को संकल्प बल और शक्ति साधना की प्रेरणा का प्रतीक माना है। तभी तो सीता के स्मरण के बाद राम में शक्ति कामना का उदय होता है। शक्ति साहित्य में इस तथ्य का पौनः पुन्य कीर्तन किया गया है कि नारी ही शक्ति का मूल संस्थान है और शक्ति का एकमात्र नारी रूप है।'[४]

---

१. पंचवटी प्रसंग, परिमल, निराला रचनावली- १ पृ० ४१-४२
२. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास-१० पृ० १८८
३. राम की शक्तिपूजा, द्वितीय अनामिका, निराला रचनावली- १ पृ० ३१२
४. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास- १० पृ० १८४

'राम की शक्तिपूजा' में राम को रावण से युद्ध करते हुये शक्ति के जिस रूप का प्रत्यक्षीकरण होता है, वह भीमा रूप है–

'फिर देखी भीमा मूर्ति आज रण देखी जो
आच्छादित किये हुये सम्मुख समग्र नभ को,'[१]

शक्ति साहित्य में वर्णित छः देवियों– नंदा, रक्तदंतिका, शाकम्भरी, दुर्गा, भीमा और भ्रामरी– में निराला की कल्पना भीमा की ओर ही जाती है, जो नीलवर्ण रूपा मानी गयी हैं। इसीलिए निराला की भीमामूर्ति से नीलवर्णमय आकाश को पूर्णतः आच्छादित किये हुये शक्ति का बोध होता है। आगे इसी के लिए 'श्यामा' नाम का प्रयोग भी कवि के द्वारा किया गया है– 'रावण-महिमा श्यामा विभावरी-अन्धकार' , 'श्यामा के पदतल भार धरण हर।'[२] श्यामा, भीमा की तरह शिव द्वारा पार्वती रूप को महावीर के क्रोध का शमन करने के लिए विद्या का आश्रय लेकर मन को प्रबोध देने की सलाह भी शक्ति प्रसंग से जुडा हुआ है। विवेकानन्द की कविताओं में निराला द्वारा प्रयुक्त भीमा और श्यामा रूपों का वर्णन मिलता है—

' पीछे भय से, कहीं देख तू
भीमा महाप्रलय की सृष्टि।'.....................
नाचे उस पर श्यामा , घन रण
में लेकर निज भीम कुपाण।'[३]

' राम की शक्तिपूजा' में राम द्वारा अन्त में किया गया देवी पूजन और प्रसन्न महाशक्ति का राम के वदन में समाहित हो जाना कविता की काम्य अर्थवत्ता प्रदान कर देती है–

'' होगी जय, होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन।''
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।''[४]

राम द्वारा शक्ति की मौलिक कल्पना व उसके पूजन द्वारा वांछित शक्ति को

---

१. राम की शक्तिपूजा, द्वितीय अनामिका, निराला रचनावली- १ पृ० ३१२
२. वही, पृ० ३१३
३. नाचुक ताहाते श्यामा, वही पृ० ३७४-७५
४. राम की शक्तिपूजा, वही पृ० ३१९

प्राप्त कर सार्थकता बोध देने का कवि का दृष्टिकोण प्रमाणित होता है। 'यों यह कहा जा सकता है कि निराला ने शक्ति की जो मौलिक कल्पना की है, उसकी पृष्ठभूमि में स्वामी विवेकानन्द के 'अम्बास्तोत्र' और उन्ही के द्वारा काली पर अँगरेजी मे रचित कविता तथा 'श्रीरामकृष्णवचनामृत' के 'मातृभाव से साधना' शीर्षक प्रवचन के प्रभाव की हलकी अनुगूँज है।''[१] इसी सन्दर्भ में डा० देवेन्द्रनाथ त्रिवेदी अपनी पुस्तक 'निराला काव्य में मानव मूल्य और दर्शन' में लिखते भी है, ''राम की शक्तिपूजा पर भी विवेकानन्द की शक्ति की मान्यता का प्रभाव है, जिसका बंगाल में व्यापक प्रचलन रहा है।'' निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि विवेकानन्द के शक्ति दर्शन का निराला की इस कविता में व्यापक प्रभाव दिखाई पडता है। इस कविता के मूल भाव के रूप में कवि की कल्पना को साहित्य जगत ने स्वीकार किया और यह कविता निराला के रचना संसार का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन बन जाती है। विवेकानन्द के मौलिक चिन्तन का मौलिक पक्ष निराला के इस पौराणिक इतिवृत्त को अभिनव धरातल पर अवस्थापित कर कविता को जीवंत एवं शाश्वत बना देता है।

जीवात्मा

विवेकानन्द की तरह निराला भी मानव मात्र में बह्म का निवास मानते हैं। 'कण' आत्मा ब्रह्म का अंश है, जो सभी में व्याप्त है- चाहे वह राजा हो या रंक, दुःखी हो या सुखी, धनी हो या गरीब, सब में उसी का प्रकाश आलोकित है। जीवात्मा और परमात्मा में अंश और अंशी का सम्बन्ध है। बूँद और सागर घटाकाश और आकाश की तरह आन्तरिक रूप में दोनों अभिन्न हैं। तमाच्छादित आत्मा जब वास्तविकता समझ लेती है तो वह अपने प्रिय से मिलने के लिए व्यग्र हो जाती है, आसुरी भावों के भूधर भयभीत होकर पथ से हट जाते हैं और सारे बन्धन ढीले होकर जीव को प्राणमुक्त कर देते हैं—

'आज हो गयें ढीले सारे बन्धन
मुक्त हो गये प्राण
रुका है सारा करुण क्रन्दन।''[२]

---

१. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास - १० पृ० १८७
२. घारा, परिमल, निराला रचनावली -१ पृ० ७२

यह संसार इस धारा को पुनः रोकने में असमर्थ हो जाता है, सभी उससे भयभीत हो जाते है, कोई कुछ नहीं कहता। कोई साहस कर पूँछ लेता है, तो वह कहती है -

‘ यह जीवन की प्रबल उमंग
जा रही मैं मिलने के लिए पार कर सीमा
प्रियतम असीम के संग।’[१]

प्रबल वेगवती यह धारा शीघ्र ही अपने गन्तव्य तक पहुँच जाती है किन्तु वहाँ का द्वार बन्द देख वह गहरी वेदना मे डूब जाती है। साधना जब सफलता के अन्तिम बिन्दु पर पहुँचती है, तो साधक का अन्तिम परीक्षण होता है ‘राम की शक्तिपूजा’ में भी वही होता है, जिसमें राम की मौलिक उपासना के प्रति अन्तिम पुष्प को महाशक्ति गायब कर देती हैं। जिसे राम अपना ‘कमल नयन ही समार्पित करना चाहते थे। यह लक्ष्य प्राप्ति के प्रति गहरी छटपटाहट का बोध होता है। ऐसी स्थिति में जीवात्मा परब्रह्म से मिलने हेतु आर्त स्वर में पुकार उठती है, -

“ खड़ी संकुचित है कमलिनी तुम्हारी
मन के दिन-मणि , प्रेम - प्रकाश !
उदित हो आओ, हाथ बढाओ।
उसे खिलाओ, खोलो प्रियतम द्वार।”[२]

यह स्थिति आने के बाद व्यक्ति अहंकार रहित हो जाता है। वह अपने ‘स्व’ में स्थित होकर सांसारिकिता के प्रपंच से भी मुक्त हो जाता हैं -

‘ तुम्हें नहीं अभिमान
छूटे कहीं न प्रिय का ध्यान,
इससे सदा मौन रहते हैं,
क्यों रज, विरज के लिए ही इतना सहते हो ?[३]

यहाँ पर विवेकानन्द के वेदान्त दर्शन का आध्यात्मिक और लोकमंगलकारी स्वरूप देखा जा सकता है। निराला मानव के दुःख को दूर करने के लिए‘ अधिवास’ का भी

१. घारा, परिमल, निराला रचनावली -१ पृ० ७२
२. अंजलि, वही, पृ० ७० - ७१ ३. कण, वही पृ० १०२

भी परित्याग कर देते हैं -

> ' उसके निकट गया मैं धाय,
> लगाया उसे गले से हाय !
> फँसा माया में हूँ निरुपाय
> कहो कैसे फिर गति रुक जाय ....
> छूटता है यद्यपि अधिवास,
> किन्तु फिर भी न मुझे कुछ त्रास। "[1]

त्रास भी क्यों हो ? दुःखी मानव की सहायता ही तो ईश्वर की प्राप्ति है । 'अधिवास' प्राप्त करने की अपेक्षा निराला दीन की सहायता करना, भिक्षुक की भूँख मिटाना और पत्थर तोड़ती महिला को चित्रित करना अधिक श्रेयस्कर समझते हैं, जो विवेकानन्द के अभिनव दर्शन के साथ जुड़कर और अधिक मानवीय एवं लोक कल्याणकारी स्वरूप धारण कर लेता है ।

जगत

स्वामी विवेकानन्द ब्रह्म से ही जगत की उत्पत्ति मानते हैं । वे ब्रह्म और जगत के बीच देश, काल और निमित्त रूपी काँच की चर्चा करते हैं, जिसमें ऊपर से देखने पर ब्रह्म और नीचे से देखने पर जगत का आभास होता है। उस काँच पर जब मैल का आवरण चढ़ जाता है, तभी दोनों भिन्न दीखते हैं । निराला भी सृष्टि को ब्रह्म की इच्छा का परिणाम मानते हैं । सृष्टि की इच्छा होते ही उस आनन्द सागर ब्रह्म में पहली तरंग उठी, कम्पन हुआ और सृष्टि के सम्पूर्ण तत्वों से युक्त होकर ब्रह्म ने अपने आपको पूरी शक्ति के साथ जगत के रूप में विस्तृत कर दिया -

> 'इच्छा हुई सृष्टि की
> प्रथम तरंग वह आनन्द सिन्धु में
> प्रथम कम्पन में सम्पूर्ण बीज सृष्टि के,
> पूर्णता से खुला मैं पूर्ण सृष्टि शक्ति ले ......

---

१. कण, परिमल, निराला रचनावली - १ पृ० १०३

त्रिगुणात्मक रचे रूप,
विकसित किया मन को,
बुद्धि, चित्त, अहंकार, पंचभूत।'[1]

इस त्रिगुणात्मक रचना के बाद मन को विकसित किया और बुद्धि, चित्त, अहंकार पंचभूत और रूप - रस - गन्ध -स्पर्श - शब्द के बल पर इस जगत की रचना की। इस संसार के मूल में 'मायाकृत मैं का परिवार' निवास करता है। यही जीव को भ्रमित करने वाला हैं, किन्तु संसार की गतिशीलता का कारण भी यही है -

'यही तो जग का कम्पन -
अचलता में सुस्पन्दित प्राण -
अहंकृति में झंकृत जीवन
सरस अविराम उत्थान - पतन।[2]

दया,भय,हर्ष, शोक, अभिमान, सुख, दुःख, तृष्णा, ज्ञान, अज्ञान, उत्थान, पतन के झूले पर झूलता हुआ, यह जगत लगातार गतिशील रहता है। निराला ने भ्रमित जीवों को इस 'शोक, दुःख - जर्जर नश्वर संसार की सीमा पार कर के जग के उस छोर तक जाने का सन्देश दिया है -

'हमें जाना है जग के पार !
जहाँ नयनों से नयन मिले
ज्योति के रूप सदृश खिले,
सदा ही बहती नव रस धार-'[3]

माया

विवेकानन्द ने 'माया' के अस्तित्व को स्वीकार किया है और उसे सृष्टि संचालन के कार्य का सहयोगी बताया है। ब्रह्म की लौकिक शक्ति के रूप में, यह जगत में गतिशीलता लाने का

१. जागरण, परिमल, निराला रचनावली - १ पृ० १७२
२. स्मृति, वही, पृ० १३१ ३. गीत, वही, पृ० १८७

का कार्य करता है। उन्होंने माया को मिथ्या माना है किन्तु इसके व्यापक प्रभाव को स्वीकार किया है। एक ढ़ंग की भ्रान्ति का बोध इससे होता है। देश, काल और निमित्त के माध्यम से यह जीव और ब्रह्म, जगत और ब्रह्म के मध्य द्वैतभाव का आभास कराती है। निराला का विचार इसी भाव को ही व्यक्ति करता है। वे भ्रम को ही माया समझते हैं। भेद बुद्धि (देश काल, निमित्त) के कारण ही माया उत्पन्न होती है; व्यष्टि ओर समष्टि में भेद देखना ही माया है -

'व्यष्टि और समष्टि में नही भेद,
भेद उपजाता भ्रम-
माया जिसे कहते हैं।''[१]

भ्रमित जीवों को ही माया अपने कर-पाश में आबद्ध करके इस संसार का परिचालन करती रहती है। इसका अन्तरण भी होता रहता है, कभी यह हर्ष, कभी विषाद, कभी सुख तो कभी दुःख, कभी मिलन तो कभी विछोह के माध्यम से सबको आबद्ध किये रहती हैं -

'बँधे जीवों की बन माया
फेरती फिरती हो दिन रात
दुःख, सुख के स्वर की काया
सुनाती है पूर्व - श्रुत बात,'[२]

इस माया के जल प्रवाह मे सभी जीव शैवाल जाल की तरह गृहहीन, लक्ष्यहीन और यन्त्र - तुल्य प्रवाहित होते रहते हैं। फिर भी वह अन्त में असीम में जाकर समाहित हो जाता है -

'सलिल प्रवाह में ज्यों बहता शैवाल
गृह-हीन, लक्ष्य - हीन, यन्त्र - तुल्य,
किन्तु परमात्मा की प्रेममयी प्रेरणा से
मिलता है अन्त में असीम महासागर से,'[३]

---

१. पंचवटी प्रसंग, परिमल, निराला रचनावली - १ पृ० ४६
२. स्मृति, वही, पृ० १३०
३. पंचवटी प्रसंग, परिमल, निराला रचनावली - १ पृ० ४२

जब जीव भ्रम का परित्याग करके उर्ध्व मुखी मनः सिथित में आ जाता है, तब वही माया बाधक न हरकर उसकी सहायिका बन जाती है । 'जागरण' कविता मे इसी तरह का भाव आया है ।

विवेकानन्द के गुरु श्रीरामकृष्ण माया का तिरस्कार नहीं करते, निराला भी ऐसा ही करते है। वे जिज्ञासा भाव से माया के भले -बुरे रूपो से जीव को परिचित कराते हैं यदि एक ओर माया जीव को भ्रमित करने वाली , अत्यन्त निष्ठुर विषम - विष वल्लरी, सुख शैय्या - शायी को डसने वाली काल-नागिनी जीर्णजन के सम्मुख अवस्थित वीभत्सता की कटु मूर्ति है तो दूसरी ओर वह कामिनी के सौन्दर्य के समान मुग्ध करनेवाली शक्ति - पथ की गमन - शीलता वसन्त विभावरी सी उदार मन्द समीर की विनोदयमी गंध, श्रृगांर रस की स्फूर्ति सी, नृत्य करती चन्चला नायिका सी, सावन की घन -घटा, विजेता के विजय सी है और अन्त में -

'सृष्टि के अन्तः करण में तू बसी
है किसी के भोग - भ्रम की साधना,
या कि लेकर सिद्धि तू आगे खड़ी
त्यागियों के त्याग की आराधना ? ....
तू किसी के चित्त की है कालिमा
या किसी कमनीय की कमनीयता ?'[१]

निराला की माया सम्बन्धी दृष्टि इस रूप में भी व्यक्त होती है -

तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म
मैं मनमोहिनी माया ।''[२]

इस तरह निराला का माया सम्बन्धी विवेचन भी विवेकानन्द के समान हैं उनकी माया भी भोगों में आसक्त लोगो के लिए कष्टदायिनी ओर अनासक्त भाव से जीने वालो के लिए मंगलमयी भी है । इस रूप में वह परम ब्रह्म की परमसत्ता के लिए प्रेरक का कार्य भी करती है ।

---

१. माया, परिमल, निराला रचनावली - १ पृ० ३२ - ३३
२. तुम और मैं वही, पृ० ३७

क्योंकि इसी के भीतर से इसके पार जाना है -

‘ द्वैतभाव की है भ्रम
तो भी प्रिये,
भ्रम के भीतर से
भ्रम के पार जाना है । ’’[१]

मुक्ति

विवेकानन्द का अद्वैतवाद निराला की कविताओं में स्थान -स्थान पर व्यक्त हुआ है । विवेकानन्द प्रत्येक व्यक्ति को समष्टि का ही एक रूप मानते हैं, जिसे अव्यक्त ब्रह्म कहते हैं किन्तु भ्रम या माया के कारण वह अपना वास्तविक रूप भूल जाता है । निराला भी उनके इस विचार से सहमत हैं कि मानव मूलतः मुक्त है । उस पर जो आवरण पड़ गया है, वह भ्रम के कारण है जब मनुष्य के मस्तिष्क में अथवा हृदय में मुक्त होने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है, तब वह सुप्तावस्था से जागता है और योगियों के साथ रह कर योग सीखता है । उसे तभी मुक्त बोध का अनुभव होता है -

जागता है जीव तब,
योग सीखता है वह योगियों के साथ रह,
स्थूल से वह सूक्ष्म सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो जाता, ...
होता है निश्चय ज्ञान
व्यष्टि तो समष्टि से अभिन्न है,
देखता है सृष्टि - स्थित प्रलय का
कारण कार्य भी है वही -’’[२]

पराम ज्ञान होते ही प्रकृति उसे अष्टसिद्धियाँ देकर सर्वशक्तिमान बना देती है, इस स्थिति में अहंकार की रेखा पार कर समष्टि रूपी ‘सच्चिदानन्दघन’ से मिल जाता है । उसे इस

---

१. पंचवटी प्रसंग, परिमल, निराला रचनावली - १ पृ० ४८
२. वही, पृ० ४६

बात का आभास हो जाता है कि वह मूल रूप में ब्रह्म ही है, जो देश काल और निमित्त के दर्पण द्वारा अधिक प्रत्यक्ष हो उठता है । निराला की 'मुक्ति' सम्बन्धी अवधारणा को हम तीन बिन्दुओं में विभक्त करके देख सकते हैं -

१- साधना से आत्मा - परमात्मा की एकता का बोध कराकर सर्वशक्ति सम्पन्न बना देना ।
२- सर्वशक्तिमान होकर भी अहंकार का न आना ।
३- इनके लिए साधन की आवश्यकता ।

इसके लिए विवेकानन्द की तरह निराला भी कई राहों का उल्लेख करते है । भक्ति ,कर्म, योग और ज्ञान । इन सबके समन्वय या किसी एक के द्वारा ही मुक्ति का अवबोध किया जा सकताहै । वस्तुतः सभी एक ही है भिन्न तो दिखता मात्र है -

'भक्ति - कर्म- योग- ज्ञान एक ही है ।
यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दीखते है।[१]

निराला मुक्ति के लिए 'भक्ति ' को अधिक सरल, सरस और सुलभ मानते हैं -

मुनियों ने मनुष्यों की गति
सोच ली थी पहले ही
इसलिए द्वैतभाव भावुकों में
भक्ति की भावना भरी ।[२]

विवेकानन्द ने भी भक्ति को मुक्ति का सबसे सरल मार्ग बताया है । इस तरह वे वेदान्त और भक्ति के मध्य कोई विरोध नही देखते, निराला पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा था, वे भी इनके मध्य विरोध नहीं देखते । भक्ति के लिए प्रार्थना और स्तुति को विवेकानन्द ने प्रगति का प्रथम सोपान माना है,'' प्रार्थना और स्तुति प्रगति के प्रथम साधन है । भगवान के नाम के जप में चमत्कारी शक्ति है ।[३] निराला की उत्तरवर्ती रचनाओं में भक्ति के लिए स्तुति की यही भावना मुखर रूप में प्राप्त होती है। वे ईश्वर की दिन - रात आराधना करना चाहते है।

---

१. पंचवटी प्रसंग, परिमल, निराला रचनावली - १ पृ० ४८
२. वही
३. विवेकानन्द साहित्य - ३ पृ० २६३

' कृष्ण कृष्ण राम राम,
जपे हैं हजार नाम।........
प्राणों का गमागमन,
है प्रमाण से प्रणाम ।[१]

विवेकानन्द कहते हैं,' प्रार्थना करो कि वह अभिव्यक्ति जो हमारा पिता है, हमारी माता है हमारे बन्धन को काटें ।[२] निराला भी इसी तरह प्रार्थना करते हुये अपने सभी बन्धन रूपी माया का आवरण समाप्त करने के लिए ईश्वर के भजन और प्रार्थना करने के लिए अपने मन को उत्प्रेरित करते हैं -

'भजन कर हरि के चरण, मन!
पार कर मायावरण,मन!'[३]

विवेकानन्द का विचार है,'' प्रार्थना करो,'' मुझे धन और सौन्दर्य, यह लोक अथवा परलोक नहीं चाहिए। हे ईश्वर! हे स्वामी! मैं केवल तुझे चाहता हूँ। मैं थक गया हूँ। हे नाथ, मेरा हाथ पकड़ो। मैं तुम्हारी शरण में हूँ। मुझे अपना दास बनाओ। मेरी रक्षा करो। ''[४] निराला ने इसी भाव को कविताओं में प्रकट किया है -

' माँ, अपने आलोक निखारो,
नर को नरक त्रास से वारो
विपुल दिशावधि शून्य वर्गजन,
व्याधि शयन जर्जर मानव मन,
ज्ञान गगन से निर्जर जीवन,
करुणा करो उतारो, तारो।[५]

विवेकानन्द ने प्रार्थना के बारे में कहा है, 'मैं शब्द (मंत्र) ध्वनि मात्र नहीं है, वरन्

---

१. आराधना - १३२, निराला रचनावली - २ पृ० ४०६
२. विवेकानन्द साहित्य - ३ पृ० २६३
३. अर्चना, गीत संख्या - ८०, निराला रचनावली - २ पृ० ३७८
४. विवेकानन्द साहित्य - ३ पृ० २६३
५. अर्चना, गीत संख्या - १०६, निराला रचनावली - २ पृ० ३९२ - ९३

स्वयं ईश्वर है और वे हमारे ही भीतर स्थित हैं । उस ईश्वर का ध्यान करो, उसकी चर्चा करो । ”[1] निराला का कवि मन भी यही कार्य दिन-रात करता है -

‘ हरि का मन से गुणगान करो,
तुम और गुमान करो न करो।.......
निशि वासर ईश्वर ध्यान करो,
तुम अन्य विमान करो न करो ।[2]

विवेकानन्द की तरह निराला भी परतन्त्रता, अत्याचार, शोषण अन्याय, दमन और भूँख से पीडित मानवों की मुक्ति के लिए दार्शनिकता को सामाजिक सन्दर्भ प्रदान करते हैं । वे उस मुक्ति के समर्थक नहीं है, जिससे मनुष्य का अष्तित्व ही समाप्त हो जाय, इसीलिए वे अपनी अधिवास यात्रा को बीच में ही बन्द कर समाज सेवा की ओर लौट पड़ते हैं , ठीक विवेकानन्द की तरह। एक दुःखी भाई का दुःख दूर करने में जो असीम आनन्द की प्राप्ति होती है, उसी को वे वास्तविक मुक्ति स्वीकार करते हैं -

‘ आनन्द बन जाना हेय है
श्रेयस्कर आनन्द पाना है । ’[3]

दुःख

विवेकानन्द ने दुःख को आत्म-परिष्कार में सहायक माना है, निराला भी इसे स्वीकार करते हैं । दुःख ही जीव को सांसारिक भ्रमजाल से मुक्त होकर आध्यात्मित उन्नति की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है । कड़ी से कड़ी परिस्थिति में भी उन्हें मुक्ति की ही बात सूझती है -

‘ जब कड़ी मारें पड़ी , दिल हिल गया,
पर न कर चूँ भी कभी पाया यहाँ ,
मुक्ति की तब युक्ति से मिल खिल गया
भाव, जिसका चाव है छाया यहाँ ।’[4]

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ३ पृ० २६२
२. अर्चना, गीत संख्या - ४६, निराला रचनावली - २ पृ० ३५८
३. पंचवटी प्रसंग, परिमल, निराला रचनावली - १ पृ० ४२
४. आध्यात्म फल, परिमल, निराला रचनावली - १ पृ० ३०

दुःख को निराला एक ऐसी हथियार के रूप में उपयोग करते है, जो माया के आवरण को समाप्त करके मुक्त होने की चाह पैदा करती है। इसी से व्यक्ति उसके संकेतों को गहराई से समझे -

-'चिन्ताएँ बाधाएँ
आती ही है आये,
अन्ध हृदय है, बन्धन निर्दय लाये,
मैं ही क्या, सब ही तो ऐसे
छले गये,"[१]

व्यक्तिगत दुःख के प्रश्न पर विवेकानन्द का विचार मान्य है, किन्तु मानवता के प्रश्न पर वे ईश्वर पर भी बरस पड़ते हैं -

'यह दुःख वह जिसका नही कुछ छोर है
दैव अत्याचार यह कैसा घोर और कठोर !
क्या कभी पोंछे किसी के अश्रुजल
या किया करते रहे सबको विकल।'[२]

सामाजिक उपेक्षा और तज्जन्य दुःख को निराला कृत्रिम और अपराध मात्र मानते हैं, इसका वास्तविक दुःख से कुछ भी लेना - देना नहीं है। वास्तविक दुःख चरित्र का शोधन कर आत्मा को परिशुद्ध करता है और आत्मज्ञान का आधार तैयार करता है।

प्रेम

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार प्रेम ही सृष्टि के विकास का साधन जीवन का मूल और सच्चिदानन्द है।[३] उन्होनें प्रेम त्रिकोण का वर्णन किया है,जिसमे प्रेम के भयरहित,अप्रतिद्वन्द्वी और क्रय- विक्रय न होने की बात कही है। निराला को इस दृष्टिकोण ने प्रभावित किया, वे भी प्रेम

---

१. वृत्ति, निराला रचनावली - १ पृ० १४०
२. विधवा, निराला रचनावली - १ पृ० ६१
३. प्रेमयोग - स्वामी विवेकानन्द, पृ० १२१

को ईश्वर मानते हैं। उनका प्रेम भी इस संसार में निःस्वार्थ एवं त्यागमय स्वरूप धारण कर संसार का कल्याण करने वाला है-

'तुम प्रेम और मैं शान्ति,.........
तुम प्रेममयी के कण्ठहार..........
तुम ही राधा के मनमोहन..........
तुम शिव हो, मैं हूँ भक्ति'[१]

निराला के प्रेम को घर-परिवार के दायरे मे सीमित नही किया जा सकता, वास्तविकता यह है-

' छोटे से घर की लघु सीमा में
बधे हैं क्षुद्र भाव
यह सच है प्रिय
प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है,
सदा ही निःसीम भू पर '[२]

प्रेम की भावधारा क्षुद्र सीमाओं का अतिक्रमण कर संसार के तुच्छ मनोवेगों को तृण के समान बहा ले जाती है। इसके गम्भीर गर्जन से भोगी लोगों के हृदय काँप उठते है। जीवनाशा के वशीभूत, प्रेमाग्नि की प्रचण्ड ज्वाला से भयभीत लोग' प्रेम सागर' में गोते नही लगा सकते। प्रेम के अनन्य साधक ही 'प्रेम - सिन्धु' में कूदकर प्रेम रूपी अमृत का पान करते हुये अमर हो जाते हैं-

दिव्य देहधारी ही कूदते हैं इसमें प्रिये,
पाते हैं प्रेमामृत
पीकर अमर होते हैं।[३]

प्रेम को आदर्श स्वीकार करते हुये विवेकानन्द इसके लिए किसी की आवश्यकता नही समझते। वे प्रेम को ही विकास और स्वार्थपरता को संकुचन मानते हैं, यह जीवन का मूलमंत्र है। इसीलिए वे कहते हैं, ''प्रेम - केवल प्रेम का ही मैं प्रचार करता हूँ और मेरे उपदेश वेदान्त

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ९ पृ० १९६
२. तुम और मैं, परिमल, निराला रचनावली - १ पृ० ३७ - ३८
३. पंचवटी प्रसंग, परिमल, निराला रचनावली - १ पृ० ३९

की समता और आत्मा की विश्व व्यापकता इन्हीं सत्यों पर प्रतिष्ठित है । '' निराला का प्रेम भी इसी आधार पर अवस्थित है । प्रेम के अभाव में मनुष्य पशुता की और अग्रसर होता है। प्रेम पवित्र होता है और पवित्र चित्त में ही इसका अंकुर फूटता है। चित्त की निर्मलता न होने पर प्रेम व्यर्थ हो जाता है। चित्र की निर्मलता सेवा से ही सम्भव है,इस प्रकार प्रेम एक व्यापक प्रक्रिया से जुड जाता है -

' सेवा से चित्त शुद्ध होती है।
शुद्ध चित्तात्मा में उगता है प्रेमांकुर।
चित्त यदि निर्मल नहीं
तो वह प्रेम व्यर्थ हैं
पशुता की ओर है वह खींचता मनुष्य को ।'[१]

मृत्यु

विवेकानन्द ने शक्ति पौरुष के लिए 'मृत्यु का ध्यान करने, प्रलय को अपनी समाधि में देखने और महाभैरव रुद्र को अपनी पूजा से प्रसन्न करने का आवाहन किया, क्योंकि जो भयानक है, उसकी अर्चना से ही भय बस में आयेगा। सम्भव हो तो जीवन को छोड़कर मृत्यु की कामना करो। इससे निर्भीक व्यक्तित्व विकसित होगा । निराला पर इस दृष्टिकोण का व्यापक प्रभाव था। इसी को उन्होंने अपने जीवन में उतार लिया था,फलस्वरूप वे कभी किसी से, किसी भी परिस्थिति में नही डरे। उनकी अनेकानेक कविताओं में मृत्यु का निडर होकर स्वागत करने वाल विराट व्यक्तित्व देखने को मिल जाता है । निराला ने मरण के बीच ही अदम्य जीवन - स्रोत खोज लिया था, फलतः कभी वे कमजोर नहीं दिखाई पड़ते। वे तो मृत्यु से पूँछते भी है, क्या आगे बढ़कर गले लगाना होगा? उसको मधुर - मधुर जैसा व्यापक सरस विशेषण भी प्रदान करते हैं । निराला अकेले खड़े होकर जीवन की सान्ध्य बेला की आहट सुनते हैं । अपने कई सामयिक साहित्यकारों से अपनी सम्भावित मृत्यु को समीप जानकर स्पष्टतः उसका जिक्र कर देते थे।

---

१. पंचवटी प्रसंग, परिमल, निराला रचनावली - १ पृ० ४८

मृत्यु और जीवन को सनातन और शाश्वत समझने का निराला का दृष्टिकोण ही उन्हें कई मोड़ों पर, कई कोणों पर सबसे अलग और विशिष्ट बना देता है । विवेकानन्द की काली माता कविता में -

मृत्यु छायाएँ सहस्रो
देहवाली धनी काली।.........
नाम है आतंक तेरा
मृत्यु तेरे श्वास में है,[१] का भाव ही निराला की कविता का आवाहन बन जाता है -

भैरव! भेरी तेरी झंझा
तभी बजेगी मृत्यु लड़ायेगी जब तुझसे पंजा,[२]

इसी तरह की विराट भावना ही निराला की अनुभूति को प्रखरता देती है और उनका 'महाप्राण' विशेषण जीवंत एवं सार्थक हो जाता है ।

निराला की कविताओं में मृत्यु के प्रति विशेष रूप से आकर्षण का भाव मिलता है, जिसको हम विवेकानन्द के प्रभाव की परिणति मान सकते हैं, विवेकानन्द मृत्यु की सभी विषमताओं को आत्मसात करने वाला स्वीकार करते हैं । निराला का जीवन विषमता का ही महाकाव्य है , इस महाकाव्य में वेदना का शमन करने के लिए मृत्यु विजय के रूपमें देखी गयी है। इसी भाव को अनेक कवितओं में निराला ने व्यक्त किया है -

मरण को जिसने वरा हैं
उसी ने जीवन भरा है ।[३]
+ + + + + + +
जीवन के रथ पर चढ़कर
सदा मृत्यु पथ पर बढ़कर,
महाकाल के खरतर शर सह
सकूँ ,मुझे तू कर दृढ़तर;[४]

---

१. काली माता निराला रचनावली - २ पृ० २२१
२. आवाहन, निराला रचनावली - १ पृ० ७३
३. मरण को जिसने वरा है, अणिमा से, निराला रचनावली - २ पृ० ८५
४. नर जीवन के स्वार्थ सकल - गीतिका से, निराला रचनावली -१ पृ० २०९

विवेकानन्द का कहना है कि 'जीवन केवल मृत्यु का सपना है । जहाँ जीवन है , वहाँ मृत्यु है ।[१] इसका प्रभाव निराला पर भी पड़ा है , वे मृत्यु का स्वागत करते हैं और माँ से प्रार्थना करते है कि इस जीवन के स्वप्न को यथार्थ कर दें -

उन चरणों में मुझे दो सफल
इस जीवन का करो हे मरण ।[२]

मृत्यु निराला के पास आती है और वह मुस्काराकर उनसे सवाल भी पूँछती है । हँस- हँसकर बातें भी करती है -

धीरे-धीरे हँसकर आयी
प्राणों की जर्जर परछाई।

\+ + + + +

क्या गले लगाना है बढ़कर
क्या अलख जगाना है अड़ - अड़कर
क्या लहराना है झड़ झड़कर
जैसे तुम कह कर मुसकायी ।[३]

विवेकानन्द का विचार है ' कराल की उपासना ! मृत्यु की अर्चना! और सब मिथ्या है । समस्त संघर्ष व्यर्थ है । यही अन्तिम पाठ है।[४] निराला की कविताओं में भी यहीं स्वर सुनवाई पडता है -

मृत्यु है जहाँ, क्या वहाँ विजय !
करती है क्षिति जीवन का क्षय ।

\+ + + + + + +

माया का सुन्दर विछा जाल,
जो सरल वहीं देखा अराल,[५]

वे उन महाशक्ति जगन्माता के चरणों मे जाने के लिए अपने हजार मरणों की बात करते हैं -

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ८ पृ० २५
२. उन चरणों में मुझे दो शरण, अणिमा, निराला रचनावली-२ पृ०४२
३. अर्चना, निराला रचनावली - २ पृ० ३५४
४. विवेकानन्द साहित्य - ८ पृ० १३२
५. मृत्यु है जहाँ ...., बेला से, निराला रचनावली-२ पृ० १५५

मरा हूँ हजार मरण
पायी तब चरण - शरण ।[1]

विवेकानन्द की 'मृत्युरूपिणी मुक्तकुन्तला'[2] कल्पना की तरह निराला ने भी मृत्यु को अनिवार्य और मधुर माना है, जिसके आगमन पर वे स्वागत करने की बात करते हैं , आगे बढकर गले लगा लेने का भाव प्रकट करते हैं, मृत्यु को माया का सुन्दर जाल मानते है और उसके द्वारा स्वयं करने की को दृढ़तर भावना व्यक्त करते हैं और इन सभी रूपों में उनका आकर्षण है, जिससे अन्त में मधुर मृत्यु की कल्पना करते हैं -

मधुर - मधुर मृत्यु मधुर!
सफल जन्म कम्पित उर।
तुम्ही अलकनन्दन - बन छूटे,
दिग्दिगन्त चुम्बित कर फूटे,
गन्ध समीरण टूटे, लूटे
तन्वी तन्वी के अन्तःपुर ।[3]

मृत्यु सम्बन्धी दृष्टिकोण के प्रभाव को हम इस रूप में देख सकते हैं कि निराला ने विवेकानन्द की जिन कवितओं को अनुदित किया है , उनमें मृत्यु सम्बन्धी विचार अवश्यमेव दिखाई पड़ते है। वह 'गाइ गीत शुनाते तोमाय' हो, 'नाचुक ताहाते श्यामा' हो या 'काली माता' सबमें यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है ।

(ख) एवं विश्वबोध का प्रभाव

विवेकानन्द के चिन्तन में मानव मात्र के कल्याण की भावना मिलती है । उन्होंने स्पष्ट रूप में यह प्रमाणित किया कि मानवीय संवेदना, प्रेम, सेवा एवं सद्भावना का अद्वैत दर्शन से किसी प्रकार का द्वन्द्व नहीं है । वस्तुतः उनका नववेदान्त मानवता से इतना रच - पच गया है

---

१. मरा हूँ हजार मरण - १२६, आराधना, निराला रचनावली - २ पृ० ४०३
२. नाचे उस पर श्यामा, निराला रचनावली - १ पृ० ३७३
३. मधुर मधुर मृत्यु मधुर - २३५, गीत कुंज, निराला रचनावली - २ पृ० ४५९

दोनों में अभेद दिखने लगता है। मानव में निराला की आस्था भी अचल रही। इसी दृष्टिकोण के कारण उन्होंने मानव-मानव में कभी विभेद नही किया। दीन-हीन, दलित लोगों के प्रति उनकी करुणा देखते ही बनती थी। मानवीय मूल्यों के प्रति निराला बहुत सजग थे, इसके क्षय पर उनका चुप रहना भी असंभव था। श्रीरामकृष्ण मिशन से उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध था, जो मानवीय सेवा के प्रति समर्पित संस्था थी, विवेकानन्द के विचारो का प्रत्यक्ष प्रभाव निराला पर पड़ना शक्य था, क्योंकि संवेदना और बुद्धि दोनो स्तर पर विवेकानन्द का सन्देश तार्किक और मार्मिक था। ''समन्वय'' के संपादन से जुड़ने के बाद वातावरण ने उत्प्रेरक का कार्य किया।

निराला की कविताओं का मुख्य स्तर मानवतावादी है। विवेकानन्द के ''आत्मनो मोक्षार्थ जगत् हिताय च'' का गहरा प्रभाव उनकी रचनाओं में देखा जा सकता है। गरीबों की हालत देखकर कवि का संवेदनशील हृदय चीत्कार कर उठता है -

''तड़पता है पड़ा, सूरज उगलता आग जब उस पर,
कलेजा थामकर कहता, गरीबों पर रहम अब कर।''[१]

निराला का काव्य अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा आदि शब्दो को मानव की एकता को विखण्डित करने वाला मानते हुये इसे रोकने को प्रतिबन्द्ध दिखाई देता है। वे प्रत्येक व्यक्ति को समानता के स्तर पर प्रस्थापित करते हैं, उनके बीच भेद को अवास्ततिक और कृत्रिम मानतें हैं। इसी भेद की निस्सारता दिखाने के लिए निराला ने भूखे व नंगे लोगों में सच्चे मानव धर्म का रूप देखा है। इसीलिए उनकी दृष्टि भिक्षुक की ओर जाती है -

''वह आता -
दो टूक कलेजे के करता पछताता
पथ पर आता।''[२]

वह भिक्षुक इतना दुर्बल है कि उसके पेट और पीठ मिलकर एक हो गये हैं, जो लाठी टेकते हुये चल रहा है। मात्र दो मुट्ठी अन्न के लिए, जिससे भूँख मिट सके - फटी हुई

---

१. गरीबों की पुकार, निराला रचनावली -१ पृ० ५७
२. भिक्षुक, परिमल वही पृ० ६४

पुरानी झोली फैलाता है। उसके साथ हाथ पसारे दो बच्चे भी हैं, जो बाएँ हाथ से पेट मल रहे हैं, और दाहिने हाथ से दया-दृष्टि की याचना कर रहे हैं। भूख से जब ओठ सूख जाते हैं, तब वे आँसुओं का घूँट पीकर रह जाते हैं। कविता का अन्तिम दृष्य इतना मार्मिक है कि हृदय काँप उठता है और सारी मानवता का अवसान हो जाता है -

'चाट रहे जूठी पत्तल वे सभी सड़क पर खड़े हुये,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुये।'[१]

''दीन '' कविता में भी निराला का मानवतावादी स्वर सुनाई पड़ता है। इसमें व्यक्ति उत्पीड़न का शिकार है, वह सब कुछ सह जाता है। दुर्बल हृदय से हम सब के प्राणों में स्पन्दित अपनी व्यथा कथा करुण ढंग से कहता है -

'उत्पीड़न का राज्य, दुःख ही दुःख,
यहाँ है सदा उठाना
क्रूर यहाँ पर कहलाता है शूर
और हृदय का शूर सदा ही दुर्बल क्रूर;
स्वार्थ सदा ही रहता परार्थ से दूर'[२]

विवेकानन्द ने धर्म को दीन-दुखियों को सेवा से जोड़कर देखा और "जीव ही शिव है" का ध्येय सामने रखा; जिससे उनकी यह दृष्टि मानवता के प्रति पूर्ण समर्पित हो जाती है। धर्म के आडम्बर के प्रश्न को फलीभूत करते हुये 'दान' कविता के सृजन में इसी मनोभूमि का परिचय मिल जाता है; जिसमें कवि अपने सामने ही मानवता के प्रति धार्मिक प्रपंच के कठोर बर्ताव को देखता है। निराला के इस प्रसंग को हम विवेकानन्द के समय प्लेग व अकाल की परिस्थिति में गोरक्षा एवं संघ के एक संचालक से भेंट के प्रसंग को जोड़कर देख पाते हैं, जो अकालादि को मानव के पाप का परिणाम मानते हैं और मात्र गो-रक्षण से सम्बन्धित क्रिया-कलाप में रुचि रखते हैं, जिनके ऊपर कुपित हो विवेकानन्द कह उठते हैं, ''जो सभा-समिति मनुष्यों से सहायता नहीं रखती,............उस सभा-समिति से मैं लेशमात्र भी सहानुभूति नहीं रखता।''[३] उसी भाव को

---

१. भिक्षुक, परिमल, निराला रचनावली -१ पृ० ६५
२. दीन वही पृ० १२५
३. विवेकानन्द साहित्य -६ पृ० १०

'दान' कविता में निराला ने प्रकट किया है। कवि प्रातः काल की रमणीय बेला में भ्रमण करते हुए गोमती नदी के पुल पर खड़ा हुआ प्रकृति के सौन्दर्य व नियम का अनशीलन कर रहा है, जिससे भाव बनता है कि प्रकृति की सभी कृतियों में मानव सबसे श्रेष्ठ और धन्य है- 'सबमें है श्रेष्ठ धन्य मानव', उसी समय दूसरे तरफ का दश्य कुछ इस तरह है-

'बहुसंख्यक बैठे हैं बानर।
एक ओर पथ के कृष्णकाय
कंकालशेष नर मृत्युप्राण
बैठा सशरीर दैन्य दुर्बल,
भिक्षा को उठी दृश्टि निश्चल,
अति क्षीण कण्ठ, है तीव्र श्वास,
जीता ज्यों जीवन से उदास।
ढोता जो, वह कौन सा शाप
भोगता कठिन कौन-सा पाप
यह प्रश्न सदा ही है पथ पर,
पर सदा मौन इसका उत्तर !'[१]

मानवता के प्रश्न पर यह भाव विवेकानन्द के मानवता सम्बन्धी विचारों का काव्य रूपान्तरण ही प्रतीत होता है। 'मानव' दया का उदाहरण बन कर एक-एक पैसे के लिए आशा भरी नजरों से देख रहा है। उसी समय कवि को आशा की एक रेखा दिखाई पड़ी, उनके पड़ोस के एक विप्रवर स्नान करने के बाद शिव को जल, दुर्वादल, तण्डुल और तिल आदि चढ़ाते हैं। वे ब्राह्मण रामभक्ति के साथ शिव को भी बारहों महीने भजते हैं। रामायण का पारायण एवं श्रीमन्नारायण का भजन भी नित्य करते हैं। उन्हें देखकर वानर तत्पर हो चले ; ब्राह्मण भी कष्टापन्न स्थिति में कवियों के सामन ही हाथ जोड़ा करते हैं और

झोली से पुए निकाल लिये
बढ़ते कपियों के हाथ दिये;
देखा भी नहीं उधर फिरकर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर
चिल्लाया किया दूर दानव,
बोला मैं- "धन्य श्रष्ठ मानव!"[२]

---

१. दान, द्वितीय अनामिका, निराला रचनावली - १ पृ० २९०
२. वही पृ० २९१

निराला के लिए यह दृश्य अति संवेदनशील और मानवता पर प्रश्न चिह्न उठाने वाला है । 'दान' के वास्तविक पात्र को 'दानव' कहना और बन्दरों को पुए खिलाना धर्म की विडम्बना नहीं तो क्या है ? विवेकानन्द का मानव धर्म कवि के संस्कार में रच-पच गया ह । मानव का दूसरे मानव के प्रति इसी दृष्टिकोण को निराला की एक कविता में पूरी दृढ़ता के साथ उठाया गया है । 'भीख माँगता है अब राह पर' कविता में भी एक भिक्षुक का ही वर्णन है, जिसे समाज का प्रतिनिधि वर्ग अपने-अपने नजरिये से देखता है। मुट्ठी भर के आदमी पर बनिये की दृष्टि पड़ती है जो उसे 'कल का वरदान' कहता है, एक शिक्षित उसे 'छोटा भूधर' बताता है, कारीगर ने कहा कि यह 'आदमी की छड़ी बनने योग्य' है, जिसे लेकर भगाने का कार्य किया जा सकता है । एक तरुणी उसे देखकर 'सड़ी कामना' कहकर उसकी अपेक्षा खुद को बहुत सुन्दर कहती है । एक दृष्टि उसके ऊपर एक महाराज की पड़ती है-

'एक आँख पड़ी महाराज की,
कहा, देख ली है स्तुति ब्याज की,
मानव का सच्चा है यह घर ।'[१]

कवि का मानवता के प्रति आग्रह यहाँ व्यक्त हो जाता है। इस तरह का भाव उनकी प्रसिद्ध कहानी 'देवी' में भी इसी रूप में मिल जाता है । धार्मिक प्रवचन सुनकर लौट रहे लोगों का पगली के प्रति दृष्टिकोण इस भिक्षुक के प्रति नजरिये से साम्य रखता है। विवेकानन्द का विचार 'जीव ही शिव है' , 'नर ही नारायण है', 'मनुष्य ही जीवंत ईश्वर है' और 'मानव सेवा ही ईश्वर सेवा है' निराला के लिए आदर्श का काम करता है उनकी कविताओं में दीन-हीन, भूखे-प्यासे, दलित और समाज के उपेक्षित लोगों के प्रति विशेष आकर्षण के मूल में विवेकानन्द की विचार धारा कार्य करती है । ऐसे समय निराला की सहृदयता एवं मानवीयता हृदय से फूटकर वाणी का रूप धारण कर लेती है और कविता का जन्म होता है-

'वेश-रुखे, अधर-सूखे, पेट-भूखे, आज आये।
हीन जीवन, दीन-चितवन, क्षीण आलम्बन बनाये।'[२]

---

१. भीख माँगता है। अब राह पर, बेला, निराला रचनावली -२ पृ० १२६
२. वेश - रूखे, अधर- सूखे, वही पृ० १२८

पीड़ित, शोषित जनता का स्वर निराला की कविताओं में मुखर रूप में प्राप्त होता है । लोक वेदना के साथ ही कवि की वेदना भी सम्पृक्त हो जाती है एवं गहन स्वरूप धारण कर लेती है। निराला का स्वर भी बदल जाता है ; वे प्रखर ढंग से विरोध करते हैं, बन पड़ा तो सीधे-सीधे, नहीं तो व्यंग्य के रूप में प्रतीकों के माध्यम से। 'उद्बोधन' , 'कुकुरमुत्ता', 'झींगुर डटकर बोला', 'महगू महगा रहा' आदि कविताओं में यह भाव सामने आता है । जनता के दुःख-दर्द में वे कराह उठते हैं-

'काले-काले बादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल।........
मँहगाई की बाढ़ बढ़ आयी, गाँठ की छूटी कमाई,
भूखे-नंगे खड़े शरमाये, न आये वीर जवाहरलाल।"[१]

'वे मूलतः मानवतावाद के कवि हैं, इसीलिए लगभग एक ही समय में 'तुम और मैं' और 'भिखारी' जैसी कविताएँ लिखते हैं ।' इसीलिए शोषित-पीड़ित जनता के प्रतीक 'कुकुरमुत्ता' में कुलीनता के प्रतीक गुलाब को जमकर लताड़ते हैं क्योंकि खून चूसने वाले अमानवीय और शोषक होते हैं । वे कुकुरमुत्ता को मौलिक एवं वास्तविक बताकर मानवीय विषमता को समाप्त करना चाहते हैं । विवेकानन्द के मानववाद के लौकिक स्थूल एवं अतिथथार्थवादी संस्करण के प्रतीक के रुप 'कुकुरमुत्ता' कविता का मूल्यांकन किया जाना चाहिए । इसी तरह निराला की एक और कबिता 'बादल-राग'में भी क्रान्ति एवं विद्रोह के प्रतीक के द्वारा पीड़ित मानवता की रक्षा का आवाहन किया गया है । आर्थिक विपन्नता को झेल रहे किसानों के लिए बादल का आगमन एक वरदान की तरह होता है, जिससे शुष्क और रिक्त कृषक अपनी अवदशा को समाप्त करने की दिशा में गतिशील होते हैं । जीर्ण बाहु और शीर्ण शरीर वाले किसान के लिए निराला बादलों को बुलाते हैं -

'जीर्ण-बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर !
चूस लिया है उसका सार
हाड़-मात्र ही है आधार
ऐ जीवन के पारावार!"[२]

---

१. काले काले बादल छाये, बेला, निराला रचनावली -२ पृ० १३२
२.बादल राग, परिमल, निराला रचनावली -१ पृ० १२४

मानवीय सेवा का आदर्श उपस्थित करती उनकी एक कविता है 'सेवा-प्रारम्भ,' जिसके नायक विवेकानन्द की विचारधारा के प्रतिनिधि और गुरु भाई स्वामी अखण्डानन्दजी ' हैं। कविता के प्रारम्भ मे कवि ने इनका संक्षिप्त परिचय दिया है , 'स्वामी अखण्डानन्दजी की इस सेवा के समय स्वामी विवेकानन्दजी थे । स्वामी अखण्डानन्दजी ने ही स्वामी विवेकानन्दजी को पीड़ित जन-नारायणों की सेवा के लिए प्रवृत्त किया था।'[१] उनकी मानवीयता को सम्पूर्ण आलोक में कवि ने देखा और समझा है। अकाल का वातावरण है, अन्न के लिए लोग तरस रहे हैं-

'पड़ा है अकाल'
लोग पेट भरते हैं खा-खाकर पेड़ों की छाल।
कोई देता नही सहारा '[२]

कुछ बच्चे उन्हें घेर लेते हैं और खाने की इच्छा प्रकट करते हैं। पास बचे हुये चार आने पैसे का चूड़ा खरीदकर सबको खिलाते हैं । एक बच्चा उन्हें पास रहने वाली बीमार बुढ़िया की सूचना देता है, स्वामीजी उसकी सेवा के लिए अथक प्रयास करते हैं-

भीख माँग बड़े-बड़े घरों से।
लिखा मिशन को भी
दृश्य और भाव दिखा जो भी।
खड़ी हुई बुढ़िया सेवा से,
एक रोज बोली-"तुम मेरे बेटे थे उस जन्म के ।"
स्वामीजी ने कहा,-
"अबके भी हो तुम मेरी माँ।"[३]

विवेकानन्द के गुरु भाई स्वामी अखण्डानन्दजी की यह सेवा निराला के लिए अतीव प्रेरणास्पद बन पड़ी और वे बहुत मनोयोग से इसे काव्य का विषय बनाते है और मानवीय सार्थकता को नवीन सर्जना से स्पर्श करते है। "निराला महान मानव है। मानवता की अनेक सदवृत्तियाँ एक ही स्थल पर एकत्रित हो गई हैं-। उदारता, सरलता, स्पष्टवादिता, निष्कपटता और सदाशयता की ये मूर्ति हैं।'[४]

---

१. सेवा प्रारम्भ, द्वितीय अनामिका - निराला रचनावली - १ पृ० ३३३
२. वही, पृ० ३३८ ३. वही पृ०३३९
४. क्रान्तिकारी कबि निराला - बच्चन सिंह, पृ० २२५

वस्तुतः निराला के लिए मानवतावाद एक सहज, सरल धर्म के रूप में है, उनका काव्य इसी मानव धर्म का जीवंत प्रतिपादन है । इसके माध्यम से मानव मात्र के कल्याण का कार्य प्रशस्त करना ही उनका उद्देश्य है, इस दृष्टि से उनका समस्त काव्य दर्शन मानव मूल्यों पर आधृत है, जिसकी रक्षा के लिए निराला पूर्ण समर्पित सकंल्प का परिचय देते है । क्रान्तिकारिता एवं आक्रोश का प्रकटीकरण भी युगीन परिस्थिति के प्रभाव का अभिव्यजंक है । तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन का वातावरण कभी-कभी उन्हें उद्वेलित भी कर देता था और वे संयम व धैर्य नहीं बनाये रख पाते थे, किन्तु फिर भी उनका मानवतावादी काव्य नववेदान्त की प्रतिच्छाया में ही विचरण करता है । इसी सन्दर्भ को डा० राम विलास शर्मा के इन विचारों से और अधिक स्पष्ट कर सकते हैं "निराला ने साहित्य में जिस मानवतावाद की प्रतिष्ठा की, उसके विकास का इतिहास भारतीय जन आन्दोलन के उतार-चढ़ाव का इतिहास है।........ दूसरे महायुद्ध के दौरान और उसके बाद एक नई क्रान्तिकारी भावना निराला के मानवतावाद में घुल-मिल जाती है । करुणा से अधिक इसमें आक्राश है ; दुःख की अनुभूति से अधिक इसमें सामूहिक संघर्ष की ललक है।"[१] कालान्तर में यही प्रवृत्ति आराधना में बदल जाती है और मानव के प्रति आस्था और मानव-मूल्यों की रक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना करना ही कवि का काम हो जाता है, जिसे हम उम्र और मानसिक परिवर्तन की प्रवृत्ति से जोड़कर देखें तो इसे समझ पाना सहज, सरल और आसान होगा।

विवेकानन्द के सन्दशों का उत्स 'मानवता ' है और निराला के भी विचारों का केन्द्र 'मानव' है । इस विस्तृत अर्थ वाले शब्द में व्यक्ति समाज, राष्ट्र और विश्व सभी का बोध हो जाता है । इन अर्थो में इनका आपस में कोई द्वन्द्व या विरोध नहीं है,उदात्त विचारों से किया गया कार्य मानव को हर एक समय में मानव का भी ध्यान रखकर कार्य करते रहने की प्रेरणा देता है । प्रत्येक जाति के लोग, प्रत्येक धर्म के लोग, प्रत्येक राष्ट्र के लोग संकीर्ण स्वार्थो से परे हटकर केवल मनुष्य बनने के लिए कार्य करें तो सम्पूर्ण विश्व का उद्धार हो सकता है-

'फूटी ज्योति विश्व में, मानव हुये सम्मिलित,
धीरे-धीरे हुये विरोधी भाव तिरोहित,
फूटे शत-शत उत्स सहज मानवता जल के
यहाँ वहाँ पृथ्वी के सब देशों में छलके ;'[२]

---

१. निराला की साहित्य साधना - २ पृ० १६५
२. भगवान बुद्ध के प्रति, अणिमा, निराला रचनावली - २ पृ० ३६

निराला विश्व-बन्धुत्व और विश्व की एकता के भी समर्थक हैं । सम्पूर्ण विश्व में एक ईश्वर की व्याप्ति और धर्म, जाति, वर्ग आदि के आधार पर मानव-मानव में विभेद उन्हें अस्वीकार्य है । विवेकानन्द के विश्व बोध से भी वे प्रभावित थे । वर्तमान मानव में जिस तरह की संकीर्णता फल-फूल रही है, उससे मानवता का हित कितना सुरक्षित है, यह मूल प्रश्न निराला के अन्तर्मन को सालता रहा -

'आज लक्ष्य में है मानव के, स्थल-जल-अम्बर
रेल-तार-बिजली - जहाज नभयानों से भर
दर्प कर रहे हैं मानव, वर्ग से वर्गगण,
भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विचक्षण।"[१]

भगवान बुद्ध के आविर्भाव की प्रासंगिकता को निराला ने समसामयिक सन्दर्भ से जोड़कर देखा है । उनका सन्देश वर्तमान मानव के लिए और अधिक उपादेय हो गया है । 'उद्बोधन' कविता में जहाँ राष्ट्रीय जागरण की बात कही गई है, वहीं उनका विश्व बोध भी प्रकट हो जाता है, क्योंकि राष्ट्रीयता की सिद्धि के अनन्तर ही विश्वबोध उत्पन्न होता है -

'विश्व मानवता के
राजनीति-धर्मनीति ....
विश्व के जीवन से ; ....
+ + + + + + +
नहीं आज का यह हिन्दू
आज का मुसलमान
आज का ईसाई सिक्ख
सत्य है मनुष्य का
मनुष्यत्व के लिए"[२]

---

१. भगवान बुद्ध के प्रति, अणिमा, निराला रचनावली - २ पृ० ३५
२. उद्बोधन, वही पृ० ६६

(ग) राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम का प्रभाव

विवेकानन्द ने परिव्राजक के रूप में सम्पूर्ण भारत का भ्रमण कर के राष्ट्र के रूप में भारत की प्राणवत्ता और जीवंतता का प्रत्यक्षतः अवलोकन किया था। वे राष्ट्रीय चेतना के अभाव को समझते हुये, उसके कारक तत्त्वों का उल्लेख करते हुये राष्ट्रीय जीवन में कुछ परिवर्तन की बात करते हैं। निराला ने भी उन्हीं विचारों को अपनी कविताओं में ओजस्वी ढंग से उठाया। विवेकानन्द भारत को एक सजीव प्राणी के रूप में देखते है; निराला के लिए भी देश 'माँ' हैं और सरस्वती माॅ से इस माँ के लिए प्रार्थना करते हैं -

'भारति, जय विजय करे !
करक -शस्य- कमल धरे !
लंका पदतल शतदल
गर्जितोर्मि सागर-जल,
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे।"[1]

चेतना का अभाव निराला के लिए राष्ट्रीयता का प्रमुख बाधक तत्व है और इसी चेतना को पुनः प्राप्त करने के लिए अपनी कविताओं में बार-बार जागरण का सन्देश देते हैं। उनकी 'दिल्ली', 'उद्बोधन', 'बादल-राग', 'स्वाधीनता पर', 'जागो फिर एक बार' 'जागरण', 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'तुलसीदास' आदि अनेक कविताओं में इसी राष्ट्रीय जागरण की आवश्यकता पर बल दिया गया है। अनेक 'प्रार्थना' गीतों में भी देश के जागरण और तज्जन्य उत्थान की भावना मिलती है। विवेकानन्द के राष्ट्रीय गौरव के उद्घोष और नवजागरण के सन्देश का निराला पर व्यापक प्रभाव पड़ा था। सांस्कृतिक गौरव का वही आवाहन कई कविताओं का मुख्य स्वर है

'भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे-तमस्तुर्य दिङ्.मण्डल

---

१. भारति, जय, विजय करे, गीतिका, निराला रचनावली - १ पृ० २३२

उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान
है ऊर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल।"[1]

भारत के सांस्कृतिक सूर्य के पतन के सन्दर्भ में निराला ने लगातार देश की अवनति को दृष्टि में रखा और कई लम्बी कविताओं में व्यक्त भी किया। राष्ट्रीयता के ह्लास के लिए ऊँच -नीच की भावना को एक मुख्य कारण मानते हुये सभी वर्गों में समानता एवं समरसता स्थापित करना उनका ध्येय था। भारतीय राष्ट्र के बार-बार पराभूत होने का एक कारण विशाल जनसमूह का राष्ट्र की मुख्य धारा से विलग रहना है, जब तक ऐसे लोग जाग्रत नहीं होते, तब तक हम स्वप्न में भी पराधीन रहेंगे-

'मेरे साथ मेरे विचार -
मेरे जाति -
मेरे पददलित -
मौन हैं-निंदित हैं-
स्वप्न में भी पराधीन'[2]

भारतीय संस्कृति के गौरव का एक और उद्घोष उनकी प्रथम प्रकाशित कविता 'जन्मभूमि' से ही हो जाता है, जहाँ भारत की भौगोलिक विशेषताओं और विविधता का व्यापक चित्र उकेरा गया है। निराला की 'जन्मभूमि' शोभामय, शान्तिनिलय,मुक्त बन्ध, घनानन्द, पाप-ताप हारी और मृदुमंगलकारी है और -

'मुकुट शुभ्र हिमागार।
हृदय बीच विमल हार -
पंचासिन्धु ब्रह्मपुत्र रवितनया गंगा।
विन्ध्य विपिन राजे घन घेरि युगल जंघा।
वधिर विश्व चकित भीत सुन भैरव वाणी।
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी ॥'[3]

---

१. तुनसीदास, निराला रचनावली - १ पृ० २६७
२. स्वाधीनता पर, वही, पृ० १२१
३. जन्त भूमि, वही, पृ० २९

निराला 'राम की शक्तिपूजा' में एक बार पुनः सांस्कृतिक दृष्टि से मूल्यों की बात उठाते हैं। भारत का सनातन धर्मबोध शाश्वत है, अतएव उसकी विजय अवश्यम्भावी है। धर्म और अधर्म के बीच युद्ध में शक्ति का अधर्म की ओर चले जाना; भारतीय राष्ट्र की गतिहीनता का द्योतक है। मौलिक कल्पना के अभाव से ही ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है और शक्ति के प्रतिहस्तांतरण के लिए राष्ट्र को अभिनव सोच की भावना से ही विजय पथ की ओर ले जाया जा सकता है। इसीलिए निराला सब कुछ नवीन करने की प्रार्थना करते हैं -

'नवगति, नवलय, ताल-छन्द नव,
नवल कण्ठ, नव जलद-मन्द्ररव;
नव नभ के नव विहग वृन्द को
नव पर, नव स्वर दे!"[१]

भारतीय जनता को अज्ञान के अन्धकार से बाहर करने के लिए मौलिक भावों का आश्रय लेकर जागरण को ही निराला आवश्यक व वास्तविक समझते हैं। 'तुलसीदास' कविता में निराला पूरी की पूरी जागरण यात्रा करते हैं, जिसमें 'वीरो का गढ़, वह कालिजंर', 'नीली उस यमुना के तट पर', 'करना होगा यह तिमिर पार', 'धीरे-धीरे वह हुआ पार', 'जागा-जागा संस्कार प्रबल' जैसे पड़ाव पड़ते हैं और मंजिल पर सन्देश देते हैं -

'जागो जागो आया प्रभात,
बीती वह बीती अन्ध रात' ....
आती भारत की ज्योतिर्धन महिमाबल।"[२]

निराला की कविताओं में जागरण का यही भाव, कई जगह प्रकृति के रूप में भी व्यक्त होता है। 'बादल राग' में बादल भी किसी न किसी रूप में यही भाव व्यक्त करता है; 'प्रपात के प्रति' कविता में भी क्षुद्र मानव को जागृति व्यक्ति के तौर पर विवेचित किया गया है; 'प्रथम प्रपात' में भी जागरण की बात है -

---

१. वर दे, वीणा वादिनि वर दे !, गीतिका, निराला रचनावली - १ पृ० २११
२. तुलसीदास, वही, पृ० २८७

'जग कर मैंने खोला अपना द्वार,
पाया मुख पर किरणों का अधिकार।'[1]

प्रकृति के माध्यम से चेतना की यही प्रेरणा एक और जगह पर प्राप्त होती है, जहाँ निराला की प्रकृति प्रत्यक्ष तौर इससे सम्बद्ध हो जाती है और मानव इससे काफी कुछ प्रेरणा ले सकता है -

'हरे हरे ये पात,
डालियाँ, कलियाँ कोमल गात।
मैं ही अपना स्वप्न-मृदुल-कर
फेरूँगा निद्रित कलियों पर
जगा एक प्रत्यूष मनोहर।'[2]

इससे भिन्न निराला 'जागो फिर एक बार' कविता में प्रकृति के साथ ही साथ इतिहास एवं वेदान्त को भी जागरण के लिए उत्प्रेरक बताते हैं। प्रकृति वहाँ भी शिक्षा देती है -

'प्यारे जगाते हुये हारे सब तारे तुम्हें
अरुण - पंख तरुण किरण
खड़ी खोलती है द्वार -
जागो फिर एक बार !'[3]

उससे भी अधिक प्राणवंत भूमिका के मध्यकालीन वीर इतिहास पुरुष गोविन्द सिंह' का दृष्टान्त भी निराला सामने रखते हैं, जिनके तेज से औरंगजेब रूपी काल नष्ट हो जाता है -

'सत् श्री अकाल,
भाल -अनल धक-धक कर जला,
भस्म हो गया था काल-
तीनों गुण- ताप त्रय,
अभय हो गये थे तुम
मृत्युंजय व्योमकेश के समान,
अमृत-सन्तान! तीव्र'[4]

---

१. प्रथम प्रपात, परिमल, निराला रचनावली - १ पृ० ९७
२. ध्वनि, वही, पृ० ११४
३. जागो फिर एक बार, वही पृ० १३६ ४. वही, पृ० १४१-१४२

विवेकानन्द ने भी बार-बार भारतीयों को 'अमृत-पुत्र' का सम्बोधन किया है और इसके माध्यम से जागरण की कामना व्यक्त की है। निराला बाद मे अमृत-सन्तानों के लिए 'योग्य जन जीता है, पश्चिम की उक्ति नहीं, गीता है, गीता है" का सन्देश देते हैं और बाद में वहाँ दर्शन भी ला देते हैं -

'सब माया है - माया है,
मुक्त हो सदा ही तुम,
बाधा - विहीन बन्ध छन्द ज्यों,
डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द रूप ....
तुम हो महान्, तुम सदा हो महान्,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पद-रज-भर भी है नहीं
पूरा यह विश्वभार-''
जागो फिर एक बार!''[2]

विवेकानन्द का विचार था, '' नही; ऐसा मत सोचो। जिस राष्ट्र का कोई अपना इतिहास नहीं है, वह इस संसार में अत्यन्त हीन और नगण्य है। .... इसी तरह राष्ट्र का गौरवमय अतीत राष्ट्र को नियन्त्रण में रखता है।'' इसी विचार की प्रेरणा निराला की कविताओं में देखी जा सकती है। वे अतीत बोध सम्पन्न राष्ट्रीयता के वाहक बनकर देश के लोगों में आत्मबल और आत्मविश्वास की भावना भरना चाहते थे। 'दिल्ली' के सांस्कृतिक इतिहास का उल्लेख इसी सन्दर्भ में करते हैं -

'क्या यह वही देश है-
भीमार्जुन आदि का कीर्तिक्षेत्र,
चिरकुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्य दीप्त ....
श्रीमुख से कृष्ण के सुना था जहाँ भारत ने
गीता -गीत - सिहंनाद-'[3]

---

१. जागो फिर एक बार, निराला रचनावली - १ पृ० १४२
२. वही, पृ० १४२ - १४३
३. दिल्ली, द्वितीय अनामिका, वही पृ० ८७

'महाराज शिवाजी' का स्थान भारत के इतिहास में गौरवपूर्ण है । औरंगजेब की धर्मान्धता और साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के खिलाफ डट कर विरोध करने वाले शिवाजी वीरता, मानवता एवं शौर्य के प्रतिनिधि महापुरुष हैं । इन्होंने जयपुर के मिर्जा राजा जय सिंह को मानवीयता और आत्म गौरव का ज्ञान देने एवं सोई हुई चेतना जगाने के लिए एक पत्र लिखा। निराला ने उसी पत्र में मौलिकता एवं अपनापन लाते हुये कविता का रूप दे दिया। कविता में जयसिंह को लिखा गया है कि वे महाराज जसवन्त सिंह , राजसिंह और छत्रसाल के साथ मिलकर एक वृहद संगठन के द्वारा साम्राज्यवाद और अत्याचार का साहसपूर्ण ढंग से सामना करें; इसको हम प्रतीक रूप में राष्ट्रीय आन्दोलन की सभी शक्तियों के एकीकरण से जोड़कर देख सकते हैं । सभी की सम्मिलित शक्ति से ही राष्ट्रीय एकता को मजबूत किया जा सकता है, जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिलेगा और आदर्श की संस्थापना भी हो पायेगी-

'संगठित हो जाओ
आओ बाहुओं में भर
भूले हुये भाईयां को,
अपनाओ अपना आदर्श तुम ।"[१]

विवेकानन्द ने वैदिक साहित्य, विशेष रूप से उपनिषदों से प्रेरणा लेने को कहा; उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य, वरान्नि-बोधत्' आदि अनेक विचार उनके लिए 'आदर्श नारे' का काम करते हैं। निराला के लिए भी वेद ज्ञान का आदर्श व्यक्तित्व की व्यापकता और विचार धारा के विस्तृत धरातल के लिए प्रेरक का कार्य करता है। बुद्ध के सन्देशों की सातत्यता और उनकी मानवीयता भी निराला को आकर्षित करती है; विवेकानन्द तो बुद्ध के दासों के भी दास बनने की इच्छा प्रकट करते हैं । इस प्रकार से ऐतिहासिक सातत्यता सम्बन्धी निराला के विचारों का उत्स विवेकानन्द ही दिखाई पड़ते है-

' जो वैदिक ज्ञान, तथागत का निर्वाण वहीं,
जो धरा वहीं विचारधारा की रही मही,
देशकाल औ' पात्र के भेद से भिन्न वेद
प्रेम जो हुआ ज्यों वहीं बदलकर प्रियच्छेद।"[२]

---

१. महाराज शिवाजी का पत्र, परिमल निराला रचनावली -१ पृ० १५४-५५
२. सहस्राब्दि , अणिमा, निराला रचनावली -२ पृ० ८१

विवेकानन्द स्वाधीनता को विकास की पहली शर्त बताते हैं और मनुष्य की स्वाधीनता के लिए 'मुक्ति' जैसे व्यापक शब्द का प्रयोग करते हैं। वे भारतीय देवी-देवताओं को अगले पचास वर्षों के लिए भूल जाने की बात करते है; उनके इस कथन के ठीक पचास वर्षों के बाद भारत स्वतन्त्र भी हो जाता है। निराला रूपी सूर्य का उदय, विवेकानन्द रूपी परम सूर्य के अस्त होने से कुछ पहले ही हो गया था, जिससे भारतीय रवि का अस्त नहीं होने पाया। निराला ने स्वाधीनता के सन्दर्भ में विवेकानन्द की व्यापक विचारधारा को ही आगे बढ़ाने का कार्य किया। निराला को स्वतन्त्रता की प्रथम शिक्षा प्रकृति से ही प्राप्त हुई। मानव भी प्रकृति की तरह स्वतंत्र पैदा हुआ और उसकी मृत्यु भी मुक्त वातावरण में ही होनी चाहिए-

'पल्लव जब आये थे,
आये स्वाधीन
जाते हैं अपनी इच्छा से मुक्त स्वाधीन।"[१]

निराला की इसी कविता की एक पंक्ति 'जानता हूँ एक बस स्वाधीन शब्द', विवेकानन्द के 'स्वाधीनता विकास की पहली शर्त है'; का काव्यान्तरण कहा जा सकता है, जिसे कई दृष्टान्तों से बार-बार सिद्ध भी करते हैं -

'भ्रमर का गुंजार,
वह भी स्वाधीन;
पक्षियों का कलरव,
वह भी स्वाधीन............
निशानाथ का प्रकाश
सब है स्वाधीन,........"[२]

स्वाधीनता के लिए निर्भयता शब्द का प्रयोग पहले ही विवेकानन्द ने किया, 'अभीः', 'अभीः' - मैं भय शून्य हूँ। सबको सुनाओ, "माभैः" ,'माभैः', भय न करो, भय न करो। भय ही मृत्यु है,......"[३] बाद में निराला ने भी इसे आवश्यक बताया और इसी के माध्यम से

---

१. स्वाधीनता पर , निराला रचनावली - १ पृ० ११९
२. वही पृ० १२०
३. विवेकानन्द साहित्य -६ पृ० ९६

भयाकुल समाज को निर्भय एवं शक्तिशाली बनने के लिए प्रेरित किया। इसी भाव से पूर्ण होने के बाद ही देश का युवा वर्ग तलवारें उठा लेगा और पराजय के प्रतीक सभी तत्त्वों को समाप्त कर देगा, तब परतन्त्रता की बेड़ी कट जायगी -

सोचो तुम,
उठती जब नग्न तलवार है स्वतन्त्रता की,
कितने ही भावों से
याद दिला घोर दुःख दारुण परतन्त्रता का,
फूँकती स्वतन्त्रता, निज मन्त्र से"[1]

इसी तरह का निर्भीक समाज और राष्ट्र जब उठ खड़ा होगा तो उसके तलवारों की सहस्र धाराएँ मुक्ति के मार्ग की सारी बाधाएँ स्वतः दूर कर देंगी-

'उठी नही तलवार
देश की पराजय को
वही है सहस्रधार
मुक्ति यहाँ से क्षय को.......
जीवन का वार एक
और सहो तो सही।'[2]

वीरता और शौर्य के साथ-साथ जब लोग आपस में संगठित हो जायेगे,तभी भारत की गुलामी का अन्त हो पायेगा -

'हिन्दूस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से,
दासता के पाश कट जायेंगे।
मिलो राजपूतों से घेरो तुम दिल्ली - गढ़,'[3]

विवेकानन्द मानव को सभी बन्धनों को तोड़कर स्वाधीनता के प्रकाश में आने का आवाहन करते हैं, जिसे मुक्ति भी कहते है। निराला उनके इस आवाहन को अंगीकार करते हैं और

---

१. महाराज शिवाजी का पत्र, परिमल , निराला रचनावली -१ पृ० १४९-५०
२. उद्बोधन ,अणिमा निराला रचनावली -२ पृ० ६५
३. महाराज शिवाजी का पत्र, परिमल निराला रचनावली -१ पृ०१५८

बन्धनों को शाश्वत मानव के लिए बाधक मानते है -

'किन नियमों के निर्मम बन्धन
जग की संसृति का परिहास
कर बन जाते करुणा - क्रन्दन
कह वे किसके निर्दय पाश ?"[1]

बन्धनों के निर्दय पाश में और उस पर अधर्म रूपी अमानिशा में जब गगन घन अन्धकार उगल रहा हो तो निराला के लिए विवेकानन्द के विचार ही एकमात्र जलती हुई मशाल का कार्य करते हैं । इसीलिए निराला बादल को मौलिक सम्बोधन करते हैं-

'ऐ निर्बन्ध!
अन्ध-तम-अगम-अनर्गल-बादल !'[2]

और उसे विप्लव का प्रतीक मानते हैं, जो संसार को हृदय थामने पर विवश कर देता है-

ऐ विप्लव के बादल
फिर-फिर ।
बार-बार गर्जन
वर्षण है मूसलधार,
हृदय थाम लेता संसार,
सुन-सुन घोर वज्र हुंकार।'[3]

इस प्रकार के शौर्य प्रतीकों के माध्यम से भय को सामाप्त कर भारतीयों की कायरता को दूर करने की प्रेरणा देकर निराला ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए अप्रतिम योगदान दिया। इसीलिए विवेकानन्द की तरह निराला भी ईश्वर से भक्ति एवं मुक्ति आदि की माँग नहीं करते, प्रत्युत भारत देश में व्याप्त कठोर विसंगतियों को समाप्त कर स्वतंत्रता की नवीन ज्योति को आलोकित करने की प्रार्थना बार-बार करते हैं। भारत के प्रत्येक व्यक्ति को 'ब्रह्म हो तुम'[3] बताकर 'कापुरूषता' और 'अहमत्व' के घेरे से बाहर निकल कर परिस्थितियों से टक्कर लेने को

१. यमुना के प्रति, परिमल निराला रचनावली—१ पृ०१०५
२. बादल राग , वही पृ० ११६
३. वही पृ० १२३

कहते हैं, क्योकि योग्यतम ही इस पृथ्वी पर शासन करते हुये जीता है। इसीलिए भारतीयों को सिंह बनकर अपनी माँदों में स्यारों के अधिकार को समाप्त करना होगा-

'सवा-सवा लाख लाख पर
एक को चढ़ाऊँगा
गोविन्द सिंह निज
नाम तब कहाऊँगा......
शेरों की माद में
आया है आज स्यार"[1]

विवेकानन्द ने राष्ट्रीय चेतना के लिए शिक्षा की आवश्यकता पर सर्वाधिक बल दिया। शिक्षा उनके लिए एक ऐसा जादू भरा शब्द है, जिससे सारी समस्या स्वयमेव ही हल हो जाती है। शिक्षा के वर्तमान अर्थ सन्दर्भो से वे सहमत नहीं है, कुछ उपाधियाँ प्राप्त करने या अच्छा भाषण दे सकने से ही क्या तुम्हारी दृष्टि में वे शिक्षित हो गये! जो शिक्षा साधारण व्यक्ति को जीवन संग्राम में समर्थ नही बना सकती , जो मनुष्य में चरित्र, पर हित भावना तथा सिंह के समान साहस नहीं ला सकती, वह भी कोई शिक्षा है।'[2] वास्तव में शक्ति का वाह्य एवं आन्तरिक प्रकटीकरण ही शिक्षा है और इसी शिक्षा को निराला भी स्वीकार करते हैं । शिक्षा के सीमित विस्तार के बावजूद वास्तविक शिक्षा की प्रतीक्षा निराला को भी है -

'उच्च शिक्षा क्रम, बना इतिहास सच्चा, दमन ले,
सज्जनों को प्रगति-पद प्रहलाद तू जब तक न कर।'[3]

'क्रान्ति' व वर्गगत विभाजन के विरूद्ध विचारों के परिप्रेक्ष्य में , जब निराला सब कुछ बदल देने का आवाहन करते है, उस समय वे सारी सम्पत्ति सार्वजनिक करने और शिक्षण कार्य के लिए अमीरों की हवेली का चयन करते हैं -

---

१. जागो फिर एक बार, परिमल निराला रचनावली—१ पृ०१४३
२. विवेकानन्द साहित्य - ६ पृ० १०६
३. राह पर बैठे............., बेला निराला रचनावली - २ पृ० १३९

'जल्द-जल्द पैर बढ़ाओं, आओ, आओ।

आज अमीरों की हवेली

किसानों की होगी पाठशाला,

धोबी, पासी, चमार, तेली

खोलेंगे अँधेरे का ताला,

एक पाठ पढ़ेगे, टाट बिछाओ ।'[1]

यहाँ पर निराला का दृष्टिकोण कुछ परिवर्तित दिखाई पड़ता है और वे वाह्य तौर विवेकानन्द के मूल सिद्धान्त से भटके हुये प्रतीत होते हैं। आसन्न स्वतन्त्रता की बेला में सभी वर्गो को समानता के स्तर पर स्थापित न देखकर, उसे जनता के मूल प्रश्नों से हटने को लेकर, निराला में आक्रोश का यह भाव उत्पन्न होता है । तब उसके मन में, अचेतनमन में विवेकानन्द का यह विचार अवश्य था कि , " मान लो, अंग्रेजों ने सभी अधिकार तुम्हें सौप दिये, तब तो तुम प्रजा को दबाओगे और उन्हें कुछ भी अधिकार न दोगे। "[2] अपने दीर्घ - अनुभवों से निराला ने इस बात को समझ लिया था कि इस स्वतत्रता से वास्तविक हस्तातरण और समानता स्थापित नहीं हो सकती, फलतः उनमें इस तरह का विद्रोही भाव आया । भारत के राजनीतिक आन्दोलन के बारे में विवेकानन्द ने कहा था, 'मेरा कार्य क्षेत्र दूसरा है, पर इस आन्दोलन को मैं महत्वपूर्ण मानता हूँ और ह्रदय से इसकी सफलता चाहता हूँ। इस तरह उनकी व्यापक विचार धारा में राजनीति का भी समावेश हो जाता है । राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रतिनिधि संस्था होने के नाते देश की स्वतंत्रता हेतु उसका अभिनन्दन करते हैं-

'कांग्रेस के संनानी-

वीर सेवकों का दल

नारे लगा रहा हैं

बढ़ता हुआ धैर्य बल ।'[3]

निराला की कांग्रेस की नीतियों और साथ ही साथ गाँधीवाद में आस्था न थी। कई निबन्धों और लेखों में इस बारें में उनका स्पष्ट अभिमत भी व्यक्त हुआ है । कई कविताओं में भी इस तरह के संकेत मिलते हैं । 'बापू के प्रति' कविता में निराला ने गाँधीजी के सिद्धान्त का मखौल उड़ाया है, 'टूटी बाँह जवाहर की' कविता में भी यही भाव व्यक्त किया है, किन्तु जहाँ यथार्थ मानवता का प्रश्न खड़ा होता है, वहाँ वे "काले-काले बादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल" कहकर उनका आवाहन भी करते हैं ।

---

१. जल्द- जल्द पैर बढ़ाओ, बेला, निराला रचनावली - -२ पृ० १६३

२. जाति संस्कृति और समाजवाद, पृ०२२

३. तिलांजलि, नये पत्ते, निराला रचनावली -२ पृ०११३

(घ) सामाजिक विचारधारा का प्रभाव

निरला के काव्य में सामाजिकता का स्वर बहुत ही स्पष्ट रूप में मिलता है। उनका समाज चिन्तन विवेकानन्द की तरह मानवतावाद के व्यापक सन्दर्भ में समाहित हो जाता है। मानव कल्याण ही समाज का कल्याण बन जाता है और दोनों पक्ष एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं। समाज की बहिर्दशा को मानवता में समाहित करना उचित नहीं, अतएव सूक्ष्म रूप में उसी भावना से जुड़े समाज की रूप रचना और वस्तु रचना के परिप्रेक्ष्य में निराला की कविताओं का भाव और उस पर विवेकानन्द की विचारधारा के प्रभाव का अध्ययन अभीष्ट है।

विवेकानन्द राष्ट्रीय पतन के मूल में पिछड़े वर्ग की दुर्बलताओं का जिक्र करते हैं और मानते हैं कि इनके समुचित उत्थान के बाद ही समाज के विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हो सकती है। निराला भी भारतीय पराधीनता के पीछे समाज की कतिपय न्यूनताओं का उल्लेख करते हैं; जिनमें हमारे द्वारा पददलित जनमानस की कमजोरी प्रमुख है -

'मेरे साथ मेरे विचार -
मेरे जाति -
मेरे पददलित -
मौन हैं - निद्रित हैं -
स्वप्न में भी पराधीन !
कितनी बड़ी दुर्बलता !"[१]

समाज के इन वर्गों में चेतना लाने के लिए प्रकृति के नियमों का दृष्टान्त देते हैं और दुर्बल समाज को निर्भय करने की बात करते हैं -

'निर्भय अपने को
और दुर्बल समाज को
करके दिखाना है -'[२]

विवेकानन्द कहते हैं, ''वीर बनो, सर्वदा कहो, 'अभीः', 'अभीः' - मैं भय शून्य

---

१. 'स्वाधीनता पर', निराला रचनावली - १ पृ० १२१
२. वही,

हूँ, मैं भयशून्य हूँ। सबको सुनाओ, 'माभैः', 'माभैः', भय न करो, भय न करो।''[१] 'स्वाधीनता पर' कविता में निराला अपने और दुर्बल समाज को निर्भय करने की बात करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति, राष्ट्र, धर्म और सबसे अधिक समाज की वास्तविक प्रगति हो सकती है। तभी स्वाधीनता का सही अर्थ समझा जा सकता है।

निराला की 'महाराज शिवाजी का पत्र' कविता जहाँ एक ओर साम्राज्यवादी दृष्टिकोण और भारतीयों की चाटुकारिता पर व्यंग्य करती है; वहीं भिन्न अर्थ सन्दर्भ में हमारी सामाजिक व्यवस्था पर भी प्रश्न चिह्न खड़ा करती है। शिवाजी वीर, सरदारों के सरदार होने के साथ ही भारत की विविध जातियों में नायकत्व का भाव लिये हुए हैं -

''बहुजाति, क्यारियों के पुष्प-पत्र-दल भरे
आन-बान-शानवाला भारत-उद्यान के
नायक ही रक्षक हो,''[२]

इस कविता में शिवाजी नें जयसिंह को अपने समाज और धर्म का सम्मान करने की सलाह दी, समाज के विभिन्न जातियों एवं वर्गों के प्रति कलह भाव को सामाजिक अवनति का कारण मानते हुए, वे इसे समाप्त करने के लिए लोगों का आवाहन करते हैं -

'कर्षण - विकर्षण भाव
जारी रहेगा यदि
इसी तरह आपस में,
नीचों के साथ यदि
उच्चजातियों की घृणा
द्वन्द्व, कलह, वैमनस्य,
क्षुद्र ऊर्मियों की तरह
टक्कर लेते रहे तो
निश्चय है,
वेग उन तरंगों का
और घट जायेगा-'[३]

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ६ पृ० ९६
२. 'महाराज शिवाजी का पत्र', परिमल, निराला रचनावली - १ पृ० १४५
३. वही, पृ० १५६

समाज की इस विसंगति का वैसा ही उल्लेख करते हुए विवेकानन्द ने उच्च और निम्न वर्गो के मध्य वैमनस्य को समाप्त करने की बात कही; जिससे प्रभावित हो सामाजिक विभेद को भारतीय समाज और राष्ट्र की अवनति का मूल कारण मानते हुए निराला ने भी प्रतिरोध किया और सामन्जस्य, समानता एवं शान्ति के द्वारा इसे छोड़ देने का आग्रह उपरोक्त कविता के माध्यम से किया।

विवेकानन्द ने जाति व्यवस्था को जन्मना अस्वीकार कर दिया, इसके माध्यम से व्यावसायिकता में कुशलता को बनाये रखने को उन्होंने मूल कारक माना है। निराला ने इसी तरह का विचार कविताओं में व्यक्त किया है। भारत के वर्ण-व्यवस्था का परिवर्तन जाति - व्यवस्था में होने और इसका जन्मना निर्धारण होने से समाज में विसंगति उत्पन्न हुई, जिसके परिणामस्वरूप हिन्दू समाज दासता की बेड़ियों में जकड़ गया। यह जकड़न जड़ समाज, रूढ़िगत धर्म और कूपमंडूक नागरिक के रूप में अभिव्यक्त हो रही थी। इसी से भारत से विषम परिस्थिति की उद्भव होता है -

'टूटा भारत का वर्ण-धर्म का बॉध प्रथम
इससे जो सम थे हुए, हुए वे आज विषम,'[१]

निराला ने जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था को अस्वीकार किया। उन्होंने मध्यकालीन भारत के महान संत रविदास का गुणगान किया है। वे ज्ञान-गंगा से समुज्ज्वल महात्मा को चरण-स्पर्श प्रणाम कर रहे हैं, जो कि धर्म के ध्वज और अन्यतम् मुनीश्वर होने के साथ ही साथ भक्त कवियों के अग्रज भी हैं -

'छुआ पारस भी नहीं तुम ने रहे
कर्म के अभ्यास में, अविरत बहे
ज्ञान-गंगा में, समुज्ज्वल चर्मकार,
चरण छूकर कर रहा मैं नमस्कार।'[२]

---

१. 'शहस्त्राब्दि', अणिमा, निराला रचनावली - २ पृ० ८१
२. संतकवि रविदासजी के प्रति', अणिमा, निरालारचनावली - २ पृ० ७८

निराला जाति-पाँति के आधार पर संकीर्णता को भी अमान्य कर, अनुचित ठहराते हैं और इसे सामाजिक कुप्रथा के रूप में चित्रित करते हैं। वे उदात्त मानवीय दृष्टिकोण के धरातल पर अवस्थित है; जहाँ वर्गगत, जातिगत, वर्णगत कोई विभाजन स्वीकार्य नहीं है। इसीलिए अपने चिर-परिचित शौली में वे कह उठते है -

'बम्हन का लड़का
मैं उसको प्यार करता हूँ।
जात की कहारिन वह,
मेरे घर की पनहारिन वह,
आती है होते तड़का,
उसके पीछे मैं मरता हूँ।'[1]

निराला ने सामाजिक व्यवस्था में कुछ इस तरह का परिवर्तन चाहा कि सामाजिक समरसता भी बनी रहे और समाज के मूल स्वरूप में वास्तविक अन्तरण भी हो जाये। 'जाति का सबसे बुरा पक्ष यह है कि वह प्रतियोगिता को दबाती है और वास्तव में प्रतियोगिता का अभाव ही भारत की राजनीतिक अवनति और विदेशियों द्वारा उसके पराभूत होते रहने का कारण सिद्ध हुआ है' -[2] विवेकानन्द के इस उद्घोष को निराला साहित्यिक मान्यता प्रदान करते हुए सभी वर्गों और जातियों को मनुष्यत्व के लिए समर्पित होकर भारतीय समाज के नव निर्माण की बात करते हैं-

'बदले हुये कुम्हार,
नाई- धोबी- कहार,
ब्राह्मण- क्षत्रिय -वैश्य,
पासी- भङ्गी -चमार,
परिया और कोल भील,
\+ + + +
आज की यह रूपरेखा।
नहीं यह कल्पना,
सत्य है मनुष्य का
मनुष्यत्व के लिए,'[3]

---

१. 'प्रेम संगीत', कुकुरमुत्ता, नये पत्ते, निराला रचनावली - २ पृ० २९
२. विवेकानन्द साहित्य - १, पृ० २७४
३. 'उद्बोधन', अणिमा, निराला रचनावली - २, पृ० ६६

इस नव निर्माण के माध्यम से ही समाज की गतिशीलता पुनः संचारित हो सकती है। निराला ने सामाजिक चेतना के लिए सड़ी-गली परम्पराओं और रूढ़ियों को अस्वीकार किया। पुत्री सरोज के अकाल काल कवलित होने के बाद लिखा गया शोकगीत 'सरोज स्मृति' उनके सामाजिक दृष्टिकोण को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करता है। सरोज के विवाह के प्रश्न पर उनका जातीय विद्रोह फूट पड़ता है -

'ये कान्यकुब्ज कुल कुलांगार
खाकर पत्तल में करे छेद
इनके कर कन्या, अर्थ खेद;
+ + + + +
ऐसे शिव से गिरिजा विवाह;
करने की मुझको नहीं चाह।'[१]

पुत्री का विवाह कान्यकुब्जों के समाज की दहेज प्रथा और तज्जन्य संकीर्णता के खिलाफ विरोध कर अपने साहित्यिक शिष्य शिवशेखर द्विवेदी से करते हैं। सामाजिक नियमों के खोखलेपन का विरोध करते हुए सादे समारोह में यह शुभ कार्य स्वयं अपने हॉथों सम्पन्न करते हैं -

'बारात बुलाकर मिथ्या व्यय
मैं करूँ, ऐसा नहीं सुसमय।
तुम करो व्याह, तोड़ता नियम
मैं सामाजिक योग के प्रथम,
लग्न के, पढ़ूँगा स्वयं मंत्र
यदि पंडितजी होंगे स्वतंत्र।'[२]

इससे पहले निराला ने अपने दूसरे विवाह के प्रश्न पर अपनी 'कुण्डली' जिसमें उनका दो विवाह लिखा था, पुत्री के हॉथों में देकर खेलने का कागज बनाकर उसका अस्तित्व मिटा दिया। इस प्रकार एक संकीर्णता अन्त कर अपनी प्रगतिशील और बौद्धिक विचारधारा को नवीन आयाम दिया।

---

१. 'सरोज स्मृति', द्वितीय अनामिका, निराला रचनावली - १ पृ० ३०२-०३
२. वही, पृ० ३०३-०४

निराला की प्रतिनिधि कविता 'राम की शक्तिपूजा' पर विवेकानन्द का व्यापक प्रभाव माना जाता है। विवेकानन्द के विचारों की तरह कविता का उद्देश्य भी व्यापक है; इसीलिए यह सामाजिक अवधारणा से भी जुड़ जाती है। राम और रावण के मध्य के अपराजेय, शाश्वत, सनातन युद्ध की तरह समाज में भी बुरे और अच्छे पक्षों वाला यह संघर्ष अधिक सूक्ष्म और अन्तः प्रवाही होता है। समाज में व्याप्त भय एवं आशंका का सम्पूर्ण चित्र इस कविता में मिल जाता है। राम के माध्यम से निराला एक भयभीत व्यक्ति और भयभीत समाज का चित्रण करते हैं और एकमात्र आशा के रूप में शक्ति की मौलिक कल्पना की बात करते हैं -

'शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन,
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो रघुनन्दन।'[१]

विवेकानन्द का नारी विषयक दृष्टिकोण प्रगतिशील, आधुनिक एवं अभिनव आधारों पर आधृत है - जिस तरह एक पंख से पक्षी का उड़ना असम्भव है; उसी प्रकार समाज की प्रगति भी बिना स्त्रियों के असम्भव है। निराला भी नारी चेतना के प्रति उतने ही सजग हैं। वे नारी को शक्ति के रूप में आराध्य मानते हैं और अपने सम्पूर्ण साहित्य सृजन का श्रेय उसे ही दे देते हैं -

'तुम्हीं गाती हो अपना गान;
व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान।'[२]

निराला ने हिन्दी साहित्य के प्रति प्रेम भाव जगाने का श्रेय उनकी पत्नी मनोहरा देवी को जाता है, जिसके कारण उनके साहित्य में नारी का उदात्त चित्रण किया गया है और माता के रूप में भारत माँ और सरस्वती माँ के साथ ही साथ दुर्गा, काली, श्याम, भीमा, पार्वती, राधा, सीता आदि का वर्णन उनकी कविताओं में मिल जाता है। इसी के साथ ही साथ राजा दाहिर की पुत्रियाँ (जो मुहम्मद बिन कासिम से बदला लेती हैं), विजयलक्ष्मी पंडित और आदर्श विवेकानन्द की आदर्श गुरुमाता श्रीमती शारदा देवी का वर्णन नारी विषयक श्रृंखला में हुआ है, इनकी

---

१. 'राम की शध्कतपूजा' द्वितीय अनामिका, निराला रचनावली - १ पृ० ३१६
२. 'तुम्ही गाती हो', गीतिका, वही, पृ० २४७

चेतनाशीलता अद्वितीय है और वे विवेकानन्द के इस विचार का काव्यान्तरण प्रतीत होती हैं, ''ऐ भारत ! तुम मत भूलना कि तुम्हारे स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री और दमयन्ती हैं ।''[१]पंचवटी प्रसंग में सीता को एक जिज्ञासु महिला के रूप में चित्रित करते हुए निराला उन्हीं के माध्यम से, राम से आत्मा, परमात्मा, जगत, माया एवं मुक्ति के बारे में प्रश्न करवाते हैं । सीता इन रहस्यों को जानने की इच्छा भी रखती हैं । 'तुलसीदास' ने रत्नावली तुलसीदास को ईश्वर में प्रीति लगाने के लिए प्रेरित करती है । 'राम की शक्तिपूजा' में हताश राम की कल्पना में जानकी का उदय होता है । 'सरोज-स्मृति' का सृजन ही पुत्री वियोग से होता है । इस तरह निराला के तमाम प्रसिद्ध रचनाओं के मूल में नारी की शक्ति और औदात्य ही कार्य करती है ।

नारी - विषयक उदात्त चित्रण के साथ ही उनकी अवदशा को प्रकट करती अनेक कविताएँ भी निराला ने रची हैं । इस कड़ी में सर्वोत्कृष्ट सम्वेदनात्मक चित्र, जो स्त्री-जाति और सम्पूर्ण मानवता की विडम्बना का सूचक भी है, ''वह तोड़ती पत्थर' कविता का बन पड़ा है । इस सम्वेदनशील कविता का निराला की कविताओं में विशिष्ट स्थान है । जेठ की तपती दोपहरी में पत्थर तोड़ने के कार्य में श्रमिक महिला की स्थिति का वर्णन है । विशाल अट्टालिका के सामने खुले धूप में कार्य कर रही यह महिला कवि को उस दृष्टि से देखती है , जैसे - मार खा कर न रोने वाली दृष्टि हो । इलाहाबाद के रास्ते पर दिखाई पड़ने वाली यह स्त्री निराला के लिए विशिष्ट है -

'कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
श्याम तन भर बँधा यौवन,
नत नयन प्रिय, कर्म - रत मन,
गुरु हथौड़ा हाँथ,
करती बार-बार प्रहार :-
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्राकार ।'[२]

स्त्री विषयक निराला की एक अन्य उल्लेखनीय कविता 'विधवा' है, जिसमें विधवाओं के प्रति मानवीय अत्याचार को वर्जित करने की भावना व्यक्त है । विवेकानन्द ने कहा था

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ९ पृ० २२८
२. 'तोड़ती पत्थर', द्वितीय अनामिका, निराला रचनावली - १ पृ०३२३

था, ''दूसरों के लिए प्राण देने, जीवों के गगन भेदी क्रंदन को शान्त करने, विधवाओं के ऑसू पोंछने, ... के लिए ही संन्यासी का जीवन होता है ।''[१] यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में वे विधवा विवाह के समर्थक नहीं थे और उनके लिए आध्यात्मिकता का आश्रय लेने की बात करते हैं, किन्तु उन्हें हेय और उपेक्षा की दृष्टि से न देखा जाय, यह विवेकानन्द का प्रयास था । निराला भी विधवा के प्रति मानवीय पीड़ा का निषेध करते हैं और उसे नवीन प्रतीक से विभूषित करते हैं-

'वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीप-शिखा-सी शान्त,भाव में लीन,
वह क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति रेखा सी
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन
दलित भारत की ही विधवा हैं।'[२]

पाश्चात्य संस्कृति के प्रति अन्धानुकरण प्रवृत्ति का विरोध करते हुए विवेकानन्द कहते है,'' ऐ भारत ! क्या दूसरों की हाँ में हाँ मिलाकर दूसरों की ही नकल कर परमुखापेक्षी होकर इन दासों की सी दुर्बलता, इस घृणित जघन्य निष्ठुरता से ही तुम बड़े-बड़े अधिकार प्राप्त करोगें ?''[३] निराला ने भी इस प्रवृत्ति की बड़ी आलोचना की है, यह युवावर्ग में अपसंस्कृति का कारक है । सामाजिक पुनर्निर्माण का आधार अपनी संस्कृति और इतिहास से लेने का ही वे समर्थन करते हैं। परानुवाद और परानुकरण को वर्जित करते है-

' चूम चरण मत चोरों के तू,
गले लिपट मत गोरों के तू;
+ + + +
आप-आप कर अब न अपर को,
बना बाप मत वचंक नर को,'[४]

निराला ने भारतीय समाज में व्याप्त कुण्ठा को दूर करने के लिए उसमें आत्म विश्वास जगाने का पुनीत कार्य किया। वे लोगों को यह बताना चाहते हैं कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ३ पृ० ५ - ६
२. विधवा, परिमल, निराला रचनावली - १ पृ० ६०
३. विवेकानन्द साहित्य - ९ पृ० २२८
४. गये रूप पहचान, निराला रचनावली - १, पृ० ५५

युग में योग्य व्यक्ति ही जीता है। इस कथन को पश्चिम से जोड़ने का खण्डन करते हुये इसे भारतीय 'गौरव- ग्रन्थ- गीता' से सम्बद्ध करते हैं-

'योग्य जन जीता है,
पश्चिम की उक्ति नही;
गीता है, गीता है -
स्मरण करो बार-बार-
जागो फिर एक बार।'[१]

निराला विवेकानन्द के प्रभाव-स्वरूप ही अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता की बात बार-बार दोहराते है। ' कुकुरमुत्ता' कविता मे फारस से आयातित गुलाब को कड़े शब्दो में फटकारते हुये कुकुरमुत्ता को देशी संस्कृति का प्रतीक मानते हैं, जो अपनी मौलिक्ता का दावा करता है और दोनों के मध्य का संघर्ष मौलिकता एवं अनुकरण का संघर्ष बन जाता है, जिसमें विजय कुकुरमुत्ता की ही होती है।

विवेकानन्द खाली पेट व्यक्तियों को धर्म और दर्शन की शिक्षा देने वालों को दया का पात्र समझते थे। वे करोड़ो की संख्या में क्षुधा-पीड़ित जनों में वास्तविक ईश्वर का वास स्थान मानते थे। निराला के आर्थिक चिन्तन पर भी उनकी इस सोच का प्रभाव दृष्टिगत होता है। उनकी उत्तरवर्ती कविताओं मे यह स्वर और अधिक मुखर हो गया। आर्थिक प्रश्नों को महत्व पूर्ण ढंग से उठाकर निराला समाज के विभिन्न वर्गों को इससे सावधान रहने के लिए कहते हैं, क्योंकि क्रान्तियों का मूल आर्थिक पक्ष से ही अधिक सम्बन्ध रखता है। आर्थिक विषय मजदरू, किसान आदि ही क्रान्ति के संचालक होते हैं। निराला ने आर्थिक झंझावातों को खुद बड़ी शिद्दत के साथ झेला था और दीन- हीन लोगों के प्रति विशेष स्नेह रखने के कारण, उनके जीवन को प्रत्यक्ष रूप में देखा भी था, अतः रोटी का प्रश्न विवेकानन्द की तरह उनके लिए भी एक यक्ष प्रश्न बना हुआ था-

''भूख अगर रोटी की ही मिटी,
भूख की जमीन न चौरस पिटी,

---

१. जागो फिर एक बार, परिमल, निराला रचनावली -१, पृ० १४२

और चाहता है वह कौर उठाना कोई
देखो, उससे उसकी रक्षा कैसे रोई ,''[१]

देश मे स्वतंत्रता के साथ ही साथ समानता की आवश्यकता भी निराला आवश्यक समझते हैं और यह समानता आर्थिक स्तर पर भी होनी अनिवार्य है। इसी से समाज मे आर्थिक समरसता का प्रश्न भी हल हो सकता है। सभी प्रकार की सम्पत्ति को वे सार्वजनिक घोषित करने का आवाहन करते हैं, जिससे स्वतन्त्रता के बाद आर्थिक परतन्त्रता का बोझ जनता को फिर न उठाना पड़े-

'सारी सम्पत्ति देश की हो,
सारी आपत्ति देश की बने,
जनता जातीय वेश की हो,
वाद से विवाद यह- ठने,''[२]

निराला की उत्तरवर्ती रचनाओं में भारतीय आर्थिक वातावरण में जिस तरह की असमानता की प्रवृत्ति व्याप्त थी उससे कवि में एक आशंका घर करने लगी थी कि कहीं भारत में 'रक्तीय क्रान्ति' न हो जाय; विवेकानन्द के लिए भी यह एक केन्द्रीय प्रश्न है और अपने जीवन-पर्यन्त उससे जूझते रहे । उनके ' स्वर्णमान सम्बन्धी विचार'-' पर यह मैं अनुभव करता हूँ कि स्वर्णमान गरीबों को अधिक गरीब और धनी को अधिक धनी बना रहा है। —— मैं समाजवादी हूँ '[३] को निराला तत्कालीन परिस्थिति मे साकार मान रहे थे । संभ्रान्त लोगों के लिए, राजनेताओं के लिए, अमीरों के लिए, स्वीटजरलैण्ड का असपताल[४], पुलिस के हुक्म की तालिमी है [५] और आम लोगों के लिए पेट भर भोजन नहीं है । उनके लिए देशी और विलायती तरह-तरह की शराब[६] है- आम लोगों के लिए पानी भी दुर्लभ है, ऐसी स्थिति में यह प्रश्न निराला के लिए आत्म त्याग के उत्तर से जुड़ जाता है-

---

१. तुम्हे चाहता वह भी सुन्दर, अणिमा, निराली रचनावली -२ पृ० ३१
२. जल्द जल्द पैर बढ़ाओ, बेला, वही पृ० १६३
३. जाति संस्कृति और समाजवाद पृ० ८१
४. महगू महगा रहा - नये पत्ते, निराला रचनावली - २, पृ० १९७
५. झींगुर डटकर बोला वही पृ० १८२
६. महगू महगा रहा - नये पत्ते, निराला रचनावली - २, पृ० १९९

'बड़े- बड़े आदमी धन मान छोड़ेगें,
तभी देश मुक्त है,'[१]

इस तरह का भाव- स्थापित न होने के कारण निराला में असन्तुष्टि की भावना स्पष्ट देखी जा सकती है। आसन्न स्वतंत्रता के बाद भी निराला को लगता है कि देश के किसान, श्रमिक, दलित और गरीब वर्ग के प्रति जिस सद्भावना को जन्म लेना था, वह अभी कहीं नहीं दिखती। इसीलिए उनकी 'कुकुरमुत्ता'' उद्बोधन,'' महगू महगा रहा ,'' झींगुर डटकर- बोला' ' जन्द-जल्द पैर बदाओं' आदि अनेकानेक कविताओं में इसी की प्रतिक्रिया सुनाई पड़ती है और 'वे लोगों से बढ़े हाथ रोको न लुटो -रोटी के कारण '[२] 'आवाहन करते हैं और आशा करते है कि इसी प्रश्न पर हिन्दू और मुसलमान सभी एक हो जायेंगे -

' राज अपना होगा ; ....
शासन की सत्ता हिल जायगी;
वैर भाव भूल कर जल्द गले लगेंगे ;[३]

---

१. महगू महगा रहा, नये पत्ते, निराला रचनावली - २, पृ० १९९
२. समर करो जीवन में, बेला, वही पृ० १३७
३. झींगुर डट कर बोला, नये पत्ते, वही पृ० १८२

पंचम् अध्याय

निराला की रचनाओं पर
स्वामी विवेकानन्द
का प्रभाव – गद्य साहित्य

(क) उपन्यास पर प्रभाव

(ख) कहानी पर प्रभाव

(ग) आलोचना पर प्रभाव

(घ) निबन्ध पर प्रभाव

(क) उपन्यास पर

निराला का गद्य साहित्य भी युगीन परिस्थितियों का वास्तविक मूल्यांकन करता है, जिनमें जीवन का प्रत्येक पक्ष व्यक्त होता है। वे कविताओं की अपेक्षा गद्य में अधिक प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट हो उठते हैं। व्यापक और उदात्त भावनाओं से आपूर्ण उनके उपन्यास उनकी जीवनदृष्टि और जीवन-पद्धति के प्रत्यक्ष मूल्यांकन में अधिक सहायक हुये हैं। सम्पूर्ण जीवन पर विवेकानन्द के अप्रतिम प्रभाव के कारण निराला के उपन्यासों पर उनकी विचारधारा का प्रत्यावलोकन किया जा सकता है। निराला के उपन्यासों की एक खास विशेषता यह है कि इसमें लेखक की आत्मकथा भी जुड़ी हुई है, जिसके कारण निजीपन की प्रवृत्ति अधिक मुखरित हुई है । वैसे निराला के उपन्यासों में समसामयिक युग बोलता है और साथ ही साथ लेखक की सम्पूर्ण विचारधारा को भी रेखांकित किया जा सकता है। विवेकानन्द की भावधारा के कई तत्व इन उपन्यासों के प्रेरक हैं और विस्तृत अर्थ को उद्घाटित करने वाली उनकी वाणी ही, जैसे कई स्थानों पर कथानक या संवाद के रूप में व्यक्त हो जाती है। निराला ने अपने एक उपन्यास 'चोटी की पकड़' को स्वामी विवेकानन्द को ही समर्पित किया है। इसी तरह उनके 'निरुपमा' उपन्यास में नायिका के कमरे में परमहंस 'रामकृष्ण देव और विवेकानन्द'[1] की बड़ी आकार वाली तस्वीर दीवारों पर लगी हुई है । विवेकानन्द की विचारधारा के व्यापक प्रभाव का आगे कई सन्दर्भों में विवेचन किया जा रहा है ।

आध्यात्मिक विचारों का प्रभाव

निराला ने सदैव परम्पराओं को नवीन ढंग से परिभाषित किया; आवश्यकता समझी तो उसे तोड़ने में, कोई संकोच नहीं किया। वे 'तोड़ने' को ही धर्म, बनता तो अपने आप हैं- के समर्थक हैं। उनके उपन्यासों में विवेकानन्द के धार्मिक चिन्तन का प्रभाव स्पष्टतः मिलता है। प्रथम उपन्यास 'अप्सरा' में नायिका कनक की माँ सर्वेश्वरी प्यार को आत्मा की कमजोरी बताते हुये उसे

---

१. निरुपमा, निराला रचनावली - ३ पृ० ३५४

धर्म मानने से कनक को रोकती है। अपने अनुभव से कनक यथार्थ समझ लेती है और विचार व्यक्त करती है, ''प्रकृति के वशीभूत होकर लोग अनर्थ करने लगते हैं। यहीं अत्याचार धार्मिक अनुष्ठानों में प्रत्यक्ष हो रहा है। पर वृहत् अपनी महत्ता में वृहत् ही है।''[१] कनक का कला के प्रति व्यक्त यह दृष्टिकोण निराला के विराट के प्रति आकर्षण से सम्बद्ध किया जा सकता है। विवेकानन्द के वृहद् ब्रह्म की संकल्पना से इस संसार का कण-कण अविरत प्रकाशमान है। उसे अनुभूति के माध्यम से ही समझा जा सकता है। उनका धर्म भी बहुत व्यापक है और खान-पान एवं छुआ - छूत से धर्म का कोई मतलब नहीं है। इस सन्दर्भ को निराला ने 'निरुपमा' में बहुत ही जोरदार ढंग से उठाया है, वहाँ भोजन के निमंत्रण के प्रसंग में तर्क-वितर्क होता है, उसमें महावीर का यह कथन कि 'भाई सुनो, धर्म पहले हैं। भगवान धर्म के लिए बनवास गये और रावण को मारा। हमारे सामने तो बस पूड़ी-कचौड़ी है।'[२] यहाँ पर धर्म के माध्यम से व्याप्त विडम्बना निराला के व्यंग्य का वाहक बनता है । इसी परिप्रेक्ष्य में गाँव के मुखिया का दृष्टिकोण कुछ वैज्ञानिक एवं आधुनिक दिखाई पड़ता है, 'जगन्नाथ जी में सातों जात के लोग एक साथ खाते हैं। घर लौटकर अपना-अपना धर्म-कर्म करते हैं।'[३] निराला इस एक प्रकरण के द्वारा भारत के धार्मिक दृष्टिकोण का सम्पूर्ण परिदृश्य स्पष्ट कर देते हैं, ठीक वैसे ही जैसे विवेकानन्द लोगों की संकीर्ण धार्मिक सोच के लिए धिक्कारते हैं, ''पर धिक्कार है उस व्यक्ति को, धिक्कार है उस राष्ट्र को, जो धर्म के सारे तत्व को भूल जाता है और अभ्यासवश वाह्य अनुष्ठानों को ही कसकर पकड़े रहता है तथा उन्हें किसी तरह नहीं छोड़ता।''[४] केवल समस्त जातियों को निमंत्रण के लिए बुलाना ही मानों धर्म के लिए सबसे बड़ा खतरा बन गया है। इसी भाव को 'प्रभावती' उपन्यास में भी आगे बढ़ता हुआ देखा जा सकता है। 'हमारे सामने तो बस पूड़ी-कचौड़ी है के ही प्रश्न को वहाँ पंडित शिवस्वरूप आगे बढ़ाते हैं, 'हे जमुना ! सब ढोंग है।.........सब किसके घर नहीं खाते.........हलवाई की बनाई पूड़ी नहीं खाते।''[५]

निराला अपने अपन्यासों में प्रारम्भ से ही धार्मिक पाखण्ड पर प्रहार करते दिखाई

---

१. अप्सरा, निराला रचनावली - ३ पृ० २८
२. निरुपमा, निराला रचनावली - ३ पृ० ४००
३. वही
४. विवेकानन्द साहित्य - ४ पृ० ४१
५. प्रभावती, निराला रचनावली - ३ पृ० २४६

देते हैं । खान-पान ही रूढ़िवादियों के लिए धर्म बन गया है । धार्मिक पाखण्ड एवं तज्जन्य विडम्बना को हम 'बिल्लेसुर बकरिहा' में जीवंत रूप में देख सकते हैं । जमादार सत्तीदीन की पत्नी एवं उसका अन्धविश्वास जिस तरह से धार्मिक पाखण्ड के माध्यम से व्यक्त होता है, वह जमादार पति के लिए अनाचार द्वारा पुत्र-प्राप्ति चाहती है, उससे अन्त में बिल्लेसुर तंग हो उठता है और धर्मगत संकीर्णता पर प्रहार करते हुये कहता है, "मैने देश जाने की छुट्टी ले ली है । लौटूँ या न लौटूँ। हूँ कहने को क्यों रहे, यह माला है और यह कंठी लो, अब मैं चेला नहीं रहूँगा, जैसे गुरु वैसी तुम, यह तुम्हारा मंत्र है- कहकर गायत्री मंत्र की आवृत्ति कर गये और सुनाकर चल दिये, फिर पैर भी नहीं छुए ।"[१] इस तरह धर्म की सत्य भावना का आभास बिल्लेसुर के व्यक्तित्व को नया आयाम देता है। आस्था और विश्वास को व्यक्त करता एक प्रकरण इसी उपन्यास में बिल्लेसुर द्वारा भगवान महावीर को बकरियों को दिखा कर जाने वाले प्रसंग में देखा जा सकता है। आने पर उनका एक बकरा 'दीना' नहीं मिलता, जिससे बिल्लेसुर अत्यन्त कुपित होता है, "देख, मैं गरीब हूँ। तुझे सब लोग गरीबों का सहायक कहते हैं, मैं इसीलिए तेरे पास आता था, और कहता था, मेरी बकरियों और बच्चों को देखे रहना। क्या तूने रखवाली की, बना लिए थूथन सा मुँह खड़ा है?"[२] यहाँ पर निराला के ऊपर व्यावहारिक वेदान्त का प्रभाव है, जो क्रान्तिकारी प्रवृत्ति का पोषक है। विवेकानन्द ने जिस तरह वेदान्त को सहज, सरल, समतल लोकभूमि पर अवतरित कराया, उसी तरह निराला ने भी ईश्वर विषयक दृष्टिकोण में अटूट आस्था और विश्वास के माध्यम से नवीन भावना का संचार किया और बिल्लेसुर ने 'महावीर के मुँह को वह डंडा दिया कि मिट्टी का मुँह मिली की तरह टूटकर बीघेभर के फासले पर जा गिरा।'[३] अद्वितीय विश्वास ही इस तरह का क्रान्तिकारी कदम उठा सकता है और अपना समझने का भाव ही इस तरह का साहस भी जुटा सकता है ।

विवेकानन्द ने धर्म को तार्किक एवं आधुनिक दृष्टि से देखे जाने की आवश्यकता पर जो दिया; निराला को इस बात का विश्वास होने लगा था कि विवेकानन्द की यह व्याख्या मान्यता तो व्यापक रूप से पा गयी थी किन्तु उसका पूर्ण रूप से स्थापित हो पाना अभी शेष था ।

---

१. बिल्लेसुर बकरिहा, निराला रचनावली - ४ पृ० ९७
२. वही, पृ० १०४
३. वही

इसके लिए उनके अन्तर्मन में बहुत कसक थी, यह कसक 'चोटी की पकड़' नामक उपन्यास में स्पष्टतः व्यक्त भी हो जाती है, "शूद्र कही जाने वाली अन्य दलित जातियों का आध्यात्मिक उन्नयन, वैष्णव धर्म के द्वारा जैसा, श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द के द्वारा हुआ था, पर उनकी सामाजिक स्थिति की प्रतिष्ठा नहीं हुई थी, न साहित्य में वे मर्यादित हो सके थे।"[१] और निराला इन्हीं दोनों में उनकी विचारधारा को स्थापित करने में लगे रहे । इसी विचार का साहित्यिक प्रकटीकरण स्थान-स्थान पर उपन्यासों में देखा जा सकता है। उनके उपन्यासों में नायक अथवा सहनायक कहीं - कहीं संन्यासी बनकर देश सेवा का व्रत लेता है और जहाँ ऐसा नहीं होता वहाँ मुख्य ध्येय सम्पन्न होते समय नायक संन्यासी का वेश धारण करता है अथवा अचानक किसी साधु का अवतरण होता है और वह कार्य सम्पादित करने में सहयोग करता है। इसका हम विवेकानन्द का निराला के ऊपर पड़े व्यापक प्रभाव का परिणाम भी मान सकते हैं ।

निराला के ऊपर इसी व्यापक प्रभाव को हम 'कुल्लीभाट' से जोड़कर अधिक स्पष्ट कर सकते हैं । वहाँ पर लेखक भी कथा के साथ जुड़ा हुआ है, जिसका एक साधु के साथ वार्तालाप होता है। जहाँ साधु के सम्बन्धों में निराला का विचार है, "मेरी निगाह नये ढंग की थी । साधु के सम्बन्ध में भी निगाह नयी हो गयी थी, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ की बातें सुनकर, किताबें पढ़कर। साधु का सम्बन्ध पारलौकिक साधना से होता है, साधना प्राचीन ढंग की तरह-तरह की है । मैं बिल्कुल आधुनिक था ।"[२] इस विचार का रूपान्तरण उनके इस चिन्ता से होता है, "ईश्वर की प्राप्ति के लिए निकला मनुष्य ईश्वर-प्राप्ति के बाद दग्ध कर्म हो जाता है। उसके मन में केवल ईश्वर रहता है ।"[३] यह विवेकानन्द की आध्यात्मिक विचारधारा का प्रतिफल ही कहा जा सकता है, इसी का प्रत्यक्ष संकेत 'चोटी की पकड़' में मिलता है। कलकत्ते के नवजागरण का वातावरण ओर विवेकानन्द को समर्पण के साथ ही 'श्रीरामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की अति मानवीय शक्ति की धाक सारे संसार में जमने"[४] की बात कही गई है। इस लेखकीय स्वीकारोक्ति से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि निराला के ऊपर विवेकानन्द का प्रभाव उपन्यासों पर

---

१. चोटी की पकड़, निराला रचनावली - ४ पृ० १३३
२. कुल्लीभाट, वही, पृ० ५४ ३. वही, पृ० ५५
४. निरुपमा - निराला रचनावली - ३ पृ० ३६९

अधिक स्पष्ट हुआ है । इसी की एक और झलक 'निरुपमा' में देखी जा सकती है। जहाँ पर बंगाल के नवजागरण और उस पर विवेकानन्द की विचारधारा का संकेत किया है। योगेश बाबू ओर सुरेश से जहाँ एक ओर नायिका निरुपमा के विवाह के बारे में विचार-विमर्श करते हैं, वहीं दूसरी ओर विवेकानन्द के गुरु श्रीरामकृष्ण के व्यापक प्रभाव की चर्चा भी होती है, 'परमहंस श्री रामकृष्ण देव की तपो भूमि दक्षिणेश्वर आजकल के बंगालियों के कोर्टशिप की जगह हो रही है ।

निराला के उपन्यासों में कई पात्र विवेकानन्द के जीवन से प्रेरणा लेते प्रतीत होते हैं। 'अप्सरा' में चन्दन और राजकुमार 'अलका' में विजय और अजित, 'प्रभावती' में वीरसिंह एवं रामसिंह, 'निरुपमा' में 'कुमार' , 'कुल्लीभाट' बिल्लेसुर और 'चोटी की पकड़' का प्रभाकर विवेकानन्द के आदर्शों को अपने में समाहित किये हुये हैं । इनमें से अधिकांश 'नववेदान्त' के वाहक पात्र के रूप में आये हैं और धर्म की अभिनव व्याख्या के विवेकानन्द के मूल भावों को ही व्यक्त करते प्रतीत होते हैं । संन्यासी के रूप में देश एवं धर्म के उद्धार के लिए इनमें जो प्रतिबद्धता दिखाई देती है, वह निराला पर विवेकानन्द के व्यापक प्रभाव का द्योतक है ।

मानवतावाद का प्रभाव

निराला के उपन्यासों में उनका मानवतावादी व्यक्तित्व भी व्यक्त होता है। उनके प्रथम उपन्यास 'अप्सरा' से ही मानवता का सन्देश भी प्रारम्भ हो जाता है। इसमें राजकुमार और चन्दन इसके वाहक बनते हैं । राजकुमार ने 'जाति,देश साहित्य और आत्मा के कल्याण के लिए अपने सम्स्त सुखों का बलिदान कर देने की प्रतिज्ञा की थी।'[१] विवेकानन्द ने जिस तरह मानव मात्र के कल्याण के लिए अपना जीवन समर्पित किया था, 'अलका' उपन्यास में उसी भाव की अभिव्यक्ति अजित करता है । वह स्वामी धर्मानन्द का नाम धारण कर मानवता की रक्षा का संकल्प लेता है और मन में विचारणा करता है, "कितनी करुणा भारत की झोपड़ी-झोपड़ी में है ?"[२] इसको हम विवेकानन्द के इस विचार से जोड़कर देखे तो यह बात स्पष्ट हो जाती हैं कि "भारतवर्ष

१. अप्सरा, निराला रचनावली - ३ पृ० ६९
२. अलका, वही पृ० १८९

तथा निम्न वर्ण के लोगों की दशा का स्मरण करके मेरा हृदय फटा जाता है, वे दिन-प्रति-दिन नीचे गिरते जा रहे हैं। .... जब तक करोड़ो मनुष्य मूर्ख तथा अज्ञान में जीवन बिता रहे हैं, तब तक मैं उस प्रत्येक व्यक्ति को देशद्रोही मानता हूँ , जो उनके व्यय से शिक्षित हुआ है तथा उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दे रहा है।''[१] इसी विचार को विजय क्रियान्वित करता है और किसानों के बच्चों को पढ़ाने का पुनीत कार्य करता है। इसी उपन्यास के एक संवेदनशीलता के प्रतिमूर्ति पात्र हैं - स्नेह शंकर, जिन्होंने शोभा के कष्टों को समझ कर उसे पोषित पुत्री के रूप में 'अलका' नाम देकर मानवता का चरम आदर्श उपस्थित किया। अखबार लेखिका 'सावित्री' ने 'अलका को और अधिक मानवीय रूप दे दिया, जो दीन-दुःखियों के सापेक्ष यज्ञों में घी आदि के खर्च को मूर्खता बताते हुये इसके बदले मानव की पेट की ज्वाला में हवि करने की बात करती है, ''सूर्य द्वारा समुद्र के विशाल कुण्ड से अविरत जल-जलाकर जो प्रकृति पानी बरसाती है, वह नकलचियों के घृत हवन की अपेक्षा नही करती। जहाँ मानों घी बेवकूफी में जलता हो, वहाँ आर्य निस्सन्देह अनार्य हो गये हैं। वह घी और यव पेट के अग्निकुण्ड में जलकर उनकी नसों में रक्त तथा जीवनी शक्ति संचित करके ही यज्ञ की सर्वोच्च व्याख्या से सार्थक होगा।''[२] यहाँ पर विवेकानन्द के नववेदान्त और उसके प्राण मानवतावाद का चरम रूप देखा जा सकता है।

मानवीय सेवा, सहानुभूति और सद्भावना का एक और विशाल चित्र 'कुल्लीभाट' में देखा जा सकता है। 'कुल्ली ' मानव मात्र के कल्याण के लिए प्रगतिशील भूमिका का निर्वाह करता है। अछूतों के कल्याण के लिए वह विशेष प्रयत्न करता है और उसके इस कार्य में वहाँ के बड़े आदमी कहे जाने वाले लोग मदद नहीं करते। वह मानों विवेकानन्द के इस विचार को चरितार्थ कर रहा है कि 'वर्तमान समाज के पिछड़े होने का मुख्य कारण बहुसंख्यक वर्ग के प्रति उच्च वर्ग के गरीबों लोगों का उपेक्षा का भाव है।' वह मानवता के चरम आदर्श को इन वाक्यों में प्रकट करता है, '' क्या कहूँ, आदमी आदमी के लिए जरा भी सहनशील नहीं। वह अपने लिए सब कुछ चाहता है, पर दूसरों को जरा भी स्वतत्रता नहीं देना चाहता। इसीलिए हिन्दुस्तान की यह दशा है, मै समझ गया हूँ।''[३] इसमें विवेकानन्द का मानवतावादी भाव ही अभिनव रूप में देखा जा सकता है। उसका

---

१. शिक्षा, संस्कृति और समाज पृ० ३३
२. अलका निराला रचनावली -३ पृ० १७९
३. कुल्लीभाट निराला रचनावली - ४ पृ० ६४

जीवन भी मानव मात्र के कल्याण के लिए संघर्ष करता दिखाई देता है। उसी भावना के तहत कुल्ली एक मुसलमान महिला से विवाह कर लेता है और कालान्तर में मानवता के संघर्ष में जिस कठोर मार्ग को अपनाता है, उससे उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का शोधन हो जाता है और उसका चरित्र साधारण से ऊपर उठकर विशिष्ट हो जाता है। 'चोटी की पकड़' में राजा महेन्द्र प्रताप के विलासी जीवन के सापेक्ष सामान्य जन का कष्टपूर्ण अभावयुक्त, निर्जीव सा जीवन दिखाकर निराला मानव मात्र के मध्य बढ़ते जा रहे अन्तर को समाज के सामने रख देते हैं और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आलोक में मानव-मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन करने की बात की सूक्ष्म रूप में अभिव्यंजित करते हैं।

राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम सम्बन्धी विचारों का प्रभाव

विवेकानन्द ने राष्ट्रीय चेतना के लिए बहुत प्रयास किया। सुन्दर देश को सुन्दरतम बनाना ही उनका ध्येय था। देश उनके लिए सर्वस्व था। देश को वे सजीव एवं गतिशील प्राणी के रूप में देखते थे। विवेकानन्द ने अगले पचास वर्षो तक अन्य देवी-देवताओं को छोड़कर केवल भारत माता को ही आराध्य माने जाने पर बल दिया। वे देशवासियों को जड़ता के कूप से निकालकर मनुष्य बनाने के लिए हजार-बार नरक जाने को तैयार हैं। निराला पर उनके इस दृष्टिकोण का गहरा प्रभाव पड़ा था, जो उपन्यासों में भी कई स्तरों पर देखा जा सकता है। प्रथम उपन्यास 'अप्सरा' सारे रोमानियत के बावजूद देश प्रेम का अप्रतिम सन्देश भी देता है। नायक राजकुमार देश प्रेम और कर्तव्य के लिए नायिका कनक का प्रेम-आग्रह अस्वीकर कर देता है। विवेकानन्द के संगठन सम्बन्धी विचार को इसी उपन्सास का सहनायक चन्दन चरितार्थ करता है। वह किसानों का संगठन बनाता है और उसके द्वारा 'जाति, देश, साहित्य और आत्मा के कल्याण के लिए अपने समस्त सुखों का बलिदान करने की प्रतिज्ञा' करता है। 'राजकुमार जितना भीतर की उधेड़ बुन में था, चन्दन बाहर की छानबीन में।............ उसी से देश की दुर्दशा, भारतीयों का अर्थ संकट, सम्पत्ति वृद्धि के उपाय, अनेकता में एकता का मूल सूत्र आदि-आदि।''[२] चन्दन क्रान्तिकारिता का वाहक पात्र है, जो देश के लिए कुछ भी करने को तैयार है। वह एक बहुमुखी

---

१. अप्सरा, निराला रचनावली - ३ पृ० ६९
२. वही, पृ० १२३

प्रतिभा सम्पन्न पात्र है, जो खुद अपने बारे में कहता है, "किसी ने कहा है, मेरी शादी कानून से हुई है, किसी ने कहा, मै कविता का भर्तार हूँ किसी ने कहा, मेरी प्यारी बीवी चिकित्सा है, मैं कहता हँ, मेरी हृदयेश्वरी इस जीवन की एक मात्र संगिनी, इस चन्दन सिंह की सिंहनी सरकार है ।"[१] चन्दन सिंह के रोम-रोम में देश-प्रेम की अद्वितीय भावना भरी हुई है । वह कनक को मुह दिखाई के रूप में 'स्वदेशी आन्दोलन के प्रतीक एक चर्खा'[२] प्रदान करता है । चन्दन सिंह और राजकुमार के समन्वित चरित्र से विवेकानन्द का देश-प्रेम सम्बन्धी भाव प्राणवन्त हो उठता है ।

राष्ट्रीय भावनाओं का सम्यक परिपाक 'अलका' में भी हुआ है । कलकत्ते के विपरीत यहाँ का वातावरण अवध का है और सविनय अवज्ञा आन्दोलन की पृष्ठभूमि में इसका सृजन किया गया है । इसका सहनायक 'अजित' एक देशभक्त और साहसी नवयुवक है, जो गौरवशाली एवं स्वातंत्रता प्रेमी नायक 'विजय' के साथ जोड़कर देखने पर विवेकानन्द के आदर्श को व्यंजित करता है । 'अलका' के गायब हो जाने पर विजय कहता है, "ईश्वर ने रास्ता भी साफ कर दिया । अब तो तमाम भारतवर्ष अपना मकान है । उसी के लिए जो कुछ होगा, करूँगा - जननी जनमभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।"[३] अजित लगातार सरकारी अत्याचार एवं अन्याय के खिलाफ आवाज उठाता है, उसका अपने पिता से यह संवाद उसके व्यक्तित्व को प्रखर एवं क्रान्तिकारी बना देता है- " अजित के पिता- 'तुम्हारें पास ऐसे लोग क्यों आते है, जो सरकार के खिलाफ हैं ?

अजित- 'मुझे सरकार की खिलाफत का कुछ भी इल्म नहीं। "[४]

अजित ने विजय के एक पिछड़े गाँव में शिक्षण कार्य करने की व्यवस्था की । अपने परिश्रम एवं बौद्धिकता के बल पर वह स्वामीजी कहा जाने लगा । शिक्षा को स्वामीजी ने 'सभी समस्याओं का एक यक्ष उत्तर' समझा, निराला भी यही समझते हैं और 'विजय' से कहलवाते हैं, "किसान लड़कों को पढ़ाना मेरा लक्ष्य है,............. केवल भोजन कर गरीबों को शिक्षा देना,

---

१. अप्सरा, निराला रचनावली - ३ पृ० १२२
२. वही, पृ० १२६
३. अलका, वही पृ० १५७
४. वही

मैंने अपना लक्ष्य कर लिया है ।' - एक साहब के यह पूँछने पर कि आप संन्यासी हैं, जवाब देते हैं - ''जी हाँ, यह काम अब तक संन्यासियों के ही हाँथ रहा है जो कम ले कर ज्यादा देते रहे ।''[१] भारतीय संस्कृति के आदर्श को व्यक्त करता यह प्रकरण विवेकानन्द की व्यापक विचारधारा का ही एक अवयव कहा जा सकता है ।

विवेकानन्द ने वर्तमान शिक्षण व्यवस्था को अपर्याप्त एवं अपूर्ण माना, 'निरुपमा' उपन्यास में शिक्षा की व्यवस्था और उसके परिणाम को दिखाकर निराला भी उस विचार का समर्थन करते प्रतीत होते हैं। 'कुमार' साहित्य की सर्वोच्च उपाधि लेकर भी व्यवस्था की कमी का शिकार हो जाता है । उसी का प्रकटीकरण करने के लिए जूता पलिश करने का कार्य प्रारम्भ करता है । कमल के द्वारा इसे स्वांग कहने पर कुमार 'यह स्वाँग नहीं, यह मेरे साथ भारत का सच्चा रूप है'[२]- कहकर कठोर वास्तविकता को व्यक्त कर देता है। शिक्षा के बाद कोई भी कार्य हेय नहीं होता, इस विराट चिन्तन का प्रकटीकरण भी हो जाता है ।

निराला के 'कुल्ली भाट' में भी शिक्षा सम्बन्धी उनका दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है । कुल्ली का विचार है, '' अछूत पाठशाला खोली है। तीस-चालीस लड़के आते है, धोबी, भंगी, चमार डोम और पासियों के। पढ़ाता हूँ, लेकिन यहाँ के बड़े आदमी कहे जाने वाले लोग मदद नहीं करते ।''[३] शिक्षा के बारे में ही निराला का प्रतिनिधित्व 'अलका' में विजय करता है, जहाँ उसने अशिक्षा जन्म भय का वर्णन करते हुये उसे स्वभाव की कमजोरी बताया, ''डर पीछा नहीं छोड़ सकता, यहीं मुद्दतों से भरी हुई तुम्हारे अन्दर स्वभाव की कमजोरी है।, अगर पढ़ लिख नही सकें और पढ़ लिखकर भी लोग कभी ज्यादा गिर जाते है ।''[४] यहाँ हम विवेकानन्द के इस विचार को जोड़कर देखें तो कितनी समानता दिखलाई पड़ती है,'शिक्षित वर्ग के लोग जनता के पैसे को लेकर उससे पढ़ने में संकोच नहीं करते और फिर उनका ध्यान नहीं रखते, उन्हें मै देशद्रोही मानता हूँ । इन्ही के कारण देश की यह दशा हो गई है, इस बात को भी निराला ने स्वीकार लिया है ।

---

१. अलका, निराला रचनावली - ३ पृ० १७५
२. निरुपमा, वही पृ० ४०८
३. कुल्लीभाट, वही - ४ पृ० ६२
४. अलका, वही - ३ पृ० १६८

स्वाधीनता का जो स्वर विवेकानन्द की विचारा धारा में है वही स्वर और प्रखर एवं स्थूल रूप में निराला के उपन्यासों में व्यक्त हुआ है । ठीक विवेकानन्द की तरह 'अलका' के धर्म पिता स्नेह शंकर सोचते हैं, " बात यह हैं कि देश की स्वतन्त्रता एक मिश्र विषय है। वह केवल राजनीतिक प्रगति नहीं । .... वैसे ही देश की व्यापक स्वतन्त्रता को सब तरफ की पुष्टि चाहिए । जब तक सब अगों से समान पूर्णता नही होती, तब तक स्वतंत्र शरीर संगठित नहीं हो सकता । हमारे यहाँ तो कानून के बल पर राजनीतिक स्वतन्त्रता हासिल की जा रही है ।"[१] इस पर हम विवेकानन्द के इस भाव को जोड़ देखें कि भारत को सब तरफ से स्वाधीनता चाहिए । उसे समानता के स्तर पर, जन समुदाय के समुचित विकास के स्तर पर, नहीं तो स्वतंत्रता का आशय यह हो जायगा कि शिक्षित एवं बड़े लोग प्रजा को दबायेंगें और उन्हें किसी तरह उठने नहीं देंगे । इसके अन्तर्निहित भाव को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सभी पक्षों से जोड़कर देखा जाना चाहिए ।

निराला के उपन्यास 'कुल्ली भाट' की पृष्ठभूमि स्वतंत्रता आन्दोलन के समय की हैं। लेखक अपने गाँव से ससुराल जाता है। देश में पहला असहयोग आन्दोलन जोरों पर था। खलिहानों में बैठे हुये किसान जमीदारों से बचने के लिए रह-रहकर 'महात्मा गाँधी की जय' चिल्ला उठते थें। ...... ऐसे एक ने मुझसे कहा, " महात्माजी ने सिद्ध कर दिया है, चर्खा चलाने से कम से कम रोटियाँ चल सकती हैं। "[२] निराला के आने पर कुल्ली उन्हें महान राजनीतिक कर्मी मानता है। 'इधर कुल्ली अखबार भी पढ़ने लगे महात्माजी की बाते करने लगे। मै सुनता रहा । '[३] कुल्ली में इस तरह की प्रखतरता आ गई थी कि अनुभव से निकला यथार्थ सार्वजनिक एवं सार्वभौमिक बन जाता है, " क्या कहूँ, आदमी आदमी के लिए जरा भी सहनशील नहीं है। वह अपने लिए सब कुछ चाहता है, पर दूसरों को जरा भी स्वतन्त्रता नहीं देना चाहता ।"[४]भारतीय जनमानस की वास्तविकता के अभिव्यंजित करने वाला कितना सटीक एवं सत्य, कुल्ली का यह विचार है ।

विवेकानन्द ने स्वाधीनता के लिए जन सहयोग की आवश्यकता पर बल दिया और

१. अलका, निराला रचनावली - ३ पृ० १५२
२. कुल्लीभाट, वही - ४ पृ० ५७
३. वही पृ० ५८
४. वही, पृ० ६४

उसके लिए एक संगठन की स्थापना को अनिवार्य समझते थे, जिससे बहुतायत लोग आपस में मिल सकते हैं। कांग्रेस के साथ प्रारम्भिक असहमति के बाद विवेकानन्द बाद में इसके कार्यो से सन्तोष्ष का अनुभव करने लगे थे । निराला को कुल्ली में जब चेतना जागती है तो वह कहता है, " यहाँ कांग्रेस भी नहीं है । इतनी बड़ी बस्ती में देश के नाम से हँसती है, यहाँ कांग्रेस का भी काम होना चाहिए। "[१] स्वतन्त्रता आन्दोलन में जिस तरह की गतिशीलता की अपेक्षा विवेकानन्द ने की थी, उसकी अभिव्यंजना उन्हे ही समर्पित उपन्यास 'चोटी की पकड़' में बखूबी हुई है । इसमें विवेकानन्द का संगठन सम्बन्धी विचार भी प्रमुखता के साथ व्यक्त हुआ है। स्वदेशी और स्वराज की आवश्यकता पर जोर देते हुये संगठन के द्वारा कार्य कों सम्पादित करने सम्बन्धी लेखक का भाव भी यहाँ व्यक्त हुआ है। जन आन्दोलन के लिए संघबद्ध होकर एक संगठन के नीचे आना आवश्यक है, " संघबद्ध होकर विद्यार्थी गीत गाते हुये लोगों को उत्साहित करने लगे । अँगरेजो के किये अपमान के जवाब में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की प्रतिज्ञा हुई, लोगों ने खरीदना छोड़ा । साथ ही स्वदेशी प्रचार के कार्य भी परिणत किये जाने लगे। गाँव-गाँव में इसके केन्द्र खोले गये । कार्यकर्ता उत्साह से नयी काया में जान फूँकने लगे। "[२] जहाँ लोगों का विशाल जन समूह इस आन्दोलन से जुड़ा हुआ था और किसी न किसी तरह स्वतन्त्रता के लिए कटिबद्ध दिखाई दे रहा था, वहीं इसे-'स्वदेशी आन्दोलन स्थाई स्वत्व के आधार पर चला था । उससे बिना घरबार के, जमींदारों के आश्रम में रहने वाले दलित, अधिकांश किसानों को फायदा न था'[३]— कहकर आन्दोलन की एकांगिता को भी स्पष्ट कर देते हैं । निराला के इस विचार को विवेकानन्द के प्रभाव से जोड़कर देखा जाना चाहिए, जहाँ विवेकानन्द कहते हैं' - " मैं समझता हूँ कि हमारा सबसे बड़ा पाप राष्ट्रीय जनसमुदाय की उपेक्षा है और वह भी हमारे पतन का एक कारण है। हम कितनी ही राजनीति बरतें, उससे तब तक कोई लाभ न होगा, जब तक कि भारत का जनसमुदाय एक बार फिर से सुशिक्षित, सुपोषित और सुपालित नहीं होता।"[४]...... निराला भी कांग्रेस में यहीं दोष देखते हैं और कुल्ली के माध्यम से गाँधी जी को यह सन्देश सुना भी देते हैं, "महात्माजी, आप मुझसे हजार

---

१. कुल्लीभाट, निराला रचनावली - ४ पृ० ६७
२. चोटी की पकड़, वही पृ० १३२
३. वही पृ० १३३
४. विवेकानन्द साहित्य - ४ पृ० २६०

ही व्यक्त करते हुये कुल्ली निराला से कहते हैं, ''एक मुसलमानिन है । मैं उससे प्रेम करता हूँ । वह भी मेरे लिए जान देती है । ले चलने को कहती है, पर यहाँ के चमारों से डरता हूँ ।'' मैंने कहा - ''चमारों से सभी डरते हैं, लेकिन जूते गाँठने के लिए देते रहने पर दबे रहते हैं चमार'' तो आपकी क्या राय है, ले आऊँ ? मैंने कहा, पूरी उत्तेजना से कहा, '' अवश्य ले जाओ ।''[१]

कुल्ली की सामाजिकता के लिए संघर्ष की अद्वितीय भावना निराला को अभिभूत करती है । इसीलिए गाँव और आस-पास के क्षेत्रों में समाज और जाति बहिस्कृत कुल्ली की मृत्यु के पहले निराला उनकी प्राण रक्षा का प्रयास करते हैं और मृत्योपरान्त उनका विधिवत कृत्य भी सम्पन्न करते हैं। क्योंकि लेखक का मानना है, चरित्र का परिष्कार करके कुल्ली ने अपने संस्कार का शोधन कर दिया है और अब उसे समाज के लिए ग्राह्य और प्रेरक समझा जाना चाहिए ।

'अलका' उपन्यास का आरम्भिक अंश सामाजिक विभावना व्यापार का मार्मिक सन्दर्भ बन कर निखरा है, जहाँ पर विश्वयुद्ध के जहरीले गैसों के दुष्प्रभाव और तज्जन्य भीषण महामारी इन्फ्ल्यूएंजा से लाखों लोग काल कवलित हो गये हैं । वहीं महादेव आदि लोग 'स्त्री-जाति ' के देहव्यापार में संलग्न हैं और शोभा कड़े संघर्ष के बाद धर्मपिता जमींदार स्नेह शंकर का आश्रय पाती है । समाज की अवनति विशेषतः नारी की दुर्दशा का यहाँ बहुत मार्मिक चित्रण देखा जा सकता है । सामाजिक वितण्डावाद का यह एक प्रखर उदाहरण है । यही भाव 'बिल्लेसुर बकरिहा' में भी देखा जा सकता है, किन्तु कुछ भि न्न रूप में । रुढ़ियों को तोड़ने का कार्य वहाँ भी हुआ है। ब्राह्मण होते हुये अपने वर्ग के कर्मेतर बकरियों को रखे जाने का व्यवसाय करता है और विभिन्न क्रिया -कलापों से समाज को चिढ़ाने और उसका मजाक उड़ाने का कार्य भी करता रहता है । बकरी के दूध का दाम अधिक होने के पीछे एक रोचक किन्तु समाज के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति पर व्यंग्य करता प्रकरण बताता है ''आजकल शहरों में महात्मा गाँधी के बकरी का दूध पीने के कारण दूध बकरीदी की बड़ी खपत है, इसलिए गाय के दूध से उसका भाव भी अधिक है।''[२]

विवेकानन्द ने जातिगत संस्कारों को नये सिरे से परिभाषित किया, उसी परिभाषा को

---

१. कुल्लीभाट, निराला रचनावली - ४ पृ० ५९-६०
२. बिल्लेसुर बकरिहा, वही पृ० १०४

निराला 'चोटी की पकड़' उपन्यास में व्यक्त करते प्रतीत होते हैं, जहाँ कुल्ली भाट एवं बिल्लेसुर बकरिहा के माध्यम से स्पष्ट आलोचना करते हैं, वहीं विवेच्य कृति में वह सूक्ष्म व्यंजना करते हैं। सामाजिक वातावरण और उसकी विडम्बना को राज महेन्द्र प्रताप और गरीब जनता के जीवन को देखकर ही समझा जा सकता हैं। सामन्तवादी समाज के अन्तिम सोपान की स्थिति का इस में निरुपण है, जो आखिरी साँसें लेता प्रतीत हो रहा है । इसी कथानक में बुआ के लिए नियुक्त की गयी दासी मुन्ना का षड़यंत्र व समाज के खोखलेपन का संयुक्त उदाहरण इस प्रकरण में देखा जा सकता है, ''जटाशंकर फिर चूमने के लिए लपके। पकड़कर चूमने लगे, तो मुन्ना ने उनके होंठों के भीतर जीभ चला दी और कहा, तुमने हमारा थूक चाटा। हमारी जात कहार की है। हम गढ़-भर में कहेंगे। तुम कौन बाँभन हो ?''[१] इतने भर से ब्राह्मण जटाशंकर सूख गये और जाति के बहिष्कार आदि के भय से मुन्ना की सारी बातें स्वीकार कर लीं ।

'अलका' में भी सामाजिक विरोधाभासी परिस्थतियों का चित्रण है, जबकि निरुपमा में विवेकानन्द की तरह कर्म की महत्ता का प्रतिपादन है । उच्च शिक्षा प्राप्त कुमार जूते की पालिश कर जहाँ एक और मिथक तोड़ता है, वहीं समाज में बौद्धिकता के क्षय को भी प्रकट करता है। बाद में समाज के द्वारा उसे और उसके भाई रामचन्द को जाति बहिस्कृत भी कर दिया जाता है, पर वह अपने सिद्धान्तों पर अटल रहता है । निराला इस उपन्यास के माध्यम से सामाजिक समरसता को कर्म के आधार पर स्थापित करने का प्रयास करते हैं और अन्त में सफल भी होते हैं ।

नारी चेतना के प्रति निराला बहुत सजग एवं चिन्तित रहा करते थे । विवेकानन्द का विचार था कि '' हमें नारियों को ऐसी स्थिति में पहुँचा देना चाहिए, जहाँ वे अपनी समस्या को अपने ढंग से स्वयं सुलझा सकें।''[२] निराला इस विचार को अपने उपन्यासों में समुचित स्थान देते है । 'अप्सरा' में कनक और उसकी माता सर्वेश्वरी के संवाद में चेतना का जो विकास है और कनक द्वारा राजकुमार के सम्बन्ध मं जो विचार है उसमें हम विवेकानन्द के चिन्तन का परिणाम पाते हैं । इसी में तारा के पति चन्दन द्वारा ' कनक को मुँह दिखाई के रूप में 'सती शब्द' से युक्त अँगूठी दिया, वह भारतीय नारी के आदर्श का प्रतीक है । चन्दन और तारा जिस तरह कनक का हर

१. चोटी की पकड़, निराला रचनावली - ४ पृ० १४७ - ४८
२. विवेकानन्द साहित्य -१० पृ० ३२२

साथ देती है, वह भी उत्प्रेरक है। 'अलका' में शोभा का संघर्ष नारी-संघर्ष का प्रतीक है और उसे कई मुद्दों पर एक साथ लड़ना पड़ रहा है। अलका के धर्मपिता स्नेहशंकर का यह कथन, 'इसी भारत में आश्रयहीन बालिका ओर तरुणी विधवाएँ भी हैं।''[१] वहीं इसी उपन्यास की एक पात्र सावित्री है, जो चेतना के लिए क्रियाशील नारी समाज की प्रतिनिधि हैं।

नारी-विचारधारा के क्षेत्रों में निराला का प्रतिनिधित्व 'निरुपमा- उपन्यास करता है। उसके कमरे में रामकृष्णदेव और विवेकानन्द का चित्र लगा हुआ है। वह एक चेतनाशील पात्र है, ठीक उसी तरह जैसी कल्पना विवेकानन्द ने एक शिक्षित नारी के रूप में की थी, उपने अधिकारों को समझने और उस आधार पर अपने भविष्य की रूपेरखा बनाने वाली। वह जमींदार है और समाज की संकीर्णताओं से संघर्ष करती है। लखनऊ से अपनी जमींदारी में आने पर नायक कुमार के भाई के परित्याग के मुद्दे पर, ममेरे भाई सुरेश के साथ तर्क करती है—

''सुरेश— ''निरु, तुम्हें शायद पता नहीं, रामचन्द्र को गाँव वाले छोड़े हुय हैं। हमको रहना तो गाँव वालों के साथ है।''
निरु— '' तो क्या गाँव वालों की मूर्खता के साथ भी रहना है?''
सुरेश— ''नहीं फिर भी अधिसंख्यक लोगों का ख्याल होना जरूरी है जमींदार के लिए। सरकार भी संख्या का विचार करती है।''
निरु— ''पर जबरदस्त कमजोर पर हमला न करे, इसका भी ख्याल सरकार रखती है और जमींदार को रखना चाहिए।''[२]

इस उपन्यास में निरुपमा का कुमार को प्राप्त करने का प्रयत्न और तज्जन्य आदर्श की व्यंजना विवेकानन्द के नारी दृष्टिकोण एवं आदर्श को व्यंजित करता है। एक जमींदार के रुप में उसका व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है। ऐसी ही एक तेजस्वी महिला का 'काले कारनामें' में चित्रण है। बनारस की विधवा, किन्तु तेजस्वी रानी विमला, जो मनोहर से 'कम से कम हजार युवक तैयार कर दो''[३] आवाहन कर अपमान का बदला लेने की बात करती है। वह देश के स्वतंत्रता

---

१. अलका, निराला रचनावली - ३ पृ० १५१
२. निरुपमा, वही पृ० ३८९
३. काले कारनामें, निराला रचनावली- ४ पृ० २५५

आन्दोलन में सक्रियता को प्रेरित करती है । 'चोटी की पकड़' उपन्यास में भी 'बुआजी' का चरित्र और वेश्या एजाज का स्वदेशी आन्दोलन में शामिल हो जाना भी नारी जागृति का ही परिणाम माना जा सकता है।

प्रारम्भिक चारों उपन्यासों को नायिका के नाम पर रखा जाना भी, निराला के इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है कि नारी भारतीय जीवन का आदर्श है । उसकी स्थिति में सुधार किये बिना भारतीय राष्ट्र और समाज की उन्नति संभव नहीं है । अप्सरा, अलका, निरुपमा, प्रभावती एवं अपूर्ण चमेली में नारी की समस्या ही केन्द्र में है और उसी के इर्द-गिर्द कथानक का ताना-बाना बुना गया है। यद्यपि इसी के साथ कई अन्य समस्याएँ भी समन्वित हो जाती हैं।

वस्तुतः निराला के नारी पात्रों का स्वर विवेकानन्द की विचारधारा की सशक्त आवाज के परिणाम के रूप में देखा जाना चाहिए। भारतीय नारी के औदात्य की रक्षा व उसे मौलिक स्थान देने का सशक्त प्रयत्न उनके उपन्यासों में किया गया है। केन्द्रीय सन्दर्भ में वाक्य के रुप में 'अलका' में अजित (वेशधारी धर्मानन्द) स्त्रियों की परिस्थिति को देखकर सोचता है, "कितनी करुणा भारत की झोपड़ी-झोपड़ी में है ? स्त्री आँख की पुतली सी नाजुक है,..........क्या एक बाजू कतर देने पर चिड़िया उड़ सकती है!"[१] इसे हम विवेकानन्द के कथन 'पक्षी का एक पंख के सहारे उड़ना असम्भव है। नारियों की उन्नति होने पर ही भारत का ठीक-ठीक जागरण होगा।"— का रूपान्तरण समझ सकते हैं ।

(ख) कहानी पर

निराला सर्वतोमुखी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के साहित्यकार हैं । साहित्य की जिस विद्या का स्पर्श उन्होंने किया, उसको अपने गरिमामय व्यक्तित्व से प्रभावित किया । कहानी भी इसका अपवाद नहीं है और अन्य विधाओं की तरह विवेकानन्द का प्रभाव भी यहाँ अपवाद नही है । निराला ने अपनी कहानियों के माध्यम से तत्कालीन युग का जो विशद

---

१. अलका, निराला रचनावली - ३ पृ० १८९

चित्रण किया है, वह विवेकानन्द की विचारधारा से ओत प्रोत दिखालाई पड़ता हैं उनकी कहानियों की एक विशेषता यह भी है कि इसमें निरालाका आत्मपरक दृष्टिकोण व प्रत्यक्ष चित्रण अधिक उभर गया है,फलतः वहाँ लेखक का जीवन भी चलता रहता है और पाठक को निराला का जीवन दर्शन भी इन्हीं कहानियों के माध्यम से विदित हो जाता है । निराला के धार्मिक, दार्शनिक , सामाजिक एवं संस्मरमात्मक कहानियों के द्वारा हम उनकी विचारधारा ओर विवेकानन्द की अवधारा में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध का प्रत्यावलोकन कर सकते हैं ।

धार्मिक एवं दार्शनिक प्रभाव- निराला की कहानियों में भी विवेकानन्द के धर्म और दर्शन सम्बन्धी विचारों का सम्यक प्रभाव पड़ा है। उनकी एक कहानी 'स्वामी सारदानन्द महाराज और मैं' में विवेकानन्द की भावधारा के एक सन्त स्वामी सारदानन्द और लेखक के मध्य आध्यात्मिक सम्बन्ध का भाव- प्रवण वर्णन किया गया है । स्वामी माधवानन्द ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की सलाह पर निराला को 'समन्वय' में उपसम्पादक के तौर पर रामकृष्ण मिशन, कलकत्ता में रख लिया था । निराला इस बारे में कहानी में लिखते भी है," बंगाल में रहकर परमहंस श्री रामकृष्ण देव तथा स्वामी विवेकानन्द के साहित्य से मैं परिचय प्राप्त कर चुका था, दो-एक बार श्रीरामकृष्ण मिशन, बेलुड़ दरिद्र नारायणों की सेवा के लिय भी जा चुका था,"[१] निराला का स्वामी सारदानन्द से यहाँ पर प्रथम साक्षात्कार होता है । वह उनकी जीवन चर्या और ज्ञान से प्रभावित होते है, एक प्रश्न भी पूँछ बैठते हैं," यह संसार मुझमें है या मैं इस संसार में हूँ ।" उन्होने बड़े स्नहे से कहा," इस तरह नही ।"[२] निराला उनकी ओर आकर्षित होते हैं, पर उनका 'स्व', 'अहं' उन्हें इससे परे कर रहा था । इसी भाव को व्यक्त करते हुये निराला आत्म-चिन्तन करते हैं," पर मेरी विरोधी शक्ति बराबर प्रबल रही । तीव्र तीक्ष्ण दार्शनिक वज्र- प्रहारों से बराबर मैं मन से उनका अस्तित्व मिटाता रहा, मिटा देता था, — पर आकाश से सीमावकाश में आकर भी आकाश में ही रहता हूँ, ज्यों-ज्यों लड़ता गया - जुदा होता गया, वह भाव प्रबल होता रहा । जीवन्मुक्त महापुरुष क्या हैं, मैं अब और अच्छी तरह से समझने लगा । मैं प्रहार करते हुये जब थक जाता था, तब मेरे मनस्तत्व के सत्य स्परूव स्वामी सारदानन्दजी मुझे रंगीन छाया की तरह

---

१. स्वामी सारदानन्द महाराज और मैं, निराला रचनावली - ४ पृ० ३६७
२. वही, पृ० ३६८

ढँककर हँसते हुये तर कर देते थे''[१] इसके बाद निराला प्रसाद लेने एवं मंत्र के प्रश्न पर भी उनसे जुड़ते हैं और चरम परिणति, रामकृष्ण देव द्वारा स्वामी विवेकानन्द को ध्यानस्थ करने जैसा ही है,'' वह भावस्थ गुरुत्व से मेरे सामने आये, मुझे ऐसा जान पड़ा, एक ठंडी छाँह में मैं डूबता जा रहा हूँ। फिर मेरे गले में अपनी उँगली से एक बीज मन्त्र लिखने लगे। मैंने मन को गले के पास ले जाकर, क्या लिख रहे हैं, पढ़ने की बड़ी चेष्टा की, पर कुछ मेरी समझ में न आया।''[२] निराला अपने आपको सारदानन्द का यन्त्र कहते हैं और अन्त मे,'' इसके बाद एक दिन स्वप्न देखा ज्योतिर्मय समुद्र है, श्यामा की बाँह पर मेरा मस्तक, मैं लहरों में हिल रहा हूँ।''[२] विवेकानन्द भावधारा के सन्त से इस तरह का अलौकिक सम्बन्ध उन्हें इस धारा से प्रभावित बताता है।

निराला की दो कहानियों 'अर्थ' व 'भक्त और भगवान ' में धर्म और दर्शन का वृहद वर्णन है। प्रथम कहानी में धर्म के गूढ़ रहस्यों की व्यंजना की गई है और विवेकानन्द के नव वेदान्त को प्रस्थापित किया गया है। रामकुमार एक सीधा-सादा नवयुवक है, जो ईश्वर पर इस भाव से विश्वास करता है, कि वह कर्त्तव्यों से च्युत हो जाता है। वह लौकिक जीवन में प्रवेश कर कर्म नही करना चाहता, पर ईश्वर से चाहता है कि लौकिक कल्याण होता रहे। प्रारम्भ में ही उसका दृष्टिकोण सीमित है,'' बहू के घर आने पर रामकुमार ज्यो-ज्यों क्षीण हो चला, उसकी ईश्वर भक्ति और आस्तिकता त्यों - त्यों प्रवीण होने लगी।''[३] वह केवल भरतजी का नाम जप कर सम्पत्ति पाना चाहता है और सामाजिक आडम्बरों मे सारा धन खर्च कर देता है, जब नाम जपने पर धन नहीं मिल पाता तब उसका संकीर्ण दृष्टिकोण सामने आता है,''हृदय को बडी चोट पहुँची। जो राम पृथ्वी के ईश्वर है,जो भरत सृष्टि भर को भोजन देते हैं, उन्होंने स्वयं अपने भक्त की लाज ले ली, अब मैं उन्हें किस विश्वास से पुकारूँ। वे मेरे किस काम आयेंगे।''[४] रामकुमार 'राम' को पत्र लिखते हैं, पर पत्र वापस आ जाता है और वे अर्द्ध विक्षिप्त हो जाते हैं। घर -छोड़ चित्रकूट आते हैं, वहाँ कामदगिरि की दुर्गम चढाई करते हैं। उसी समय उन्हें धर्म का यथार्थ बोध होता है और उतर कर नंगे ही बस्ती पार कर जाते हैं। उनका मन इतने उच्चस्तर पर था कि शरीर की नग्नता का कोई प्रभाव न था। थककर वह लेट गये, जागने परमन में शंका हुई कि,'' क्या भगवान नहीं

१. स्वामी सारदानन्द महाराज और मैं, निराला रचनावली - ४ पृ० ३६९
२. वही, पृ० ३७१ ३. अर्थ, वही, पृ० ३५२
४. वही, पृ० ३५४

हें ? सुना ठीक मस्तक के ऊपर से आवाज आयी - 'हैं, हैं ।' तअज्जुब में आ निगाह उठाकर देखा, एक सुग्गा बैठा हुआ फिर टें - टें' कर उठा।''[1] इसके बाद रामकुमार का मन सत्य परिचय में तन्मय होकर एक सरल बालक की तरह बहने लगा, जैसे लेखक ने उसे विवेकानन्द के नववेदान्त और धर्म का मर्म समझा दिया । वहाँ से वह एक परिचित मित्र से मिल जाते हैं और वहीं पर खा-पीकर सो जाते हैं । ''उसी रात सोते हुये उसने स्वप्न देखा, उसका वही मित्र सूर्य की तरह प्रकाशवान, श्यामलाभ, धनुर्धर साक्षात रामचन्द्र हैं, हँसता हुआ कह रहा है, तुमने अर्थ के लिए बड़ा परिश्रम किया, मैंने तुम्हें दिया।''[2] इसके बाद राम कुमार कर्म पथ की ओर अग्रसर होता है और प्रख्यात साहित्यकार बन जाता है । विवेकानन्द द्वारा कर्म की महत्ता का जो प्रतिपादन किया गया है, उसी भाव को प्रकारान्तर से रामकुमार व्यक्त करता है,'' रामकुमार का कहना है कि ईश्वर ही अर्थ है, वह जिस भक्त पर कृपा करते हैं, उसमें सूक्ष्म अर्थ बनकर रहते हैं, जिससे वह स्थूल अर्थ पैदा करता रहता है।''[3] इस तरह शून्यवाद और आस्थावाद के मध्य टकराहट में आस्था की विजय होती है ।

निराला की 'भक्त और भगवान' कहानी भी विवेकानन्द के नववेदान्त दर्शन से प्रभावित हैं । कुछ विद्वानों ने इसको लेखक की व्यक्तिगत कथा के तौर पर देखा है । भक्त के परिचय से यह बात सिद्ध भी हो जाती है,' पिता राजा के यहाँ साधारण नौकर थे । उसे इसका ज्ञान रहने पर भी न था । ''[4] 'अर्थ' की ही कहानी के मूल प्रश्न को और व्यापक रूप में उठाया गया है । भक्त महावीर का उपासक है और यथार्थ की दुनिया से कटा हुआ है । गाँव से बाहर के एकान्त में महावीर को सन्दुर मूर्ति स्थापित करता है । वह महावीर का श्रृंगार जिस प्रकार करता है, वहीं झलक उसे पत्नी में दिखाई देती है और स्वप्न में भी महावीर की मूर्ति के सामने पत्नी ही दिखाई पड़ती है । भक्त को विस्मय में देखकर पत्नी बोली,'' प्रिय, महावीर को मैं मस्तक पर धारण करती हूँ ।'' स्वप्न में भक्त ने पूछा,'' मैं नही समझा- अर्थ क्या है ?''बड़ी रहस्यमय मुस्कान आँखों में दिखायी दी । ''उठो''' पत्नी ने कहा, '' अर्थ सब मैं हूँ - मुझे समझो ।''[5] यहाँ पर विवेकानन्द के इस विचार को प्रतिफलित देख सकते हैं,'' तुम्हें सदा स्मरण रखना होगा कि वेदान्त का मूल

---

१. अर्थ, निराला रचनावली - ४ पृ० ३५९ २. वही पृ० ३६०
३. वही, ४. भक्त और भगवान, वही, पृ० ३९६ ५. वही पृ० ३९९

सिद्धान्त यह एकत्व अथवा अखण्ड भाव हैं। द्वित्व कहीं नहीं है। ------- एकमात्र जीवन है, एकमात्र जगत है, एकमात्र सत् है। सब कुछ वहीं एक सत्ता मात्र है, भेद केवल परिमाण है, प्रकार का नहीं।''

अन्त में भक्त निरंजन रहस्य को समझने लगा। उसने यह बोध प्राप्त कर लिया कि ईश्वर संसार के कण-कण में समाया हुआ है और ईश्वर और संसार भी एक ही है, ''इसके बाद भक्त की भावना बढ़ चली। प्राणों में प्रेम पैदा हो गया। यह बहुत दूर का आया हुआ प्रेम है, यह वह न जानता था। क्योंकि वह जागृत लोक में ज्यादा बँधा था। उसकी मुक्ति जागृत की मुक्ति थी।''[१] इस तरह भक्त निरंजन,' अर्थ' के रामकुमार से जुड़ जाता है और दोनों मिलकर विवेकानन्द के नववेदान्त के वाहक बन जाते हैं, जिसमें जीवन के यथार्थ पक्षों की अवहेलना न करने का भाव निहित है। ईश्वर की उपासना को स्थूलता का आवरण प्रदान करना उस विराट की विराटता को सीमित दायरे में बाँध देना है। इस तरह अकर्मण्यता और संकीर्णता का त्याग कर उदात्त भाव ग्रहण करना चाहिए।

धर्म को संकीर्णता की सीमा में बाँधकर समाज में अतार्किक वातावरण के सृजन का भी निराला ने विरोध किया। विवेकानन्द की तरह उनकी कहानियों में भी 'धर्म' अनुभूति के रूप में ही स्वीकृत ह। उसके वाह्य रूप या आडम्बर को ही धर्म मानकर किये जा रहे अवैज्ञानिक पद्धति को अस्वीकार्य घोषित किया। 'कमला' में एक दिन उसके मुसलमान के घर रहने के कारण उसके पति द्वारा उसका परित्याग इसी भाव बोध का सूचक है। 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी ' का प्रारम्भ ही इसी कृत्रिम धर्म की रक्षा का भाव व्यक्त करते ही हुआ है। वास्तव में विवेकानन्द की विचारधारा के अनुसार धर्म का स्थूल अवलोकन समाज और धर्म दोनों के लिए बाधक है। ईश्वर सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है और संसार उसी का विस्तार है, अतः यहाँ सब कुछ उसी में बिम्बित है। उस विराट की अभिव्यजना व्यापक रूप से ही हो सकती है, क्योंकि ''तृण-तृण पूजा के रूपक हैं। इसके बाद उन्हीं पुष्पों के पूजाभावों में छन्द और ताल प्रतीयमान होने लगे - सब जैसे आरती करते, हिलते, मौन भाषा में भावना स्पष्ट करते हो, सबसे गन्ध निर्गत हो रही है, पुष्प - पुष्प पर कही से अज्ञात आशीर्वाद की किरणें पड़ रही हैं।''[२]

---

१. भक्त और भगवान, निराला रचनावली - ४ पृ० ३९९

२. वही, पृ० ४०२

निराला ने धार्मिक कर्मकाण्डों और आडम्बरों को वाह्य अनुष्ठान माना, ठीक उसी तरह जैसे विवेकानन्द ने । उन्होंने 'चतुरी चमार' में भी धर्म को खान पान आदि से जोड़े जाने का विरोध किया और कई जगह स्वयं उसका नेतृत्व भी किया । वे चतुरी के हाथ का लाया हुआ सामान ग्रहण करते हैं, भले ही इसके बदले परम्परावादी ब्राह्मण उन्हें त्याग देते हैं,'' मुझे क्षणमात्र में यह समझ लेने का काफी अभ्यास हो गया था। गुरुमुख ब्राह्मण आदि मेरे घड़े का पानी छोड़ चुके थे ।''[१] परमात्मा को परम्परा या अनुष्ठानों से जोड़ा जाना भी निराला के लिए अभीष्ट नहीं था । वे ईश्वर को भले-बुरे सन्दर्भों से अलग रख कर निरपेक्ष सत्ता के रूप में स्वीकार करते है । 'क्या देखा' कहानी में ' हीरा' नायिका के पुरुष नाम ' अमर सिंह' इसी भाव को व्यक्त करते हुये कहते हैं,'' यों निर्विकार ईश्वर मानना पड़ता है, पर उसे किसी की बधाई की क्या अपेक्षा और गलतियों की क्या परवा ? जहाँ भले-बुरे का प्रसंग है, वहाँ परमात्मा को घसीटना अन्याय है ।''[२]

ईश्वर की विवेचना करते हुये निराला ने अपनी कई कहानियों में उसको अव्यक्त और सर्वव्यापी बताया है । वह सत्, चित और आनन्द के त्रिकोण के साथ ही सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की त्रिवेणी हैं, ''कला एक बोध है, उसका स्पष्टीकरण किया जा सकता है, जैसे ब्रह्म के अलग-अलग रूपों की बात नहीं कही गई, केवल साच्चिदानन्द कह दिया गया है, इसी को साहित्यकों ने 'सत्य शिव और सुन्दर ' कहकर अपनाया है ।''[३] निराला ने ईश्वर को अलौकिक प्रेम की गहरी अनुभति बताया,'' भक्त की भावना बढ़ चली । प्राणों में प्रेम बढ़ गया । यह बहुत दूर का आया हुआ प्रेम था, यह वह जानता न था । क्योंकि वह जाग्रत की मुक्ति थी ।'' यही दूर का प्रेम नववेदान्त की दृष्टि से सभी जीवों में बराबर प्रवाहित होता रहता है । 'क्या देखा' में अमर सिंह (हीरा बाई) जानकी बल्लभ बिहारी से कहते है,'' खैर, मैं देखता हूँ, हर मनुष्य में बल्कि हर जीव में प्रेम धारा बहती है ।''[४] यह प्रेम की धारा ही मनुष्य को आत्मस्थ होने की प्रेरणा देती है और ईश्वर पर अटल विश्वास का सृजन करती हैं । 'अर्थ' कहानी में इसी विश्वास चरम परिणति - '' कितना अविश्वास इन्हें ईश्वर पर है - पशु- पक्षिउ की लेत खबरिया, तोरिउ सुरति करै, अरे मन धीरज क्यों न धरै! ''[५]

१.	चतुरी चमार, निराला रचनावली - ४		पृ० ३८३
२.	क्या देखा,	वही	पृ० २९२
३.	कला की रूप रेखा,	वही,	पृ० ४०८
४.	क्या देखा,	वही	पृ० ३९९
५.	अर्थ	वही	पृ० ३५२

मानवतावादी विचारधारा का प्रभाव

निराला पर विवेकानन्द के मानवतावादी दृष्टिकोण का विशेष प्रभाव था। वे मानव मात्र की अनुभूतियों को कहानियों के माध्यम से संवेदनशील ढंग से व्यक्त करते हैं। विवेकानन्द के प्रभाव के परिणाम स्वरूप उन्होंने समाज के सबसे दुर्बल और कमजोर वर्ग को अपनी कहानियों में मुख्य स्थान दिया है। उनकी मानवातादी भावना कहानी के लिए उर्वर- मनीषा तैयार करती है। विवेकानन्द का यह विचार-" मैं ऐसे ईश्वर को नही चाहता, जो करोड़ों भूखों को भोजन न दे सके -" निराला के लिए प्रेरणा का कार्य करता था। उनकी 'देवी' कहानी में निराला का सम्पूर्ण मानववादी दृष्टि अपने ज्वलन्त प्रश्न के रूप में मुखरित हुई है। 'दो दानें', ' कमला', 'ज्योतिर्मयी' आदि कहानियों में भी मानवता का प्रश्न उपस्थित है, जिसको लेखक ने अपने व्यापक नववेदान्ती दृष्टिकोण से देखा, इसलिए उनकी ' देवी' परम्परा से अलग हट कर एक गूँगी और पगली है, जो विवेकानन्द के भाव, जीव ही शिव है'- को व्यंजित करता है।

मानवता के ज्वलन्त प्रश्न के रूप में'देवी' कहानी उनकी प्रतिनिधि कहानी है। उसका प्रारम्भिक चित्रण ही भाव प्रवण बनकर हृदय को उद्वेलित करने वाला है," एक रास्ते के किनारे बैठी थी, एक फटी धोती पहने हुये। बाल कटे हुये। —— " यह क्या है ? " उम्र पच्चीस साल से कम। दोनों स्तन खुले हुये। —— यह कौन है, हिन्दू या मुसलमान ? उसके एक बच्चा भी है। पर इन दोनों का भविष्य क्या होगा। यह क्या सोचती होगी, ईश्वर, संसार, धर्म और मनुष्यता के सम्बन्ध में।"[१] यह चित्रण विवेकानन्द द्वारा विवेचित लाखों, हजारों पीड़ित मानवों के वर्णन का साहित्यिक प्रकटीकरण है, जिसके व्यष्टि में समष्टि-मानवता का प्रश्न निहित है। इसी तरह 'श्यामा' में साढ़े सात रूपये के लिए जमींदार दयाराम द्वारा कृषक मजदूर ' सुधुआ' को पीटे जाने - का दृश्य भी देश के बहुसंख्यक किसानों के वेदना और शोषण का मार्मिक दृश्य प्रस्तुत करता है। 'ज्योतिर्मयी' में विजय को पैसे व सामाजिक भय के आगे मानवता के प्रश्न को त्यागने से उसका मित्र वीरेन्द्र उसका परित्याग कर देता हैं और पत्नी भी उसे प्राप्त कर वेदना ही प्रकट करती है। 'सफलता' कहानी में भी विधवा 'आभा' से नवीन राह का उल्लेख करते हुये' नरेन्द्र' कहता

---

१. देवी, निराला रचनावली - ४ पृ० ३७३

है,“ तुम्हारे और मेरे जीवन से बंधकर बिल्कुल एक नया, जिससे आगे और लोग आयेंगे, मनुष्य के लिए मनुष्य होने का।”[१]

जिस तरह विवेकानन्द मानव के अनन्त जीजिविषा को व्यक्त करते हैं और उसमें अपार शक्ति व वीरता की बात करते हैं, उसी तरह निराला भी लिखते हैं, “आज तक कितने वर्षा-ग्रीष्म इसने झेले हैं, पता नहीं। लोग नेपोलियन की वीरता की प्रशंसा करते हैं। पर यह कितनी बड़ी शक्ति है, कोई नहीं सोंचता। सब इसे पगली कहते हैं, पर उसके इस परिवर्तन के क्या वहीं लोग कारण नहीं ?[२] निराला उस देवी के प्रति समाज के राजनीतिक, धार्मिक और बौद्धिक लोगों के उपेक्षित दृष्टिकोण को भी व्यक्त करते हैं। एक बड़े राजनेता का बड़ा जुलूस उसके लिए आश्चर्य का विषय था, किन्तु लोग जब उसके बच्चे को कुचल देते हैं, तो वह ज्वलामयी दृष्टि से जनता को देखती है। इसी तरह नेताजी को दस हजार रूपये की थैली भेट की गयी, जो वह गरीबों के उपकार के लिए खर्च करेंगे। उसी जगह सामने खड़ी उस निरीह औरत की ओर उनका या जनता, किसी का भी ध्यान नहीं जाता। रामायण का पाठ समाप्त होने के बाद भक्तजनों का उस तथाकथित पगली के प्रति व्यक्त विचार उनके मानवता के खोखलेपन को ही व्यक्त करता है, “ एक ने कहा, इसी संसार में स्वर्ग और नरक देख लो। दूसरे ने कहा, कर्म के दण्ड हैं। तीसरा बोला, सकल पदारथ है जग माहीं, कर्म- हीन नर पावत नाहीं। सब लोग पगली को देखते, शास्त्रार्थ करते चले गये।”[३] विवेकानन्द के लिए पीड़ित जन ही शास्त्र है, ईश्वर है, उसी भाव को निराला भी व्यक्त करते हैं। बौद्धिक वर्ग की प्रतिक्रिया लेखक के मित्रों में व्यक्त होती है, जहँ पगली के बच्चे के गिरने पर उनकी उपेक्षापूर्ण भावना से, निराला को तीव्र वेदना होती है और वे बच्चे को उठा लेते हैं। उस पर “मेरे एक मित्र ने कहा,“अरे, यह गन्दा रहता है।” मैं गोद में ले कर उसे हिलाने लगा। उतनी चोट खाया हुआ बच्चा चुप हो गया, क्योंकि इतना आराम उसे कभी नहीं मिला।”[४]

निराला की मानवतावादी विचार धारा का प्रत्यक्ष चित्र‘ देवी’ कहानी में ही पगली देवी के बच्चे और उसके भविष्य के सन्दर्भ में व्यक्त चिन्ता में और अधिक तीव्रता के साथ देखा जा

१. सफलता, निराला रचनावली - ४ पृ० ३९३
२. देवी, वही पृ० ३७३
३. वही पृ. ३७५
४. वही पृ० ३७७

सकता है । उसके प्रति सामान्य जन की प्रतिक्रियास्वरूप लेखक ने होटल के नौकर संगमलाल से हुई बातचीत का जिक्र किया । संगमलाल ने मुझसे कहा," बाबू यह मुसलमान है," मैने उससे पूछा," तुम्हें कैसे मालूम हुआ," उसने बतलाया," लोग ऐसा ही कहते हैं," कि पहले यह हिन्दू थी, फिर मुसलमान हो गयी, इसका बच्चा मुसलमान से पैदा हुआ है, पहले वह पागल नहीं थी, न गूँगी, बाद को हो गयी । मैंने सुन लिया ।"[१] समाज के विभिन्न वर्गों के विपरीत लेखक का दृष्टिकोण अलग था, क्योंकि 'पगली का ध्यान ही मेरा ज्ञान हो गया । उसे देखकर मुझे बार-बार महाशक्ति की याद आने लगी । महाशक्ति का प्रत्यक्ष रूप संसार को इससे बढ़कर ज्ञान देने वाला और कौन सा होगा ? राम, श्याम और संसार के बड़े-बड़े लोगों का स्वप्न सब इस प्रभात की किरणों में दूर हो गया। बड़ी-बड़ी सभ्यता, बड़े-बड़े शिक्षालय पूर्ण हो गये । मस्तिष्क को घेर कर यही महाशक्ति अपनी महानता में स्थित हो गयी। उसके बच्चे में भारत का सच्चा रूप देखा, और उसमें- क्या कहूँ, क्या देखा ।"[२]

पगली गूंगी अनाथ, एक बच्चे की माँ को निराला ने देवी की संज्ञा देकर विवेकानन्द की विचारधारा-" मानवजाति को सर्वत्र एवं तब तक सहायता एवं प्रेरणा देते रहना चाहिए जब तक कि समग्र जाति ईश्वर के प्रति एकता का अनुभव नहीं कर लेती-" को अपनी इस कहानी में व्यावहारिक रूप दिया । उसमें महाशक्ति की अभिव्यंजना कर निराला ने विवेकानन्द के नव वेदान्त को एक और आयाम दिया । इस एक चित्र के द्वारा उन्होंने सारी की सारी मानवता सशरीर उपस्थित कर दिया । इस दृश्य से बढ़कर मानवता की शिक्षा और कहीं मिल पाना सम्भव नहीं है," देश में शुल्क लेकर शिक्षा देने वाले बड़े-बड़े विश्वविद्यालय हैं । पर इस बच्चे का क्या होगा ? इसके भी माँ है । वह देश की सहानुभूति का कितना अंश पाती है । हमारी थाली की बची रोटियाँ, जो कल तक कुत्तों को दी जाती थी। यहीं, यही हमारी सच्ची दशा का चित्र है । वह माँ अपने बच्चे को लेकर राह पर बैठी हुई धर्म, विज्ञान, राजनीति, समाज जिस विषय को भी मनुष्य हो कर मनुष्यों ने आज तक अपनाया है, उसी की भिन्न रुचि वाले पथिक को शिक्षा दे रही है - पर कुछ कह कर नहीं । कितने आदमी समझते हैं? यही न समझना संसार है- बार-बार वह यहीं कहती है । उसकी

---

१. देवी, निराला रचनावली - ४ पृ० ३७५
२. वही, पृ० ३७४

आत्मा से यही ध्वनि निकलती है- संसार ने उसे जगह न दी- उसे नहीं समझा, पर संसारियों की तरह वह भी है- उसके भी बच्चा है।''[१]

निराला की कहानियों में मानवतावाद का स्वर विश्व- बोध के साथ मिलता हुआ दिखाई पड़ता है । विवेकानन्द सम्पूर्ण विश्व के प्रति एकत्व का बोध कराना चाहते थे । उनका आदर्श 'आत्मनो मोक्षार्थ जगत् हिताय च' है, जिसमें सम्पूर्ण संसार का कल्याण समाहित है । इसी भावना का प्रकटीकरण उनके अनेक वक्तव्यों में मुखरित हुआ है । इस महती भावना का प्रभाव निराला पर भी दिखाई पड़ता है । वे नीवन विश्व दृष्टि के तहत समाज के सबसे दुर्बल और कमजोर वर्ग को एक सार्थकता बोध देना चाहते हैं। विवेकानन्द का मौलिक चिन्तन निराला के लिए उर्वर धरातल की पृष्ठभूमि तैयार करता है, जो उनकी कहानियों को नितान्त मानवीय बना देती है । 'दो-दान' का आर्थिक - संकट किस तरह मानवता के लिए प्रश्नचिह्न खड़ा करता है, वह सम्पूर्ण मानवता पर एक करारा चोट करती है,'' शैलाधिराज तनया नमयो न तस्थौ'' वाली दशा चम्पा की थी । जो कुछ भी वह कर रही थी, प्रकृति के इंगित से, जैसे - उसका अपना कोई बस नहीं है । रोज सैकड़ों आदमियों के मरने और भीख माँगते फिरने की खबरें सुनती थी और कुछ देखती भी थी । परिस्थितियों को दूर तक समझने की ताकत न थी, न परिस्थिति के खिलाफ कदम उठाने की हिम्मत ।''[२] इस प्रकार निराला मानवतावाद के सबसे नीचे की सीढ़ी को विषय बनाकर विश्वबोध के साथ समन्वित कर देते है, जिसे विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त का प्रतिफल कहा जा सकता है ।

राष्ट्रीयता व देश प्रेम सम्बन्धी विचारों का प्रभाव

विवेकानन्द भारतीय राष्ट्रीयता के महान उन्नायक थे । वे भारत को एक सजीव एवं करुण प्राणी के रूप में देखते है । राष्ट्रीयता के पुनरुत्थान के लिए सम्पूर्ण देश को अपने ओजस्वी भाषणों के द्वारा जाग्रत करने का प्रयास किया । निराला में विवेकानन्द के सन्देशों को प्रतिफलित

---

१. देवी, निराला रचनावली - ४ पृ० ३७४
२. दो दानें, वही पृ० ४४०

होते हुये देखा जा सकता है उनकी कहानियों में भी उनके व्यापक सन्देशों का प्रमाण मिल जाता है; देश काल की परिस्थिति और राष्ट्रीय चेतना को अनेकानेक स्थानों पर प्रमुखता देकर निराला ने अपने बहुमुखी प्रतिभा का उन्नयन किया । उनकी कहानी ' पद्म ाया लिली' मे नायक राजेन्द्र विलायत से बैरस्टिर होकर आया । उसके पिता ने कहा, '' बेटा अब अपना काम देखो ।'' राजेन्द्र ने कहा ,'' जरा और सोच लूँ, देश की परिस्थिति ठीक नही ।'' वहीं पर नायिका पद्मा से भेट होने राजेन्द्र कहता है,'' बैरिस्टरी में जी नहीं लगता पद्मा, बड़ा नीरस व्यवसाय है, बड़ा बेदर्द । मैने देश की सेवा का व्रत ग्रहण कर लिया है, और तुम ?'' मैं भी लड़कियो' को पढ़ाती हूँ''[१] एक सामाजिक प्रेम कहानी में इस तरह के विचार समाहित कर लेखक ने राष्ट्रीयता के समुत्थान का कार्य भी किया । इसी तरह का स्फुट सन्देश एक रोमानी कहानी ' प्रेमिका- परिचय' में भी हैं जहाँ प्रेकुमार नायिका के समय पर न मिलने पर इस बात को राष्ट्रीयता से जोड़कर कहते है, '' हिन्दोस्तानी सबसे पहले इसीलिए बदनाम हैं कि वादे के हजार पीछे दो भी पक्के नहीं निकलते । तभी तो गले से गुलामी छूटती नहीं । ऐसी - ऐसी गन्दी आदत वाले अगर चाहे कि अपना सुधार सामाजिक, राजनीतिक कर लें, तो क्या खाक करेंगे ?''[२] ऐसा ही प्रसंग-'न्याय' कहानी में भी लाया गया है, जहाँ राजीव नामक युवक दर्द से कराहते एक व्यक्ति को अस्पताल ले जाने का प्रयास करता है, किन्तु वह मर जाता है । थानेदान अन्त में निष्कर्ष लिखता है,'' जान पड़ता है, यह कोई क्रान्तिकारी था, बम लिये जा रहा था, एकाएक बम के धड़ाके से काम आ गया है ।'[३] इस तरह के उद्धरण से हम निराला के अचेतन मन पर राष्ट्रीयता की गहरी छाप देख सकते हैं । ' देवी' कहानी में भी लेखक के बालों को देख कर हँसते हुये अंग्रेजो को 'पगली उतनी ही उन्हें देख-देखकर हँस रही थी । गोरे गम्भीर हो जाते थे । मैंने सोचा, मेरा बदला इसने चुका लिया ।''[४] इसके द्वारा भी राष्ट्रीयता और खुद के गुलाम होने के बोध को प्रकारान्तर से तोड़ने का प्रयास किया ।

विवेकानन्द ने राष्ट्रोत्थान के लिए सर्वस्व त्याग का आहवान किया । ''आगामी पचास वर्ष के लिए यह जननी जन्मभूमि भारत माता ही मानों आराध्य देवी बन जाय । — अपना

१.	पद्मा या लिली,	निराला रचनावली -४	पृ० ३०३
२.	प्रेमिका परिचय	वही	पृ० ३२८
३.	न्याय	वही	पृ० ३६६
४.	देवी	वही	पृ० ३७५

सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ है, सर्वत्र उसके पैर है और सर्वत्र उस के कान हैं।''[१] यही विराट भावना निराला के कहानी 'भक्त और भगवान' कहानी में देखी जा सकती है। जहाँ भारत का व्यापक चित्र निरंजन को दिखाई पड़ता है,'' समय समझकर महावीरजी फिर आये। उसने आज महावीर की वीर मूर्ति देखी। मन इतने दूर आकाश पर था कि नीचे समस्त भारत देखा, पर यह भारत न था- साक्षात् महावीर थे, पंजाब की ओर मुँह , दाहिने हाथ में गदा-मौन शब्द शास्त्र, बंगाल के ऊपर दायें - बाँये पर हिमालय पर्वत की श्रेणी, बगल की नीचे बंगोपसागर, एक घुटना वीर - वेश - सूचक -टूटकर गुजरात की और बढ़ा हुआ, एक पैर प्रलम्ब- अगूँठा कुमारी - अन्तरीप, नीचे राक्षस - रूप लंका कमल - समुद्र पर खिला हआ।''[२] इस विराट चित्र को उकेरने के बाद ध्यनि हुई,'' वत्स, यह वीर - रूप समझो।'' इसके बाद प्रेमानन्दजी की प्रशान्त मूर्ति ऊषा के अरुण प्रकाश की तरह भक्त के सुन्दर मन के आकाश से भी ऊँचे उगी। ध्वनि हुई,'' वत्स, यह सूक्ष्म भारत है, इससे नीचे नहीं उतर सकते, इनका प्रसार समझ के पार है।'' एक बार सूर्य दिखाई दिया, फिर अगणित तारे, प्रकाश मन्दतर होता हुआ विलीन हो गया। '[३] यहाँ पर निराला के सूक्ष्म भारत का विवेकानन्द के सर्वव्यापी भारत से कितना अधिक साम्य है। जैसे विवेकानन्द के विराट - व्यापक भारत को निराला ने अपने सूक्ष्म भारत के अन्दर समाहित कर लिया है। उस पर विवेकानन्द की भावधारा के प्रतिनिधि शिष्य- सदस्य स्वामी प्रेमानन्द का आगमन इस तथ्य को और अधिक प्रमाणित कर देता है। भारतीय राष्ट्र का मेरुदण्ड धर्म को बताने के विवेकानन्द के विचार को निराला ने यहाँ पर ग्रहण किया है और महावीर की विशाल वीर मूर्ति में सम्पूर्ण भारत को समाहित करते हुये राष्ट्रीय चेतना का प्रसार देखा है। इस आधार पर सिद्ध होता है, निराला की कहानियों में राष्ट्रीयता के लिए सक्रिय मनोभूमि के वातावरण का सूत्र विवेकानन्द से ही मिलता है।

निराला की कहानियों में राष्ट्रीय आन्दोलन की झलक भी देखी जा सकती है। 'चतुरी- चमार' में इसका प्रत्यक्ष चित्र देखा जा सकता हैं। राष्ट्रीयता का जन-जन तक प्रसार न होने

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ५ पृ० १९३
२. भक्त और भगवान, निराला रचनावली -४ पृ० ४०१
३. वही

के कारण ही विवेकानन्द भारतीय स्वतंन्त्रता की स्थापना में तमाम दिक्कतों की बात करते हैं, निराला काफी कुछ ऐसा ही विचार रखते है । वे इसी परिथिति की बात करते है,' इन्ही दिनों देश में आन्दोलन जोरों का चला - यहीं जो चुतरी आदिक के कारण फिस्स हो गया है । --------- किसान रोज इकट्ठे होकर झण्डागीत गाया करते हैं । साल भर वाद जब आन्दोलन में प्रतिक्रिया हुई, जमीदारों ने दाँव करना और रियाया का बिना किसी रियायत के दबाना शुरू किया,''[1] निराला इस आन्दोलन के सीमित होने के लिए अशिक्षा और दलित चेतना का समुचित विकास न होने को मुख्य कारण के रूप में देखते हैं । क्योंकि अशिक्षित व अचैतन्य जनसाधारण को जमीदार आदि शोषक वर्ग आसानी के साथ राष्ट्र की मुख्य धारा से हटाकर रोटी तक के लिए सीमित कर देता है । इसलिए उनके उत्थान हेतु सब कोणों से प्रयास किये जाने चाहिए ।

राष्ट्रीय आन्दोलन की विडम्बना जन सामान्य के अप्रसार तक ही सीमित नहीं रहती, बल्कि उससे कुछ और आगे जाती है, जहाँ पर इसके केन्द्रीकृत नेतृत्व का विकास होता है । 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' में कुछ ऐसा ही चित्रित किया गया है । षोडशी सुपर्णा का विवाह पैंतालीस वर्षीय गजानन्द शास्त्री के साथ होता है, वहीं,'' इस समय देश में आन्दोलन हुआ, पिकेटिङ्ग के लिए देवियों की आवश्यकता हुई - पुरुषों का साथ देने के लिए भी । ------- शास्त्रीजी की सलाह से एक जेवर बेचकर शस्त्रिणीजी ने दो सौ की थैली (महात्माजी) उन्हें भेट की ।''[2] आन्दोलन के बाद शस्त्रीणी जी लेखिका बन गईं, एक बार लिखा,'देश को छायावाद से जितना नुकसान पहुँचा है उतना गुलामी से नहीं । ———— शास्त्रिणीजी भी जौनपुर से खड़ी होकर सफल हुईं । अब उनके सम्मान की सीमा न रही । एम०एल०ए० हैं ।''[3] इस एक वाक्य 'देश को छायावाद से जितना नुकसान पहुँचा है उतना गुलामी से नहीं से निराला ने राष्ट्रीय आन्दोलन की सम्पूर्ण एकांगिता को स्पष्ट कर दिया, विवेकानन्द की तरह सर्वतोमुखी जागरण की आवश्यकताका सन्देश व्यंजित किया ।

निराला ने कांग्रेस के प्रति अपनी कहानियों में भी विचार व्यक्त किये हैं । कांग्रेस का

---

१. चतुरी चमार, निराला रचनावली - ४ पृ० ३८५
२. श्रीमती गजानन शास्त्रिणी, वही पृ० ४३२
३. वहीं पृ० ४३३

विस्तार हो रहा था, विवेकानन्द का सोये हुये राष्ट्र को हर तरफ से धक्के देने का भाव सम्बन्धी दृष्टि कोण विस्तृत हो रहा था। वे कांग्रेस की परिलब्धियों पर सन्तोष व्यक्त किया करते थे। निराला के समय सक्रियता बढ़ गई थी। 'चतुरी चमार' में गाँव के लोग निराला के पास सहयोग माँगते हैं और थानेदार के आगमन पर वे उसके प्रश्नों का जबाब देते हैं। गाँव में थानेदार साहब ने मुझसे पूँछा, "आप कांग्रेस में हैं ?" मैंने सोचा इस समय राष्ट्रभाषा का महत्व बढ़कर होगा कहा," मैं तो विश्व सभा का सदस्य हूँ।" ---------- थानेदार साहब ने पूँछा, "कांग्रेस की चिट्ठियाँ आती हैं ?" इस गाँव में कांग्रेस है।" मैंने सोचा -" युधिष्ठिर की तरह सत्य की रक्षा करूँ तो आनत्य भाषण का पाप लगेगा।" कहा -" इस गाँव के लोग तो कांग्रेस का मतलब भी नही जानते।"[१] इस प्रकार से निराला ने कांग्रेस के प्रति संवेदनात्मक लगाव रखा और उसके उपलब्धियों की एकांगिता को स्वीकार करते हुये भी मुख्य धारा से जुड़ा हुआ स्वीकार किया।

सामाजिक विचार धारा का प्रभाव

निराला के समय की सामाजिक संरचना में विवेकानन्द के युग की अपेक्षा बहुत अधिक क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हुआ था। समाज की आधारभूत मान्यताएँ वही थी, जिससे निराला को समाज के विसंगतियों का सामना करना पड़ा। उनकी कहानियों में इन्हीं विसगंतियों को मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया गया है। विवेकानन्द जाति व्यवस्था की संकीर्णता का विरोध कर मानवता के आदर्श के लिए हर वर्गो में सामजिक समरसता के प्रवाह पर जोर दिया। निराला ने निराला ने 'चतुरी चमार' कहानी में इसी भाव की मुख रूप में रखा है, "मैं ब्राह्मण संस्कारों की सब बातों को समझ गया। --- चमार दबेंगे, ब्राहम्ण दबायेंगे। दवा है, दोनें की जड़े मार दी जाय, पर यह सहज साध्य नही।"[२]

निराला ने समाज के कुप्रथाओं को धार्मिकता का आवरण दिये जाने का विरोध किया और इसी को केन्द्र में रखते हुये 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' का आरम्भ करते हैं,

---

१. चतुरी चमार, निराला रचनावली - ४ पृ० ३८६
२. वही पृ० ३८२

''श्रीमान शास्त्रीजी ने आप के साथ चौथी शादी की है, धर्म की रक्षा के लिए शास्त्रिणीजी के पिता को षोडशी कन्या के लिय पैंतालीस साल का बर बुरा नहीं लगा, धर्म की रक्षा के लिए । वैद्य का पेशा अख्तियार किये शास्त्रीजी ने युवती पत्नी के आने के साथ शास्त्रिणीजी का साइन बोर्ड टाँगा, धर्म की रक्षा के लिए । शास्त्रिणीजी उतनी ही उम्र में गहन पातिव्रत्य पर अविराम लेखनी चालना कर चली, धर्म की रक्षा के लिए ।''[१] यहीं वे धर्म को केवल अनुष्ठानों और वाह्य आडम्बरों तक सीमित किये जाने पर व्यंग्य भी करते है,'' इससे सिद्ध है कि धर्म बहुत ही व्यापक है । सूक्ष्म दृष्टि से देखने वालों का कहाना है कि नश्वर संसार का कोई काम धर्म के दायरे से बाहर नहीं । सन्तान पैदा होने के पहले से मृत्यु के बाद - पिण्डदान तक जीवन के समस्त भविष्य, वर्तमान और भूत को व्याप्त कर धर्म ही धर्म है ।''[२] लौकिक स्थूलता की अभियंजना का यह धार्मिक आधार ही कही - कहीं बहुत अमानवीय हो उठता है । 'श्यामा' में सुधुआ (श्यामा के पिता) की मृत्यु के बाद सम्पूर्ण गाँव के लोग अन्त्येष्टि में किसी भी तरह का सहयोग नहीं करते । लोध समाज को ब्राह्मण बंकिम की मानवीयता अपने समाज के लिए कलंक लगती है, जब कि बंकिम के पिता पं० राम प्रसाद बंकिम को सुधुआ को दवा पिलाते देखकर सिंह गर्जना कर उठते हैं ।- '' क्यों चमार, धर्म धोकर पी गया ''[3] यहाँ हम विवेकानन्द के उद्घोष,'' सैकडों जातियाँ ! यदि कोई किसी की थाली छू दे तो वह चिल्ला उठता है,'' परमात्मा उबार लो, मैं भ्रष्ट हो गया। '' का प्रभाव प० रामप्रसाद के कथन से और प्रखर रूप में देखा जा सकता हैं जहाँ मृत प्राय लोध की सेवा करना ही धर्म को भ्रष्ट कर देता है ।

जाति प्रथा की विसंगति को ही निराला ने ' पद्मा या लिली' में व्यक्त किया है जहाँ पद्मा और राजेन के मध्य का प्रेम, पद्मा के पिता रामेश्वर को सहय नहीं है, वे कहते है, चुप रहो । तुम्हें नही मालूम ? तुम ब्राह्मणकुल की कन्या हो, वह क्षत्रिय घराने का लड़का है- ऐसा विवाह नहीं हो सकता । ''[४] समाज में बाल विवाह को निराला ने एक विडम्बना के रूप में ग्रहण किया है । विवेकानन्द ने भी बाल विवाह की संकीर्णता को समाज के लिए अभिशाप माना । उसको धर्म का

---

१. श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी, निराला रचनावली - ४ पृ० ४२४
२. वही
३. श्यामा, वही पृ० ३३०
४. पद्मा या लिली, वही पृ० ३०१

जामा पहनाने पर ललकारते हुये कहते थे, आठ वर्ष की कन्या के साथ तीस वर्ष के पुरुष का विवाह करके कन्या के पिता - मातओ के आनन्द की सीमा नही रहती। --- फिर इस काम में बाधा पहुँचाने से वे कहते हैं कि हमारा धर्म ही चला जायगा। आठ वर्ष की लडकी के गर्भाधान की जो लोग वैज्ञानिक व्याख्या करते है, उनका धर्म कहाँ का धर्म हैं।'' निराला की कई कहानियों में इस विवाह जन्म दुष्परिणाम को देखा जा सकता है। 'ज्योतिर्मयी' कहानी में ज्योति कहती भी है,'' मैं बारह साल की थी ससुराल नहीं गयी, जानती भी नहीं, पति कैसे थे और विधवा हो गयी।''[1] इसको हम बाल विवाह के परिणाम का बोधक मान सकते हैं।

निराला ने स्त्रियों को भारतीय समाज का आधार माना और उनके विकास के लिए समाज में चेतना जगाने का प्रयास किया। उनकी कहानियों में स्त्रियों की दुरवस्था के परिप्रेक्ष्य में कई करारे व्यंग्य दिखाई पड़ते हैं। 'देवी' कहानी में नारी की हेय दशा के माध्यम से निराला सामाजिक सरोकारों को सार्थक भूमिका निभाने की प्रेरणा देते हैं। निराला की कहानी में स्त्रियों के प्रति सजग दृष्टिकोण दिखाई पडता है। उनकी नारी पात्र समाज के असंगत प्रावधानों पर मौन हो कर अत्याचार नही सहती,बल्कि सामाजिक रूढिवादिता के खिलाफ विद्रोह कर देती हैं। 'श्यामा' कहानी में श्यामा ने विद्रोह कर बंकिम के साथ विवाह कर लेती है। 'ज्योतिर्मयी' कहानी में नायिका ने स्पष्ट तौर पर स्त्री- पुरूष के मध्य की असमानता को चुनौती दिया है। अपनी स्थिति, (मैं बारह साल की थी, ससुराल नहीं गयी, जानती भी नही पति कैसे थे और विधवा हो गयी) को स्पष्ट कर एम०ए० पास (अंग्रेजी) विजय को यह कहने के लिए बाध्य कर देती है,'' मैं इतना ही कहता हूँ, आपके विचार तिनके के लिए आग हैं।''[2] वहीं उसका प्रत्युत्तर सोचने को विवश कर देता है, '' लेकिन मेरे भी हृदय के मोम के पुतले को गलाकर बहा देने, मुझ से जुदा कर देने के लिए समाज आग है, साथ-साथ यही भी कहिए।''[3]

'कमला' कहानी में भी निराला ने स्त्री- समस्या को भिन्न रूप में उठाया है। वहाँ मध्यवर्गीय दोगलेपन से पीड़ित कमला को एक महिला समाज सुधारक सुशीला समस्या के

---

१. ज्योतिर्मयी, निराला रचनावली - ४ पृ० ३०६
२. वही
३. वही

समाधान हेतु आवाज उठाने की बात करती है । कमला को उसके पति रमाशंकर मात्र इसलिए छोडकर दूसरा विवाह कर लेते हैं कि परिस्थित वश एक दिन उसे मुसलमान के यहाँ बिताना पड़ा था । सुशीला इसके प्रति कहती है, 'ये सब बुरे संस्कार हैं, बहन इन्हें दूर करने की कोशिश ही हमारा धर्म होना चाहिए ।'[1] परन्तु कमला परिस्थिति को अपने ढंग से निपटाती है और उसी घटना की पुमरावृत्ति रमाशंकर की बहन और दूसरी पत्नी के साथ होने पर उसकी बहन से अपने भाई का विवाह कराकर अपने धर्म का निर्वाह करती है । नारी- चरित्र संगठन के इस आदर्श की स्थापना में विवेकानन्द के मण्डन की प्रवृत्ति पाई जाती है । जो कुछ भी सुधार हो, वह आत्म प्रेरणा के माध्यम से हो, तभी वह स्थायी और मंगलकारी होगा। यहाँ पर कमला के माध्यम से जिस आदर्श की स्थापना निराला करते हैं, इसी का निर्वाह 'अर्थ' व 'भक्त और भगवान' कहानियों के द्वारा आगे भी बढाया है, जहाँ भारतीय संस्कृति के आदर्श की रक्षा में उन्हें आत्माहुति करते हुये दर्शाया गया है ।

निराला की कहाँनियों में शिक्षा सम्बन्धी विचार भी स्फुट रूप में मिलते हैं । उनकी अनेक नायिकाएँ उच्च शिक्षा प्राप्त हैं, लिली, आभा (सफलता मे) कुँवर (सुकुल की बीवी) विद्या आदि चेतना से युक्त हैं । 'सफलता' कहानी में नरेन्द्र आभा से कहता है," मेरे घर में बहुत दिनों से अँधेरा है । मैंने तुम्हारी शिक्षा के लिए जायदाद बेंची है ।"[2] सुकुल की बीवी में सुकुल के यह कहने पर कि उनकी पत्नी ग्रेजुएट है, लेखक की प्रतिक्रिया है,"बडी श्रद्धा हुई ऐसी ग्रेजुएट देवियों से देश का उद्धार हो सकता है ।"[3] शिक्षा को निराला हर समस्या का एक निदान मानते हैं, वैसे ही जैसे विवेकानन्द शिक्षा को एक जादुई छड़ी मानते हैं । 'चतुरी चमार' में चतुरी अपने बेटे अर्जुन की शिक्षा के लिए प्रयास रत है,' काका कहो तो अर्जुनवा को पढने के लिए भेज दिया करूँ, तुम्हारे पास पढ़ जायगा तो तुम्हारी विद्या ले लेगा।"[4]

शिक्षा की वर्तमान प्रणाली से निराला कई स्थलों पर असहमत दिखाई पड़ते हैं । उनके लिए विवेकानन्द की शिक्षा का व्यापक अर्थ ही प्रासंगिक लगता है । शिक्षा के द्वारा आन्तरिक

---

१. कमला, निराला रचनावली - ४ पृ० ३१८
२. सफलता वही पृ० ३९४
३. सुकुल की बीवी, वही पृ० ४१४
४. चतुरी चमार, वही पृ० ३८१

विकास सम्यक तौर पर न होने से संकीर्णता समाप्त नही हो पा रही है । निराला के अधिकांश पात्र उच्च शिक्षा से युक्त होने पर भी रूढिवादिता के खिलाफ सघर्ष को आतुर नही दिखते और कछुआ धर्म के पालन में ही विश्वास करते हैं । शिक्षा के परिणाम के नकारात्मक पहलुओं के परिणाम स्वरूप ज्योतिर्मयी में पहले नायिका द्वारा फिर मित्र वीरेन्द्र के द्वारा विजय धिक्कारा जाता है । नायक विजय को विधवा विवाह करते हुये लाज लगती है, उसकी संकीर्णता से क्षुब्ध वीरेन्द्र कहता है,'' दिल के तुम इतने कमजोर हो, नष्ट होते हुये एक समाजाक्लिष्ट जीवन का उद्धार तुम नहीं कर सकते विजय ? तुम्हारी शिक्षा क्या तुम्हें पुरानी राह का एक सीधा सादा लद्दू बैल करने के लिए हुई है ।''[1] इस तरह निराला भी शिक्षा के माध्यम से आत्म प्रेरणा और आत्म गौरव का समुचित उत्थान न देख कर अपनी कहानियों के द्वारा स्थान -स्थान पर इसके लिए प्रश्नचिह्न उठाये है ।

सामाजिक समानता और समरसता की भावना निराला के लिए विशेष महत्व रखती है । विवेकानन्द ने इस दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति के भीतर एक परम तत्व की बात कही और अव्यक्त ब्रह्म की संज्ञा दी । इस आत्मबोध की उनकी पद्धति का निराला के ऊपर विशेष प्रभाव पड़ा । जगह जगह सामाजिक सौहार्द और सृजनात्मकता के प्रति उनका आग्रह कहानियों में भी दिखाई पडता है । सामाजिक आदर्श के लिए ज्योतिर्मयी का वीरेन्द्र अपने मित्र विजय को छोड देता है । कमला में नायिका उसी कारण से छोड़े जाने के बावजूद अपने भाई के साथ पति के बहन का विवाह मंजूर कर लेती है । श्यामा में बंकिम अन्तर्जातीय विवाह के द्वारा आर्दश उपस्थित करता है । 'सुकुल की बीवी' में लेखक स्वयं हिन्दू संतति किन्तु परिस्थितिवश मुसलमान वातावरण में पली पोखराज या पुष्कर या कुँवर से सुकुल का विवाह कराके सुकुल की बीवी बना देते हैं । इसी कहानी में पति द्वारा परित्यक्त व अनाथ कुँवर की माँ के आँसू को एक मुसलमान ने पोछा ।

सामाजिक खोखलेपन को उजागर करती अनेक कहानियों के मूल में निराला की समाज चिन्तक की भूमिका है । वहाँ उन्होंने अनेक पात्रों को इनका वाहक बनाकर उस पर प्रहार किया है । ज्योतिर्मयी में विजय का विवाह विजय का ही मित्र वीरेन्द्र धोखे से ज्योति से करा देता

---

१. ज्योतिर्मयी, निराला रचनावली - ४ पृ० ३०८

है । जहाँ पर ज्योति को विजय की सारी वास्तविकता मालूम होती है और वह वेदना से भरकर कह उठती है," विवाह का यही सुख है! " ज्योतिर्मयी की आँखों से घृणा मध्याह्न की ज्वाला की तरह निकल रही थी । छिः मैंने यह क्या किया , यह वहीं विजय ? ओह! कैसा परिवर्तन । इसके साथ अब अपराधी की तरह, सिकुड कर घर के एक कोने में मुझे सम्पूर्ण जीवन पार करना होगा । इससे मेरा वैधव्य शतगुणा, सहस्र गुणा अधिक अच्छा था । वहाँ कितनी मधुर - मधुर कल्पनाओं में पल रही थी । वीरेन्द्र तुम्हारे जैसा सिंह पुरुष ऐसे स्यार का भी साथ करता है ।"[१] इसी कहानी मे विजय के पिता उसके विवाह के प्रसंग में दहेज के लोभ में कम स्तर के ब्राह्मण से विवाह को स्वीकार करते हैं और कहते है, "तुम भी मारो गोली, हम को रूपये से मतलब हमारे पास रूपया है, तो भाई-बन्द, जात - बिरादरी वाले सब साले आवेंगे, नहीं तो कोई लोटे भर पानी को न पूछेंगे ।"[२]

विवेकानन्द के व्यापक सन्देशों में आर्थिक चिन्तन भी एक मुख्य स्वर के रूप में उभरा है, जिसका प्रभाव निराला की कहानियों में भी दिखाई पडता है । 'श्यामा' कहानी में उसके पिता ' सुधुआ' की साढे सात रूपये के लगान के लिए जमीदार दयाराम इतना पीटता है कि वह समाप्त हो जाता है । ' राजा को अपनी आर्थिक दुरवस्था का संकेत पेट खोलकर , दोनों हाथों को मरोड़ कर, दाहिने हाथ से मुँह थपथपाकर,फिर दोनों हाथ के ठेंगे दिखाकर किया, जिसको राजा की अवज्ञा जानकर पीटा जाता है और बाद में उसे बागी कहकर सरकार की नौकरी से हटा दिया जाता है । 'अर्थ' एवं 'भक्त और भगवान ' में क्रमशः राजकुमार और निरंजन को अनुभव प्राप्त होता है कि धर्म और अर्थ में कोई भी सिद्ध विरोध नहीं है। अर्थ के लिए संसार में निष्काम रूप से कर्म करते रहना चाहिए। वास्तविक रूप में लौकिक जगत में पूर्ण संयोजन के लिए अर्थ की प्राप्ति भी आवश्यक है और परिवार का भरण पोषण भी इसी तरह आवश्यक है ।

निराला की 'दो दाने' में बंगाल के गाँव की कहानी है, जहाँ पर तूफान एवं बाढ़ के बाद अन्नाभाव एवं मँहगायी का भीषण चित्रण हैं । वहाँ पर बढते आर्थिक वैषम्य का भावमय चित्रण किया है । एक - एक अन्न के अभाव में लोग मर रहे हैं, वहीं कुछ धनपति अपनी तीक्ष्ण नजरों से जनता के दुख मे भाग न लेकर परिस्थिति का लाभ उठा रहे हैं । इसी तरह की विडम्बना का शिकार

---

१. ज्योतिर्मयी, निराला रचनावली - ४ पृ० ३१२
२. वही

कमला हो जाती है, जो परिस्थिति की क्रूरता के वशीभूत होकर अपनी १५ वर्षीया पुत्री चम्पा को देह व्यापार में लगा देती है। लगाने के पूर्व का कमला की दयनीय दशा को देखें," कमला का हाल बयान के परे था। हृदय के टुकडे - टुकडे हो रहे थे। पुरानी मर्यादा का भाव टूट रहा था। दुःख के आँसू उमड़कर सारा घर डुबो देना चाहते थे। बच्चे सहम न जाय, चम्पा घबरा न जाय कि आता हुआ दाना तूफान और बाढ़ में जैसे उड़ जाय और बह जाय। वह पत्थर से दिल को बाँध रही थी। काँपते हाथों से बेटी को एक साफ साड़ी पहनाकर सजाया। बाल शाम का सँवार दिये थे। कुमारी की माँग में सिन्दूर न था। आँखों मे जो ज्वाला थी, उसको समझदार ही समझता ।"[1]

(ग) आलोचना पर

आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचार धारा का प्रभाव

निराला ने अपने 'आलोचना' के द्वारा तत्कालीन साहित्य के साथ-साथ समाज की विभिन्न गतिविधियों की ओर निरीक्षणात्मक दृष्टि डाली। इस दृष्टि में धर्म, समाज, साहित्य के विविध क्षेत्र बनाये जा सकते हैं। जहाँ उनकी विधारधारा साहित्य के खण्डन-मण्डन से जुडी हुई थी, वहाँ उनका आलोचना भी विवेकानन्द से प्रभावित हुई। इस चिन्तन में उन्होंने अपनी मौलिकता का समावेश कर युगानुकूल बना दिया।

धार्मिक प्रभाव की झलक ' तुलसी-कृत रामायण की व्यापकता', 'साहित्य का आदर्श,'' साहित्य और जनता' आदि आलोचनाओं में देखी जा सकती है। तुलसीदास के धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण को विवेकानन्द के धर्म सिद्धान्तों से समन्वित करके उन्हें नवीन आयाम प्रदान किया। ''धर्म और समाज का शासन इसी पराधीनता की पुष्टि करता है। धार्मिक अनुशासनों में जैसे

---

१. दो दाने, निराला रचनावली - ४ पृ० ४४० - ४१

भी मनोहर मनुष्यों के मनोविकास का कारण हो, मुक्ति का आदर्श धार्मिक बन्धनों से परे है। समाज धर्म का कितना भी अनुसरण करे, परिवर्तन उसके लिए अनिवार्य है, नहीं तो अनुसरण करने की शक्ति नहीं पैदा होती,अनुसरण करने की जरूरत नहीं रह जाती। इस प्रकार उठते-गिरते धार्मिक कानूनों की दोहाई देकर आत्मा को उन्हीं से घेर रखना मुक्ति नहीं।''[1] समाज के लिए एक आदर्श की आवश्यकता रहती है, नहीं,तो उसकी गतिशीलता समाप्त होकर उसे जड़ बना सकती है। समाज के लिए धर्म को सदैव सूक्ष्म प्रेरक मानते रहना ही अभीष्ट है, इसकी स्थूलताओं को नियम मानकर अनिवार्य कर देने से धर्म की भी स्थूलता मानना पड़ेगा और समाज को अनेकों बन्धनों से बँधकर सीमित हो जाना पड़ेगा। यहाँ पर निराला के ऊपर विवेकानन्द का धर्म - तत्व प्रमाणित होता है। वहीं आगे निराला लिखते है,'' इस तरह, दूसरे मनुष्यों से, जो एक दूसरा धर्म मानते हैं, दूसरे कानूनों के कायल है, पूर्ण रूप से सख्य की स्थापना नहीं हो सकती। धर्म के नियम जितने भी अच्छे हो, सोने की जजीरो की तरह, बाँध रखने के लिए लोहे की जंजीरो से कम मजबूत नहीं। इसलिए वे परिवर्तनशील हैं। हुये भी है, जब मनुष्यों ने और भी वृहत् सत्य के लिए प्रयत्न किये।''[2] इस तरह निराला ने नवीन वातावरण के लिए अभिनव धर्म की आवश्यकता पर बल दिया।

धार्मिक नियमों को सामाजिक कानून बनाने की भारतीय परम्परा का वर्णन करते हुये विवेकानन्द नवीन परिवेश में उसके पुनर्मूल्याकन की आवश्यकता पर जोर देते हैं। निराला ने भी इसी तरह की जरूरत समझकर पुनः परिवर्तित आदर्शों के स्वरूप की ही विवेचना की। तुलसी दास के धर्म सम्बन्धी तत्व में उन्हे युगबोध दिखलाई पड़ा और अब तक प्रचलित सभी धार्मिक मतों का उल्लेख वहीं से माना, '' भारतवर्ष में आज तक जितने भी धार्मिक वादों का प्रवर्तन हुआ है, उन सब का सहृदय उल्लेख रामायण में है। रामयण की कथा जैसे उन्हीं के सत्यों को साबित कर रही हो निर्विरोध, उच्च- नीच -भेद -ज्ञान रहित केवल क्रम परिणति पर लक्ष्य रखती हुई। यहाँ हम लीला के भीतर से ब्रह्म तक निर्विवाद चले जा सकते हैं, और ब्रह्म से लीला में उतर सकते हैं। अद्वैत और द्वैत के बीच विशिष्टाद्वैत का आनन्द भी हमें मिलता है।''[3] यही समन्वित दृष्टिकोण एक नये तेवर के साथ विवेकानन्द के विचारों में भी व्यक्त होता है, जिससे वर्तमान भारत को नवीन

वैचारिक आधार प्राप्त हुआ और सम्पूर्ण विश्व ने इसको श्रद्धा से अवनत हो कर देखा।

धर्म को वीत रागी संन्यासियों का ही विषय मानने का भी निराला ने खण्डन किया और दोनों के मध्य ज्ञान के स्तर पर विभेद को समाप्त करने का प्रयास किया। "पर इससे गृहस्थों को क्या? गृहस्थों का धर्म त्यागियों के धर्म से बिलकुल पृथक् है। यदि त्यागी ज्ञान के द्वारा समस्त संसार को एक ही दृष्टि से प्रत्यक्ष कर सकते हैं, तो गृहस्थ सहानुभूति ,हमदर्दी, ममता तथा अपनाव के द्वारा। गृहस्थ और त्यागियों के आश्रम अलग - अलग हैं , पर ज्ञान पर दोनों का समान अधिकार है।"[1] इस तरह वे विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त के निकट ले जाकर धर्मगत संकीर्णताको भी समाप्त करने की कोशिश करते है।

विवेकानन्द सभी धर्मों के अन्तर्निहित सत्य को स्वीकार करते हैं और स्थूल असमानता को कृत्रिम और अमानवीय बताते हैं। उनका मत है ,"धर्मबात करने की चीज नहीं है, न वह साम्प्रदायिकता है और न ही मतवाद विशेष।"[2] निराला के लिए उनका यह विचार ही ग्रहणीय है और इससे ही साम्प्रदायिक सौहार्द की स्थापना हो सकती है। मुस्लिम आक्रमण के बाद से ही दोनों जातियों में घृणा भाव अन्तर्तम तक मिल गया है ,यह इतना प्रगाढ़ हो गया है,सुप्तावस्था में भी जाग्रत रहता हैं। "हिन्दू लोग आचारों को प्रधानता देते हुये, खुदापरस्त मुसलमानों को म्लेच्छ आदि नामों से विभूषित करते हैं। उसी तरह मुसलमान भी हिन्दूओं को मूर्तिपूजक देखकर उन्हें बुत परस्त , काफिर आदि घृणा सूचक शब्दों से याद करते हैं। सदियों से यह व्यवहार कछ ऐसा चला आ रहा है कि दोनों के विचारों में जहाँ साम्य है, वहाँ तक पहुँचकर दोनों में मैत्री स्थापना की कोई चेष्टा ही नहीं की गयी। जिन हिन्दूओं को 'आचार परमो धर्मः' सिखाया जाता है, और यह इसलिए कि आचारों से चित्तशुद्धि होने पर ज्ञान या सत्य की प्रतिष्ठा मन में हो सकेगी, वे हिन्दू आचारों में इस बुरी तरह बँध जाते हैं, कि वे आचार ही उनकी आध्यात्मिक उन्नति के अन्तिम लक्ष्य से बने रहते हैं। यद्यपि 'अघोरान्नापरो मन्त्रः' का वे प्रतिदिन पाठ किया करते हैं। इधर मुसलमानों को बुत से ही खुदा का पाठ मिला; पर वे बुत को घृणा ही करते गये, केवल काव्य में ही [illegible] गया

परास्तिश की या तक कि से बुत,तुझे-
नजर में सभी को खुदा कर चले।"

---

१. धार्मिक साहित्य, सुधा - अगस्त १९३०, सम्पादकीय, निराला रचनावली - ५, पृ० ४५५

२. विवेकानन्द साहित्य - ७ पृ० २६०

किन्तु बुतों के प्रति ये भाव उनके नहीं रह गये, यद्यपि बुत-रूपी अपने बीवी बच्चों को सभी मुसलमान प्यार करते हैं।''[1] इस तरह की संकीर्णता से दोनों को बहुत नुकसान पहुँचा है।

निराला भी हिन्दू धर्म को सभी धर्मों का मूल मानते है , '' आज संसार में जितने भी धार्मिक विचार अपना आधिपत्य जमाये हुये है, वे सब हिन्दूओं के किये हुये विचारों के अनुवाद से प्रतीत होते हैं। हमारा विचार है कि यह हिन्दूओं की ही मानसिक दुर्बलता है, जिसके कारण वे हर तरह से पराधीन हो रहे है। यदि वे अपने-आपको पहचानें, तो उनके भीतर के भेद भाव तो दूर हो .. .... धर्म के अनुकूल चलकर शक्ति को विकसित करना, यही शास्त्रीय शिक्षा है।''[2] इस तरह निराला का धर्म विवेकानन्द के व्यवहारिक वेदान्तवाद का पूरक बन जाता है और आत्मोत्थान के माध्यम से धार्मिक गौरव को भी अभिव्यंजित करने लगता है।

निराला ने आलोचनात्मक पुस्तक'प्रबन्ध, पद्म' का समर्पण '' भगवान श्री रामकष्ण देव के पद को प्राप्त मेरे मनोराज्य के सत्य, शिव और सुन्दर आचार्य श्रीमत स्वामी सारदानन्दजी महाराज की स्नेह दृष्टि को सभक्ति''' करना विवेकानन्द की विचारधारा के प्रत्यक्ष प्रभाव का द्योतक है। इससे उनकी इस भावधारा या विचारधारा के प्रति समर्पण की बात भी समझी जा सकती है।

निराला के दर्शन पर स्वामी विवेकानन्द का अद्वितीय प्रभाव पड़ा है। वे विवेकानन्द के अद्वैतवादी दर्शन के विविध क्षेत्रों को भी अपने साहित्य में विशेष स्थान देते हैं। ईश्वर के अस्तित्व और जगत में उसके प्रसार का विस्तृत वर्णन उनकी आलोचानाओं में मिल जाता है। तुलसी दास के दर्शन का समन्वित रूप भी उन्हें मान्य था, जिसे उन्होंने विवेकानन्द के नव वेदान्त से एकीकृत करके देखा। अद्वैत तत्व की कल्पना के बारे में वे लिखते हैं,''मन बिना कुछ कल्पना किये नहीं रह सकता। वह चाहे जो कुछ कल्पना करे वह चाहे जो कुछ जो कुछ कल्पना करे - वह कल्पना चाहे जैसी हो - उसमें सत्य उतना ही है, जितना स्वप्न में है। अच्छी कल्पना में विकार की मात्रा भले ही सहायक हो - किन्तु है वह केवल सविकार स्वप्न। ब्रह्म समुद्र में मनोनद जब लीन हो जाता है, तभी साधक को एकमात्र सत्य अद्वैत ब्रह्म का बोध होता है। वह सत्य उसके पास ही है।

---

१. मुसलमान और हिन्दू कवियों में 'विचार साम्य' सुधा नवम्बर १९२९, नि० र० - ५ पृ० ३२४
२. वही, पृ० ३३४ - ३५

उसकी भावना उसे ऊँच - नीच दिखाती, सत्य से दूर कर देती है ।''[१] इस सत्य से दूर की कल्पना के बाद ही निराला के लिए दर्शन का आधार तैयार होता है,'' ब्रह्म या परमात्मा, वैदिक साहित्य और दर्शन शास्त्रों का मुख्य आधार है । जिसने ब्रह्म या परमात्मा, प्रकृति या ईश्वर, कुछ भी सिद्ध किया है, अर्थात जिसके विषय का आधार अस्ति है ,वह आस्तिक कहा जाता है । और जिसकी विचार परम्परा का आधार नास्ति है, जिसने खण्डन पक्ष ग्रहण किया है, वह नास्तिक है । किन्तु कोई आस्तिक हो या नास्तिक, मित्र भाव से करे या शत्रु भाव से ,ग्रहण उसी एक ही सत्ता का करता हैं । जो ' अवाङ् मनसोण्गोचरम्' है , उसे वाक्यों द्वारा सिद्ध करने से न लाभ है और न खण्डन करने से हानि । वह वस्तु तो साधना से प्राप्त होती है, वाक्यों से नहीं । ''[२] यहाँ पर विवेकानन्द के दर्शन ईश्वर है और उसकी अनुभूति की जा सकती है । उसे किसी रूप में माने या न माने, 'वह है' और एकोण्हम और सोण्हम भाव से मनुष्य से अभिन्न है । निराला ने इसी दार्शनिक विवेचना का सूत्र तुलसीदास में खोजने का प्रयास किया है , क्योंकि निराला ने उन्हें सभी दार्शनिक सूत्रों का केन्द्र माना है ।

निराला ईश्वर की प्रासंगिकता को प्रेम के स्वरूप की अवधारणा से जोड़ देते है और उसके बोध को इससे अभिन्न करके देखते है, जिससे वे विवेकानन्द के और अधिक समीप आ जाते हैं । जैसे निराला उनके इस सूत्र को परिभाषित कर रहे हों ,''प्रेम ही आदर्श है और इसके ीलिए किसी की आवश्यकता नहीं है ।''[१] और उसकी विशद विवेचना करते हुये लिखते भी हैं,'' 'ढाई अक्षर प्रेम के पढ़े सो पण्डित होय' से लेकर आज तक भिन्न - भिन्न भाषाओं मे जितने भी उल्लेख ईश्वर के सम्बन्ध में आये हैं, प्रेम ही का स्वरूप उनमें पुष्ट किया गया है आजीवन तपस्वी संसार विजयी स्वामी विवेकानन्द भी कहते हैं-' we are children of Bliss,Bliss' . ज्ञान, आनन्द, प्रेम , अमृत आदि एक ही अद्वैत सत्ता का बोध कराते हैं । 'अमृतस्य पुत्राः' का अमृत प्यार से कोई पृथक सत्ता नहीं । जो अमृत है , न मरने वाला है, वह प्यार है, वहीं अव्यक्त है। ' प्रेम- प्रेम में यह मात्र धन; स्वामी विवेकानन्द की इस उक्ति में प्रेम ही की सत्ता मानी गयी है।''[२] यहॉं पर निराल ने प्रत्यक्ष रूप से विवेकानन्द के प्रभाव को ग्रहण किया है ।

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ९ पृ० १९६

२. साहित्य की नवीन प्रगति पर, प्रबंध प्रतिमा में संकलित नि० र० - ५ पृ० २२६

'निराला 'ज्ञान का शिखर वेदान्त' को मानते हैं ।'[१] तुलसी और गालिब को वे शुद्ध वेदान्तवादी घोषित करते हैं और साहित्य की समतल भूमि पर दोनों को समानबोधका कवि माना'' महाकवि गालिब कहते हैं -

न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता तो खुदा होता।
डुबोया मुझको होने ने, न होता मैं तो क्या होता।

गालिब युक्ति लड़ा रहे हैं और दो ही लाईन में कुल वेदान्त छाँटकर रख देते हैं। देखिए कैसी मजबूत युक्ति है। इस संसार का अस्तित्व,गालिब कहते हैं। कि मै हूँ , चूँकि मैं ही उसे देख रहा हूँ। मुझी में वह है। मैं अगर न होता तो यह संसार भी न होता। 'व्यष्टि और समष्टि' का 'मैं' स्वरूपतः ब्रह्म हैं, यथार्थ सत्ता है, इसलिए बह्म ही न्यायतः अपने को अनेक रूपों में प्रत्यक्ष कर रहा है। यह वेदान्त का निचोड़ है। स्वामी विवेकानन्द ने भी कहा है,'' एक आमी होइ बहु देखिते आपन रूप।'' यह 'मै' जब निर्विकार है तब खुदा है और जब सविकार है , तब संसार में है - स्वप्नों से लिपटा हुआ।''[२] गालिब में निराला को वेदान्त के चुने हुये भाव मिलते हैं जिससे हर जगह ईश्वर का अस्तित्व मौजूद मिलता है और इसी को विवेकानन्द के सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म से जोड कर निराला कहते हैं, ''विश्व को चलाने वाली शक्ति को और उससे बढ़कर पूर्ण अवस्था में ब्रह्म में लीन होकर पूर्णत्व की प्राप्ति करते हैं , जहाँ न संसार है, न मैं, और न तुम, है बस सच्चिदानन्द ब्रह्म।''[३] इस तरह हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियाँ ऊँची भूमि पर एक ही बात कहती हैं। महाकवि गालिब के ये भाव(न था कुछ--- क्या होता) हर्फ-हर्फ वेदान्त से मिलते हैं। जब कुछ नहीं था, तब खुदा था, यही वेदान्त की तथा हिन्दू आस्तिक और नास्तिक दर्शनों की बुनियाद है। जहाँ ईश्वर की सत्ता है, वहाँ संसार नहीं।''[४] इसी को हम ब्रह्म की जगत के साथ सम्भावना से जोड़कर देख सकते हैं, जिसे देश काल और निमित्त के शीशे से देखा जाता है। ऊपर से देखने पर ब्रह्म और नीचे से देखने पर जगत का रूप दिखाई पड़ता है। ठीक कहे तो जगत उसी ब्रह्म का प्रसार है और यदि और यथार्थ पूछते हो तो साक्षात स्वयं ब्रह्म ही हैं।[५]

---

१. साहित्य की समतल भूमि, चयन में संकलित, नि० र० - ५ पृ० १५७
२. वही, पृ० १५९
३. विज्ञान और गोस्वामी तुलसी दास, समन्वय संग्रह में संकलित, नि० र० - ५ पृ० १६४
४. मुसलमान और हिन्दू कवियों में 'विचार साम्य' सुधा नवम्बर १९२९, नि० र० - ५ पृ० ३२५
५. ज्ञानयोग, विवेकानन्द, पृ० २१२

इस तरह निराला विवेकानन्द के नव वेदान्त का ही प्रसार और आभास अनेका नेक कवियों में पाते है और गालिब तक के दर्शन ओर तुलसी के दार्शनिक तत्वों के मूल सूत्र के रूप में वेदान्त का ही निरूपण हुआ, मानते हैं। वस्तुतः निराला का अन्तःकरण विवेकानन्द के भाववादी नववेदान्त से आपूरित हैं और नवीन दर्शन को वे इसी के आलोक में देखते हैं, जिससे उसका नववेदान्तीकरण हो जाता है।

मानवतावाद व विश्व बोध का प्रभाव

निराला ' प्रबन्ध- प्रतिमा' की भूमिका में विचार को साहित्य का ज्ञानकाण्ड बताते हैं और कर्मकाण्ड को उसका सहायक मानते है, जो उसे पुष्ट करता है।'भारत में विचार शुद्धि के लिए धन ही नहीं, समाज, शरीर और मन भी देना पड़ता है, तब विश्व मानवता की पहचान होती है। हमारे पीड़ित अशिक्षित, पतित, निराश्रय, निरन्न मानवों का तभी उद्धार होगा, तभी भारत की भारती जाग्रत कही जायगी, तभी उसकी अपनी विशेषता सिर उठायेगी।''[१] निराला के मानवतावाद का उत्स विवेकानन्द हैं, जो पापी-तापी, दीन- दुःखी तथा पतितों के उद्धार के लिए कृतसंकल्प दिखते है, जिसे वे-' युद्ध नही- सहायता, ध्वंस नही- आत्मस्थ कर लेना, भेद-द्वन्द नहीं- सामंजस्य एवं शान्ति[२] -विश्व धर्म महासभा के अन्तिम भाषण में वैश्विक समरसता तक पहुँचा देते हैं। निराला उनके मानवतावाद के पोषक और विश्वबोध के अनुकरनकर्ता है जिसका सम्यक निर्वाह आलोचनात्मक लेखों में भी होता है।

निराला का विचार है,' मनुष्य का लक्ष्य पतन कभी नही रहा। लिखा है, मन की स्वाभाविक ऊर्ध्व गति हैं उसकी निम्नगति किसी दबाव या आकर्षण में पड़कर अज्ञान के कारण, होती है। जब दुर्भिक्ष होताहै, तब चोरियॉं बढ़ जाती है। जिन लोगों ने कभी चोरी नहीं की, भूख की ताड़ना से वे भी शास्त्रानुशासन भूल जाते हैं। जो लोग चोरी करने के आदी है, उन्हें धन का लालच और पैसे का अभाव सताता है।''[३] यहाँ निराला ने मानव के पतन के मूल कारणों का विश्लेषण

१. प्रबंध प्रतिमा की भूमिका से , निराला रचनावली - ५ पृ० ५३३
२. विवेकानन्द चरित - सत्येन्द्र मजूमदार, पृ० २३४
३. साहित्य में चरित्र, सुधा, - अगस्त १९३२, नि० र० - ५ पृ० ४८२-८३

किया है तथा परिस्थिति और आकर्षण से उसका प्रारम्भ माना है। एक बार प्रारम्भ हो जाने के बाद स्वार्थपरता का वह लम्बा हाथ उसे पूर्णतः अवनत बना देता है और मानवता हनन का दुश्चक्र शुरू हो जाता है । इसी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुये वे लिखते हैं,''स्वार्थ ही दोनों का मूल है । यदि ब्रिटेन के वीरसिंह और भारत के दीन कृषक मेष, तो विचार की दृष्टि में, दार्शनिक की भाषा में, दोनों मनुष्यता से गिरे हुये हैं और आधुनिक विकासवाद के अनुसार सिंह और मेष में कौन सी सृष्टि अधिक उच्च है , यह बतलाना भी जरा टेढ़ी खीर है । मतलब यह कि जिस विज्ञान के बल पर पश्चिम सिंह बन सकता है, वह जिस तरह मनुष्यता की हद से गिरा हुआ होता है, उसी तरह हिन्दूओं का ज्ञान-मूलरहित आचारवाद , जिसने सदियों से उन्हें गुलाम बना रखा है और मुसलमानों की खुदापरस्ती भी, जो बुतों से घिरी हुई रहकर भी उनकी सत्ता से घृणा करे।''[१]

निराला सभी धर्मो के मूल में मानवतावाद की प्रतिष्ठा मानते है, जिस पर स्वार्थपरता और संकीर्णता की इतनी अधिक धूल पड़ी हुई है कि विकृत हो गयाहैं इस धूल के समाप्त होने पर प्रत्येक मानव की प्रतिष्ठा हो पायेगी और सम्पूर्ण विश्व एक परिवार की तरह स्थापित हो जायगा। सभी धर्मो के लोग एक-दूसरे के भावों को ग्रहण करें, तभी मानवता का उद्धार सम्भव है और विकास सही दिशा में होगा । ' यदि किसी सृष्टि को प्रगतिशील रखना है, तो उसकी शक्ति बढाने के लिए विजातीय भावों का समावेश करना अत्यन्त आवश्यक है। इन्हीं विरोधी गुणों से उसमें शक्ति का संचार होता है ।---विजातीय भावों के मिश्रण का दूसरा कारण एक यह भी है कि हर देश के मनुष्यों के अपर देश की संस्कृति तथा सभ्यता का पूरा -पूरा ज्ञान रखना चाहिए ।'[२] वे न केवल धर्मो, बल्कि सभी राष्ट्रों के मध्य विचारों के आदान-प्रदान पर बल देते हैं; विवेकानन्द ने भी पश्चिम के विज्ञान और भारत के धर्म को समन्वित कर नवीन विश्व के लिए सावधान करते हुये कहा,' यदि हमारे साहित्य को इन तमाम भावों की आवश्यकता न होती, तो सात समुद्र पार से यह अंग्रेज जाति यहाँ अपने राज्य की सुदृढ़ संस्थापना भी न कर पाती। इस छोटी सी अंग्रेज जाति के अन्दर वह कौन सा पौरुष उसके साहित्य ने भर दिया है, जिसके प्रबल प्रताप की सीमा को सूर्य भी नही पार कर पाते, क्या इसके जानने की , इससे कुछ लेने की हमारे

---

१. मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार साम्य निराला रचनावाली- ५ पृ० ३२५
२. नवीन साहित्य और प्राचीन विचार, वही पृ० ४४१-४२

साहित्य को विपुल आवश्यकता नहीं है?''[१] इससे वंचित होने का कारण हमारी कूप-मंडूकता और संकीर्ण दृष्टि है, जिसके फलस्वरूप हम बाहर की दुनिया से कुछ नहीं ले पाये और हम, हमारा समाज, हमारा साहित्य, हमारा राष्ट्र आज भी १७वीं - १८वीं शताब्दी में पल-बढ़ रहा है ।

विवेकानन्द का कहना है,'' भारत में समाज की बेड़ी को तोड़ना होगा और यूरोप में धर्म की बेडी को । तभी मनुष्य का आश्चर्यजनक विकास और उन्नति होगी ।— वेदान्त के प्रकाश से तुम समझोगे कि सारे विज्ञान धर्म की ही अभिव्यक्तियाँ हैं और जगत की सारी वस्तुएं भी उसी की अभिव्यक्ति हैं ।''वे विश्व ऐक्य के प्रबल समर्थक है और संकीर्ण राष्ट्रवाद और स्वतन्त्रता को उचित नहीं मानते; निराला भी उनकी इस बात का समर्थन करते हैं, और देश की स्वतन्त्रता और विश्व मैश्री के भाव को अलग-अलग करने वालों को आलोचना करते हुये लिखते हैं,''देश को स्वतन्त्र कर ले फिर विश्व मैत्री के लिए सोचा जायगा, अभी देश ही नही स्वतन्त्र हुआ, विश्व बन्धुत्व की आवाज उठने लगी, देश की सेवा जरा मुश्किल है न, विश्व मैत्री से क्या बिगड़ता है''आदि-आदि आक्षेप जहर से खाली नहीं, इन भावनाओं के रहते देश सेवा भी विधिपूर्वक नहीं हो पाती।''[२] निराला इस सोच को उच्च नहीं मानते और विचार को व्यक्ति, देश, समाज, साहित्य, स्वधर्म, परधर्म एवं विश्व के लिए समान रूप से उपयोगी मानने की बात करते हैं। सन्त साहित्य का उदाहरण देते हुये उसके अपराजित होने का कारण उसकी मानवतावादी दृष्टि और विश्व मैत्री को सच्चे विद्धान्त को मानते हैं । आगे और अधिक स्पष्ट करते हुये वे कहते है ,'' देश की जिस स्थिति के सुधार के लिए आवाज उठ रही है, उसमें यदि हम कहें,' उसका कारण विशाल साहित्य (जिसे हम चिन्तन और विचार भी कह सकते हैं) का अभाव है, जिसमें पारस्परिक मैत्री दृढ़ नहीं है तो कदाचित और स्पष्ट होगा, और उस साहित्य की व्यापकता में देश भी आ जायेगा, जबकि देश संसार से पृथक अस्तित्व नही रखता । साथ ही हमें यह स्मरण रखना चाहिए, विशालता कभी क्षुद्रता से धोखा नहीं खा सकती।''[३]

---

१. नवीन साहित्य और प्राचीन विचार, निराला रचनावाली- ५ पृ० ४४२
२. व्यापक साहित्य, वही पृ० ४५५
३. वही पृ० ४५६-५७

इस तरह निराला देश और विश्व को एक दूसरे का पूरक समझते हैं और सच्ची मित्रता से दोनों को लाभ पहुँचेगा और मानवता की विजय होगी, जिसके माध्यम से सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय वातवरण में सामंजस्य, सौहार्द और समरसता के भाव अभिव्यंजित होकर मानव मात्र के कल्याण की स्थापना हो सकेगी। जो विवेकानन्द का भी ध्येय है, निराला का भी ध्येय है, साथ ही साथ सत्य शिव और सुन्दर का भी अवबोधक है।

राष्ट्रीयता व देश प्रेम सम्बन्धी विचारों का प्रभाव

निराला राष्ट्रप्रेम के उदात्त संकल्पों के लेखक हैं। उनकी आलोचना में यह स्वरूप उभरा है। 'रवीन्द्र - कविता - कानन' में ही उनकी यह प्रवृत्ति दिखनी शुरू हो जाती है। जहाँ वे रवीन्द्र के कविताओं का वृहद सर्वेक्षण करते है। उन्हें सबसे प्रिय देश प्रेम की कविताएँ लगी ।" देश पर महाकवि ने जो कुछ कहा है, उसमें भारतीय की ही गन्ध मिल रही है। वे देश को विपथगामी होने से बचा रहे हैं, वे उसके मंगल के लिए किसी ऐसे उपाय की उद्भावना नही करते जो भारत के लिए एक नवीन और उसकी प्रकृति के बिल्कुल खिलाफ हो। वे उसी मार्ग पर उठाये रखना चाहते हैं , जिस पर रह कर उसने महामनीषी ऋषियों को उत्पन्न किया था। वे यदि चाहते तो अपनी ओजस्विनी कविता के द्वारा देश को अपने इच्छानुकूल मार्ग पर अथवा विदेश के किसी क्रान्तिकारी भाव पर चला सकते थे। परन्तु उन्होंने देश की नाड़ी पकड़ कर उसे वह दवा नही दी जो किसी विदेशी ने अपने देश को रोग मुक्ति के लिए उसे दी है।"[१] यहाँ पर रवीन्द और विवेकानन्द के विचारों में ऐक्य भी देखा जा सकता है, विवेकानन्द ने भी परानुकरण, परानुवाद की घोर निन्दा की है। निराला भी इस बात से सहमत हैं। निराला रवीन्द्र की एक और विशेषता बताते हुये कहते हैं, 'कन्धें में भिक्षा की डोली डालकर जो लोग राज्य प्राप्ति की आशा से दूसरों का दरवाजा खटखटाया करते हैं ,उनके प्रति विदेशियों का कैसा भाव है, इसके सम्बन्ध में महाकवि की उक्ति, शाश्वत भारतीय उक्ति की भावना को व्यक्त कर देती है ,जिसमें निजी सोंच को अधिक महत्त्व मिलता है। निराला ने रवीन्द्र की जिन कविताओं को अपनी आलोचना में स्थान दिया,उनमें

---

१. रवीन्द्र - कविता - कानन, निराला रचनावली- ५ पृ० ४९

ें परोक्ष रूप से विवेकानन्द का प्रभाव देखा जा सकता है। समकालीन दोनों महान व्यक्तियों विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर ने निराला के मानसिक धरातल के लिए उर्वरभूमि का कार्य किया और सम्पूर्ण विचारधारा का सृजन करने में योग दिया।

निराला की आलोचना में 'जननी जन्मभूमिश्च' की भावना और भी कई स्थलों पर व्यक्त हुई है। 'हमारे साहित्य का ध्येय' नाम अध्याय में देश-प्रेम का उदात्त भाव व्यक्त हुआ हैं । जिस तरह विवेकानन्द के भाषणों का मुख्य ध्येय राष्ट्रीयता था, उसी तरह निराला का साहित्य सृजन भी राष्ट्रीयता का वाहक बनकर सामने आता है । उसमें देश, काल और परिस्थिति का सही ढंग से निरूपण हुआ है। ऐसे भाव को ही व्यक्त करते हुये वे लिखते हैं, ''यह सच है कि इस समय देश की दशा के सुधार के लिए कार्यकारी सच्ची राष्ट्रनीति की अत्यन्त आश्यकता है, पर यह भी सच है कि देश में नवीन संस्कृति के लिए व्यापक साहित्यिक ज्ञान भी उसी हद तक जरूरी है।''[१] निराला यहाँ पर विस्तृत बौद्धिकता के द्वारा एक प्रामाणिक कार्यनीति को आवश्यक मानते हैं और साहित्य के व्यापक अंग के रूप में राजनीति को भी समाहित कर देते है,' साहित्य के व्यापक अंगों में राजनीतिक भी उसका एक अंग है । अतएव राजनीति की पुष्टि भी वह चाहता है। पर जो लोग राजनीति क्षेत्र से यह प्रचार करते हैं, पहले अधिकार, तब सुधार, उनके इस गुरु प्रभाव से वह दबना नहीं चाहता, कारण, यह व्यक्तिमुख की उक्ति उसकी दृष्टि में 'पहले मुर्गी फिर अंडा या पहले अंडा फिर मुर्गी' प्रश्न की तरह रहस्यमयी और जटिल है।——— मानसिक रोग मानसिक सुधार से ही हट सकता है।''[२] यहाँ पर निराला के ऊपर विवेकानन्द के इस विचार का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है कि स्वतन्त्रता प्राप्त करने से पहले भारतीयों को अपना सुधार कर उसके लिए तैयार करना होगा, ''भारतवर्ष की उन्नति करनी है।——हमारे नासमझ युवक अंग्रेजों से सभी अधिकार पाने के लिए सभाएँ करते है।—— मान लो, अंग्रेजो ने सभी अधिकार तुम्हें सौप दिये, तब तो तुम प्रजा को दबाओगे और उन्हें कुछ भी अधिकार न दोगे।''

इस तरह निराला भी देश को सुधारने के बाद ही स्वतन्त्रता को सही मानते हैं और

---

१. हमारे साहित्य का ध्येय, प्रबन्ध - पद्म, निराला रचनावली -५ पृ० ३६६
२. वही , पृ० ३६७

इसी के माध्यम से चिरस्थायी देशप्रेम की भावना जाग्रत हो सकती है। बौद्धिक जागरण के बाद ही वांछित स्वतंत्रता प्राप्त हो सकती है, " हर मनुष्य जब अपने ही प्रिय मार्ग से चलकर अपनी स्वाभाविक वृत्ति को कला की शिक्षा के भीतर से अधिक मार्जित कर लेगा, और इस तरह देश में अधिकाधिक कृतिकार पैदा होंगे, तब सामूहिक उन्नति के साथ ही साथ काम्य स्वतंत्रता आप ही आप प्राप्त होगी, जैसे युवकों को प्रेम की भावना आप ही आप प्राप्त होती है, यौवन की एक परिणति की तरह । "[१] यहाँ पर निराला ने नेता और साहित्यिक के मतभेद को समाप्त कर दिया है और दोनों के कार्यो की एकरूपता पर बल दिया,ठीक उसी तरह जैसे विवेकानन्द ने धर्म और राष्ट्र को एक करके देखते हुये आध्यात्म को अलौकिता तक ही सीमित करने को अनुचित बताया और व्यष्टि और समष्टि का ऐक्य करके दिखाया।

निराला साहित्य की मुक्ति की तरह समाज आरै राष्ट्र की मुक्ति भी आवश्यक समझते हैं और दोनों को एक दूसरे का पूरक समझते हैं । तत्कालीन कविता के भी बन्धनों की ओर संकेत करते हुये उसको खुले वातावरण की ओर ले जाने की बात करते हैं । इसी परिप्रेक्ष्य में उनका दृष्टिकोण बन्धनों के मूल कारणों की ओर जाता है, जो व्यापक परिप्रेक्ष्य में राजनीति से भी जुड़ जाता है ।'हिन्दी कविता- साहित्य की प्रगति' आलोचना में प्रकारान्तर से परतन्त्रता के मूल कारणों की ओर भी ध्यान देते है, "राजनीति की दृष्टि से हमारा पतन हमीं से हुआ । हमारे इतर कर्मो के कारण, हमारी दिव्य भावना के आभाव से , हमारे जड़ाश्रय दुर्गुणों के प्रभाव से। हमीं ने कमजोर होकर अपने शासन के लिए दूसरों को आमन्त्रित किया, और तब तक दूसरे हमारे शासक रहेंगे, जब तक हम अपनी जातीय प्रतिष्ठा, जातीय मुक्ति, दिव्य भावना के अनेकानेक महास्त्रों से प्राप्त न कर सकेंगे ।"[२] यहाँ पर लेखक ने हमारी दुर्बलता का मूल कारण हमारी अपनी दुर्बलता को माना है और इसका हल वेन्दान्त के मौलिक व नवीन विचारणा के द्वारा ही हो सकता है । विवेकानन्द के इस विचार का निराला पर प्रभाव था -" प्रत्येक मनुष्य के अन्दर विद्यमान शक्ति ही ईश्वर है।...... . मानव के अन्दर निहित दिव्य शक्तियों का प्रकट करना ही वेदान्त है ।" इस प्रकार हम जो अपनी वास्तविक शक्ति को भूल गये है , उसी का पुनरूत्थान करके ही देश का कल्याण किया जा सकता है। दिव्य भावना से निराला का आशय विवेकानन्द के 'नववेदान्त की आभा' से है ,

---

१. हमारे साहित्य का ध्येय, प्रबन्ध - पद्म , निराला रचनावली -५ पृ० ३६६
२. हिन्दी कविता -साहित्य की प्रगति, चयन, वही पृ० २१४

जिसके ओजस्वी प्रचार से सारा विश्व आलोकित हो उठा। इसी भावना ने मानव के हृदय में देश और समाज के प्रति लुप्त गौरव को पुनः स्थापित करते हुये राष्ट्रीय चेतना के विखरे कणों को एकत्रित करने का कार्य किया। विवेकानन्द का नववेदान्त केवल आध्यात्मिक और धार्मिक सन्दर्भो से नही जुड़ा हुआ है, बल्कि इसमें राजनीतिक अर्थों को भी प्रकारान्तर से व्यक्त किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने आप पर विश्वास करने और समग्र मानव जाति में एक अखण्ड शक्ति पुंज के भाव ने सभी भारतीयों को आत्मगौरव का बोध कराके राष्ट्रीयता का समुत्थान किया।

विवेकानन्द ने राष्ट्रीय चेतना के लिए शिक्षा को जादूई शब्द माना और इसी के माध्यम से सभी समस्याओं का हल कर देने की बात कही। निराला भी इसी की आवश्यकता पर बल देते हैं,' भारतवर्ष में जो सबसे बड़ी दुर्बलता है, वह शिक्षा की है । हिन्दूओं और मुसलमानों में विरोध के भाव दूर करने के लिए चाहिए कि दोनों को दोनों के उत्कर्ष का पूर्ण रीति से ज्ञान कराया जाय। परस्पर के सामाजिक व्यवहारों में दोनों शरीक हों,------ इसके बिना, दृढ़ बन्धुत्व के बिना, दोनों की गुलामी के पाश नहीं कट सकते, खासकर ऐसे समय जबकि फूट डालना शासन का प्रधान सूत्र है ।''[१] निराला शिक्षा के अन्तः करण की शक्तियों को जाग्रत करने का माध्यम मानते हैं । जब तक इस शक्ति का उत्थान नही होता,' देश दीन है, दुःखी है, परतन्त्र है, स्वाधिकार रहित है, इस तरह अभाव वाली जितनी भी बातें होगी,वे जिस तरह प्राणहीन हैं, उनकी पूर्ति के लिए लड़ाईयाँ, उद्योग आदि भी इसी तरह प्राणहीन ।''[२] जब तक शिक्षा के माध्यम से संकीर्णता को दूर नहीं किया जाता, तब तक जातिगत, वर्गगत, धर्म सम्प्रदायगत विभेदों के द्वारा राष्ट्रीयता का ह्रास होता रहेगा ।

अभिनव भारत की स्थापना के लिए मौलिक परिवर्तन को निराला आवश्यक मानते हैं। ऐसा क्रान्तिकारी भावना के द्वारा ही हो सकता है। विवेकानन्द ने भी परिवर्तन के लिए युवाओं का कई बार आह्वान किया । वस्तुतः क्रान्ति आवश्यक है, यह क्रान्ति क्रमशः साहित्य से समाज की ओर होता है,क्योंकि ' साहित्य समाज का दर्पण है । '' क्रान्ति साहित्य की जननी है । नवीनता तभी पैदा होती है, और साहित्य का रथ कुछ कदम आगे बढ़ता है । इसे ही जीवन भी कहते हैं । ऋतु के

---

१. मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार साम्य, निराला रचनावली- ५ पृ० ३२५
२. वही पृ० ३२४

बदलने पर जिस तरह पृथ्वी एक नये रूप से सजती है, उसी तरह क्रान्ति जन्य नवीनता से साहित्य ।''[३] इसी के माध्यम से राष्ट्रीयता का समुचित प्रसार किया जा सकता है और ' पहले सुधार फिर अधिकार' के द्वारा सामाजिक समानता एवं समरसता का बोध होता है, ऐसी ही चेतना चिरस्थायी भी होगी ।

सामाजिक विचार धारा का प्रभाव

निराला का समाज चिन्तन भी उनकी आलोचनाओं में स्फुट रूप में व्यक्त हुआ है, जिसके आधार पर समाज का एक छोटा सा चित्र उकेरा जा सकता है । सबसे पहले तो उनका समाज चिन्तन विराट के सापेक्ष प्रारम्भ माना जा सकता है,' हमारे समाज से भिन्न, किन्तु मिला हुआ एक और समाज है । वह केवल देश में नहीं बँधा, तमाम पृथ्वी के मनुष्य उसके अन्तर्गत हैं ।''[२] इसके अभाव में अभी हमारा समाज इसलिए नहीं विकसित हो पा रहा है, क्योंकि हमारा समाज संकीर्णताओं से भरा हुआ है । प्राचीन नियम अब अप्रासंगिक हो रहे हैं, इसका प्रमाण है, 'जिस शूद्रक को एक दिन सामाजिक लंघन के नियमों के कारण अवतार - श्रेष्ठ भगवान श्रीराम के हाथों प्राण देने पड़े थे,——— क्या आर्य सभ्यता का पक्षपाती कोई भी मनुष्य कह सकता है कि भारत में आज वैसा ही वर्ण-धर्म प्रचलित है, अथवा उसी के प्रचलन की जरूरत है? वही शूद्रक शक्ति आज सहस्र-सहस्र रामचन्द्रों को पराजित कर देने में समर्थ है- अछूत ही आज भारत के प्रथम गण्य मनुष्य, चिन्त्य समस्या हैं । आप देखें, वहीं एक उपयोगितावाद आज कैसा विपरीत रूप धारण किये हुये है। जनता आज भी इस उपयोगितावाद का साथ नहीं दे रही है, उसी प्राचीन के साथ है ।'[३] इस लम्बे उद्धरण के माध्यम से सम्पूर्ण समाज का इतिहास हमारे सामने आ जाता है निराला अब समाज को नवीन आधारों के सन्दर्भ में चलाने की बात करते है। परम्परागत विचारों को अभिनव दृष्टि से देखे जाने की आवश्यकता पर भी बल देते हैं । इस कोण पर विवेकानन्द का

---

१. उपन्यास - साहित्य और समाज , निराला रचनावली -५ पृ० ५२६
२. रचना - सौष्ठव , वही पृ० ५०७
३. साहित्य और जनता , वही पृ० ४९६-९७

विचार निराला के लिए प्रेरक का कार्य करता है, जहाँ वे '' जाति को किसी प्रकार मिटाने की बात नहीं कहता।............ भारत में योजना है कि प्रत्येक मनुष्य को ब्राह्मण बनाया जाय, ब्राह्मण मानवता का आदर्श है ।''- मानते है । वही दृष्टि निराला के लिए भी आदर्श का काम करती है। इसी के साथ ही साथ धर्म को सामाजिक नियमों से जोड़े जाने का भी विरोध किया और समाज के पिछड़ेपन को दूर करने की बात कही,' अभी हमारा समाज इतना पीछे है कि उसी मे रहकर उसी के अनुकूल चित्र खीचते रहने से हम आगे नहीं बढ़ सकते । कुछ - कुछ समाज के ही अनुरूप चित्र खींचने के पक्ष में हैं । पर यह उनकी अदूरदर्शिता हैं ।''[१] सामाजिक चेतना के लिए निराला नव वेदान्त का आश्रय लेने की बात करते हैं।

निराला किसी तथ्य को तर्कसंगत और विज्ञान सम्मत होने पर ही स्वीकार करते हैं। केवल परम्परा के आधार पर किसी बात को सत्य नहीं मान लेते और मानने वालों को ' रूढ़िवादी' करार कहते हैं। ऐसी धारणा को वे अमान्य कर देते हैं । यही विचार विवेकानन्द का भी था, वे भी वस्तु को वैज्ञानिकता और तार्किकता के माध्यम से सम्यक परीक्षण करके ही स्वीकार करते हैं । इसी धारण के कारण समुद्र यात्रा का विरोध करने वालों की वे खिंचाई-करते हैं, और इसे धर्म से जोड़े जाने को धर्म का अपमान कहते हैं । कोई भी सामाजिक व्यवस्था इस तरह न हो जाय कि उसकी गतिशीलता ही समाप्त हो जाय, अगर ऐसा हो जाता है तो वह रूढ़िवादिता कही जाती है । निराला ने भी इसका विरोध किया,' प्राचीन रूढियाँ जिस तरह भारत के अन्यान्य देशों के साथ सम्मिश्रण की बाधक है, उसी तरह हमारा सहित्यिक ज्ञान भी है । प्रायः अधिकांश अध्यापक पुरानी लकीर के फकीर हैं और जो कुछ नये हैं भी, वे नवीन संस्कृति के अनुकूल नहीं । नवीन सभ्यता में सभी अवगुण नहीं, उसमें गुण भी बहुत हैं।''[२] निराला का मत है कि भारत का वातावरण समन्वय के लिए अभीष्ट है और यहाँ की जो विभिन्नता है, वह उदात्त पर्यावरण की आकांक्षा रखती है, जिसके लिए संकीर्णता को त्यागना आवश्यक है । ' आज भारत अनेक वर्णो तथा समस्त पृथ्वीं की जातियों का सम्मेलन स्थल हो रहा है। ऐसी दशा में हमारा फर्ज है कि हम अधिक से अधिक उदार हों, और क्रियाओं में विस्तार करें। हमारे अन्दर प्रायः इस तरह की संकीर्णताएँ घर किये हुये हैं कि हम अपने आचरणों से दूसरे का किंचिन्मात्र भी पृथक देखकर चौक उठते हैं, उसकी ओर से

---

१. रचना -सौष्ठव, प्रबन्ध प्रतिमा, निराला रचनावली - ५ पृ० ५०७
२. साहित्य की वर्तमान स्थिति, वही पृ० ४५३

हमें घृणा हो जाती है । यह हमारी ही कमजोरी है''[१] भारतीय समाज को विविधता में एकता के अपने गौरव को बरकरार रखते हुये आधुनिक वातावरण में प्रवेश करना चाहिए ।

विवेकानन्द का सामाजिक विचार निराला को बहुत ही प्रासंगिक और युगानुकूल दिखाई पड़ता है, उसका प्रभाव उनकी आलोचनाओं में भी दिखाई पड़ता है, हालांकि साहित्य की विवेचना में ऐसे तत्व बिखरे हुये है, फिर भी प्राप्त सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि निराला की आलोचना साहित्य पर भी विवेकानन्द का सम्यक प्रभाव पड़ा ।

(घ) निबन्ध पर प्रभाव

निबन्ध किसी भी साहित्यकार के व्यक्तित्व का दर्पण होता है। इसमें लेखक का आत्मप्रकाशन होता है, क्योंकि निबन्धों में स्वतन्त्रता और खुलापन रहता है । निराला के निबन्ध भी इसके अपवाद नहीं हैं । उनके अनेक निबन्ध उस युग के जीवंत दस्तावेज हैं। इनमें स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। इन्होंनें विवेकानन्द और उनके गुरु श्रीरामकृष्णदेव पर कई निबन्ध लिखे और अनेकों में विचारधारा के दार्शनिक, धार्मिक और सामाजिक रूपों का प्रत्यक्ष प्रकटीकरण भी किया । 'निराला रचनावली, भाग-६' में नन्द किशोर नवल ने निराला के सभी निबन्धों का संकलन किया है । इस भाग की भूमिका में उन्होंने निराला के ऊपर विवेकानन्द के प्रभाव का जिक्र किया है, ''आरम्भ में निराला पर विवेकानन्द के भाववाद का गहरा असर था । इसी कारण 'बाहर और भीतर' शीर्षक अपने निबन्ध में वे सामाजिक स्वतंत्रता को बाहरी स्वतंत्रता और भौतिक उन्नति का लक्ष्य ध्वस बतलाते हैं। स्पष्टतः यहाँ वे बाहर और भीतर के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध को देख नहीं पाते हैं और एक दार्शनिक सरलीकरण का शिकार हो जाते हैं। इस निबन्ध में भौतिकवाद के विकास को उन्होंने पूँजीवाद के उत्थान और युद्ध से जोड़कर देखा है, जो सही है, लेकिन पूरी तरह से नहीं। उन्होंने लिखा है, ''जड़वाद का प्रभाव अशान्ति और संघर्ष को ही बढ़ाता है और अन्त को स्वयं नष्ट हो जाता है'' और ''गोला बारूद के नष्ट होने के साथ उसके शक्तिघर भी नष्ट हो जाते हैं ।'' लेकिन निराला पर रामकृष्ण और विवेकानन्द का जो प्रभाव

---

१. हमारा वर्तमान काव्य , निराला रचनावली -५ पृ० ४९३

था, वह केवल नकारात्मक नहीं था। इनसे उन्होंने धार्मिक उदारता का भाव लिया।....... रामकृष्ण और विवेकानन्द का यह धार्मिक उदारतावाद राष्ट्रीय एकता ही नहीं, विश्वबन्धुत्व की भावना में परिणत हुआ।......... निराला के समाज-सम्बन्धी विचार भी विवेकानन्द से प्रभावित थे।''[१]

वस्तुतः विवेकानन्द की विचारधारा सर्वतोमुखी और युगानुकूल थी और इसकी व्यापकता ने निराला को बहुत प्रभावित किया। वे वेदान्त के अभिनव स्वरूप की जमकर प्रशंसा किया करते थे और इसकी मानवतावादी दृष्टि से अभिभूत थे। निबन्धों में निजीपन की अभिव्यक्ति होने के कारण यहाँ विवेकानन्द के दर्शन और सन्देशों को बहुत सजीव और कहीं-कहीं प्रत्यक्ष ढंग से समाहित किया गया है। 'वेदान्त केशरी स्वामी विवेकानन्द' और 'वेदान्त -केसरी स्वामी विवेकानन्द और भारत' में उन्होंने उनकी विचारधारा और प्रभाव की प्रत्यक्ष विवेचना करके उनकी महिमा का गुणगान (यथार्थ रूप में) किया है।

दार्शनिक विचारधारा का प्रभाव

निराला के दार्शनिक निबन्धों में 'शून्य और शक्ति', 'बाहर-भीतर', 'शक्ति परिचय', 'प्रवाह', 'अर्थ' प्रमुख हैं, इनमें विवेकानन्द की विचारधारा का सम्यक प्रवाह दिखाई पड़ता है। 'बाहर-भीतर' निबन्ध में विवेकानन्द का गहरा असर है, जहाँ वे संसार के दो दलों की बात करते हैं। एक दल बाहर मुड़ता है ओर दूसरा भीतर घुसता है। एक दल बाहर के लिए कमर कसता है, दूसरा भीतर के दर्द की दवा करता है। बाहर मुड़ने वाला स्वतन्त्रता को भोग के रूप में ग्रहण करता है। इन दोनों के तात्विक विवेचना में निराला पूर्णतः डूब जाते है। बाहर वालों की स्वतन्त्रता जड़वाद को उत्पन्न करती है। ''अच्छा तो बाहर स्वतंत्रता का पता लगाने वालों को स्वतंत्रता मिल गयी। पर यह स्वतन्त्रता कैसे हो सकती है?इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसका सारा सम्बन्ध शरीर से है। भोग ही इसका लक्ष्य है । यह भोग कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता। अतएव यह स्वतन्त्रता भी स्थिर नहीं हो सकती। आखिर अपूर्ण वस्तु स्वतन्त्रता नहीं कही जा सकती। स्वतन्त्र

१. भूमिका, निराला रचनावली - ६ पृ० १०-११

मनुष्य भोग का गुलाम क्यों होने लगा ? यद्यपि इस प्रकार के भोग को अधिकांश लोग स्वतन्त्रता कहते हैं, किन्तु तो भी यह एक प्रबल गुलामी वृत्ति ही है। विचारकों का सिद्धान्त यही है। वे कहते हैं कि बाहर मुड़ने की इच्छा ही अपूर्णता सूचित करती है। किसी विषय वस्तु की इच्छा करना ही उस विषय या वस्तु के अभाव का लक्षण है।''[१] आगे निराला इसी का परिणाम जड़वाद और अन्ततः ध्वंस को मान लेते हैं। वे इस बात को ''गोला-बारूद के नष्ट होने के साथ उसके शक्तिघर भी नष्ट हो जाते हैं। प्रकृति का यही नियम है।''[२] के उदाहरण और जर्मनी के दृष्टान्त से सिद्ध भी करते हैं। भोग से ''बहिर्जगत में संघर्ष पैदा होता है, और वही शान्तिपूर्ण स्वतन्त्रता बाहर नहीं मिलती।''[३] यहाँ पर निराला का दृष्टिकोण विवेकानन्द से प्रभावित है।

बाहरी स्वतन्त्रता के बाद निराला भीतर की स्वतन्त्रता को मनुष्य के लिए अधिक उदात्त मानते हैं। जिसमें कोई द्वन्द्व नहीं, कोई ध्वंस नहीं, एक असीम शान्ति है, जो व्यक्ति को समरसता के वातावरण पर ले जाकर उसकी सार्थकता को प्रमाणित कर देता है। भीतर का रास्ता व्यक्ति की आत्यन्तिक स्वतन्त्रता के लिए राह खोल देता है। ''भीतर घुसने वालों में से कितने ही महापुरुषों को शान्ति का पता मिल गया है। शान्ति का पता लेकर वे बाहर भी आये और बाहर वालों को शान्ति का सन्देश सुनाया। उन्होंने कहा है, ''न वहाँ सूर्य है, न चन्द्र है, न मैं हूँ न तुम ; वहाँ केवल आनन्द ही आनन्द है। तुम स्वयं आनन्द स्वरूप हो, अपने चिदानन्दमय—

नाहीं सूर्य नाहीं ज्योति
नाहीं शशांक सुन्दर। (विवेकानन्द की कविता)

शान्तिस्वरूप को तुम नहीं समझना चाहते, इसी से तुम दुःख झेलते हो। जब तुम अपना बाहर का खेल त्याग दोगे, अपने आनन्दमय स्वरूप को ढूँढ़ोगे तो तुम्हें वह भी मिल जायेगा। वहाँ तक न मन की पहुँच है और न वाणी की। वह है 'अवाङ्मनसोण्गोचरम्।'

विचार स े शान्ति का पता नहीं लग सकता। क्योंकि एक विचार केन्द्र से उठता है, उस केन्द्र का पता लगाने वाला दूसरा विचार भी उसी केन्द्र से उठता है और शब्द जाल

---

१. बाहर - भीतर, निराला रचनावली -६ पृ० ३५
२. वही ३. वही

की सृष्टि होती है और विषय क्रमशः बहिर्मुख हो जाता है ।''[१]

निराला स्वामी विवेकानन्द के भाववाद से प्रभावित हैं और उनकी तरह भीतर की शक्ति में उनका अप्रतिम विश्वास है । यही भीतर कीशक्ति विवेकानन्द के अनुसार केन्द्रवर्ती ब्रह्म में मिल जाती है और'ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदे पूणात् पूर्णमुदच्यते' का वाचक हो जाता है । ''दूसरा प्रमाण उस केन्द्र में स्थिर रहना ही स्वतन्त्र रहना है । वही केन्द्र ब्रह्म है ।......... ब्रह्म अनन्त है......... और वहाँ से जितनी अभिव्यक्तियाँ हुई हैं — जितने प्रकाश निकले हैं, निकल रहे हैं और निकलेंगे, वे भी अनन्त हैं। उस अनन्त की अभिव्यक्ति भी अनन्त है।''[२]

इस तरह भीतर का रास्ता मनुष्य को उसकी आत्यन्तिक अनुभूति तक पहुँचा देता है और वही अनुभूति फिर से बाहर आकर वहाँ भी आलोक का विस्तार करती है। अतः हर इच्छा का निश्चय रूप भीतर ही होता है और भीतर ही उसकी पूर्णता भी होती है। व्यक्ति को अपनी इच्छा को निश्चय से जोड़कर देखना चाहिए।

अन्त में निराला ने एक सम्पूर्ण निष्कर्ष निकाला है और बाहर-भीतर दोनों मार्गों के शिल्पगत बुनावट की चर्चा करते हुये कहते हैं, - ''समुद्र का ऊपरी भाग प्रबल तरंगों से चंचल और संघर्ष पूर्ण है, परन्तु भीतरी भाग शान्त और निश्चल । इन्द्रियों के द्वार से मन को बाहर भागने से रोकनाा चाहिए । इन्द्रियों के द्वार से मन बाहर चला कि काम, क्रोध आदि दुश्मनों में से किसी के रूप में बदलकर उसने अशान्ति की सृष्टि की। जो बहिर्मुख मन का गुलाम है, वह स्वतन्त्रता का अधिकारी नही है।''[३]

इस तरह हम देखते हैं कि सम्पूर्ण निबन्ध में आद्यन्त विवेकानन्द की विचारधारा का प्रवाह है और कहीं-कहीं निराला शुद्ध दार्शनिक बनकर उसी दर्शन की प्रतिष्ठा करते प्रतीत होते हैं, जो विवेकानन्द की है। इसी प्रकरण में उन पर दार्शनिक सरलीकरण का आरोप भी लग जाता है किन्तु निराला तो इस समय 'कड़ी मारे पड़ी तो दिल हिल गया' की मनःस्थिति में हैं और बाहर की

---

१. बाहर - भीतर , निराला रचनावली -६ पृ० ३५-३६

२. वही पृ० ३६

३. वही पृ०३७

मार खाकर उनका मन भी भीतर की ओर उन्मुख हो गया है । वे कहाँ किसी की परवाह करते है और स्वयं को इस बात के लिए कृत संकल्प करते हैं कि किसी भी तरह से अन्दर की स्वतन्त्रता से कम पर तैयार न हों । इसी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुये राजनीतिक स्वतन्त्रता वाली वृत्ति पर फिर चोट करते हैं, ''इसमें सन्देह नहीं, इस समय की स्वाधीन वृत्ति कहलाने के कारण अधिकांश मनुष्यों की स्वाधीनता की चिन्ता, राजनीति के भीतर ही चक्कर काट रही है ।............ ..हम इस सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द को प्रायः यह कहते हुये पाते हैं— ''मेरे बच्चों, बहककर तुम चाहे जहाँ चले जाओ,कुछ काल के लिए चाहे जिसे अपना आदर्श मान लो परन्तु अन्त में तुम्हें पूर्वाचार्यो के अनुशासनों को , उनके सिद्धान्तों को मानना पड़ेगा। इसके सिवा दूसरा उपाय कोई नहीं।''[१] भारतीयों द्वारा उद्देश्य को परिवर्तित करने को उचित नहीं समझते। वे संसार के लक्ष्यों को भारत के लक्ष्य से अलग मानते हैं । विवेकानन्द की तरह उपनिषदों के मन्त्रों को आदर्श मानते हैं । निराला समष्टिगत और व्यष्टिगत स्वतन्त्रता का प्रश्न भी उठाते हैं, ''देश की समष्टिगत स्वाधीनता की तो इस प्रसंग में आप ही मीमांसा हो जाती है, क्योंकि व्यक्तिगत स्वाधीनता ही समष्टिगत स्वाधीनता की जननी है और इस दृष्टि से आज भी भारत में अन्य देशों की अपेक्षा स्वाधीन मनुष्यों की संख्या अधिक होगी। स्वामी विवेकानन्द ने भारत की इस समष्टिगत स्वाधीनता के लिए कितने ही स्थानों पर भाषण देते हुये कहा है— ''हमें अग्निमन्त्र से दीक्षित केवल आठ युवकों की आवश्यकता है।'' परन्तु देश उन्हें कितने त्यागी दे सका ।''[२]

विवेकानन्द का प्रभाव उनके 'प्रवाह' निबन्ध पर भी दिखाई पड़ता है, जहाँ वे मुक्ति सम्बन्धी विचारधारा के साथ ही साथ ब्रह्म की कल्पना महाशक्ति के रूप में करते हैं। विवेकानन्द की तरह आत्म प्रकाशन को ही धर्म कहते हुये उसे मुक्ति के साथ समन्वित कर देते हैं। मुक्ति के लिए ब्रह्म के स्वरुप की सम्यक विवेचना पर बल देते हैं । ब्रह्म की संकल्पना महाशक्ति के रूप में करते हुये उसे असीम और अनन्त घोषित करते हैं, ''इस सर्व व्यापिनी महाशक्ति की कल्पना से अखण्ड ब्रह्माण्डों की सृष्टि हुई हैं । उस महाशक्ति में यह कल्पना कब हुई थी या इस कल्पना का कब अन्त होगा, यह महर्षि तक नहीं कह सकते और आगे न कभी कोई कह सकेगा । कारण, अनादि ,

---

१. शक्ति - परिचय, निराला रचनावली -६ पृ० ५५

२. वही पृ० ५८-५९

अनन्त महाशक्ति की इच्छा को वाक्यों में लाना न सम्भव हुआ है और न होगा । असीम कभी ससीम नहीं हो सकेगा ।''[१] यहाँ पर हम विवेकानन्द की शक्ति आराधना के भाव का प्रभाव पाते हैं और उस जगन्माता को अनन्त, असीम और सर्वव्यापी मानते हैं ।

इन्हीं की उपासना के परिणाम स्वरूप अपने अन्द स्थित विराट की अनुभूति किया जा सकता है और यही अनुभूति साकार होने पर व्यक्ति मुक्त हो जाता है । इसी विवेकानन्दी आत्मतत्व को निराला स्वीकार करते हैं - ''आत्मवाद या मुक्ति ही भारत के जातीय जीवन का लक्ष्य है । मुक्ति प्रवाह या माया के अधिकारी से अलग है । बिना मुक्त हुये जीव स्वतन्त्र नहीं हो सकता। मुक्ति पद पर पहुँचने के जो उपाय बताये कहे गये हैं, वही साधन मार्ग है । साधन से सिद्धि तक का रास्ता प्रवाह के ही भीतर है । किन्तु वह प्रवाह माया या अविद्याकृत नहीं है। मुक्ति साधना प्रारम्भ करते ही यथार्थ विद्या या सत्य ज्ञान का भी आरम्भ हो जाता है और ब्रह्म या आत्मदर्शन में सत्य ज्ञान को पूर्णता प्राप्त होती है।''[२]

इस तरह निराला के दार्शनिक निबन्धों में विवेकानन्द का ही दर्शन दिखाई पड़ता है और निराला उन्हीं की कविताओं और उच्चारणों का प्रयोग अपनी बात को प्रमाणित करने के लिए करते हैं । जगह-जगह उन्हीं के दार्शनिक तत्वों का ही विवेचना करते हुये निराला एक दार्शनिक की तरह तत्वों का सृजन और ध्वंस करते हैं; हर समस्या का जादुई हल विवेकानन्द के विचारों को ही मानते हैं और वही प्रमाण भी स्वीकारते हैं ।

मानवतावादी विचारों का प्रभाव

विवेकानन्द ने उच्चादर्श युक्त जिस नववेदान्त का प्रतिपादन किया था, उसे निराला हर स्तर पर पुनरुत्थान का सूचक मानते हैं, 'वहाँ के ज्ञानास्त्र को काट कर अपनी निर्मल जातीयता के पुनरुत्थान के लिए आवश्यक है, वेदान्त ज्ञान। वेदान्त ज्ञान के प्रभाव से मनुष्य की मनुष्य से यह इतनी बड़ी घृणा न रह जायगी और संगठन भी ज्ञानमूलक होगा ।'[३] और मानवतावाद के उत्प्रेरक के रूप में मनुष्य मात्र के मध्य भेद और घृणा को अस्वीकार करते हैं । भारत में व्यवस्था जन्य

---

१. प्रवाह , निराला रचनावली-६ पृ० ३८ २. वही पृ० ४०
३. वर्णाश्रम - धर्म की वर्तमान वही पृ० १०५

विसंगतियों के कारण मनुष्य की जो अवदशा हुई, उनके मध्य जिस तरह आपसी वैमनस्यता पूर्व में थी और जो समाप्त भी नहीं हो पा रही थी, उसको लेकर निराला बहुत क्षुब्ध थे और उसे हर स्तर पर समाप्त करने के लिए कटिबद्ध दिखाई पडते थे। धर्म, वर्ग, जाति, सम्प्रदाय, संख्या जन्य कोई भी विभेद उन्हें स्वीकार न था। इसी मुद्दे पर उनकी एक टिप्पणी 'मनुष्य-धर्म' उनकी विचारधारा को प्रमाणित कर देती है। कई अन्य स्थानों पर भी उनका मानववादी दृष्टिकोण अभिव्यंजित होता है। अपने कई निबन्धों में भी विवेकानन्द का दृष्टान्त देते हुये उनके मानववादी विचारों का पोषण करते हैं। विवेकानन्द का विचार है, "मैं ऐसे ईश्वर को नहीं चाहता; जो करोड़ों भूखों को भोजन न दे सके।.....(क्योंकि)..... खाली पेट धर्म नहीं होता।" निराला इससे अनुप्रेरित होकर धर्म को मनुष्यत्व के लिए बाधक नहीं समझते, बल्कि मानवता को धर्म के ऊपर समझते हैं। मानव का साध्य धर्म नहीं है, अपितु उसके परम कल्याण के लिए साधन मात्र है। वे समझते हैं, "मैं हिन्दू नहीं, बौद्ध नहीं, क्रिश्चियन नहीं, मुसलमान नहीं, मनुष्य धर्म में दीक्षित हूँ।" इस तरह नये सम्प्रदाय का निकलना भी अनिवार्य है। फिर इसके साथ 'उसका संघर्ष न होगा, मनुष्यता पशुता में परिवर्तित न होगी, कैसे कहा जा सकता है ?'"[१] अतएव इस नये धर्म की आवश्यकता नहीं, क्योंकि कोई भी धर्म पुराना नहीं, वह अभिनव रहता है और सूक्ष्म रूप में मनुष्य-धर्म को समाहित किये रहता है।

विवेकानन्द का नववेदान्त मानवतावाद- का मेरुदण्ड कहा जा सकता है, प्रत्येक व्यक्ति समभाव के धरातल पर स्थापित हैं, उनमें किसी तरह का भी भेद नहीं है। एक ही प्रकाश पुंज सब में विद्यमान होकर उसें आलोकित किये रहता है। ' जीव ही शिव हैं, 'नर ही नारायण है,'' दीन-दीन ही जाग्रत देवता है' इस तरह के उद्घोष का निराला के जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा था, उसी कारण उनके निबन्धों में भी दलितों, किसानों, स्त्रियों आदि समाज के उपेक्षित वर्गों की वेदना को उठाया गया है। कर्म करने से कोई भी व्यक्ति हीन या छोटा नहीं हो जाता, क्योंकि सभी 'कर्म' समान रूप से समाजोपयोगी है। निराला यह समझते थे कि 'किसानों' को शिक्षित किये बिना और उनकों संगठित किये बिना देश की प्रगति सम्भव नहीं है। विवेकानन्द की तरह सभी मनुष्यों को 'अमृतस्य पुत्राः' कहा करते थे और अस्पृश्यता को मानवता का विरोधी करार देते हैं। अन्त्यजों एवं अन्य पददलित लोगों के विकास की अभिप्रेरणा भी उन्हें विवेकानन्द से ही प्राप्त हुई थी, जो

---

१. मनुष्य - धर्म , निराला रचनावली -६ पृ० ३९२

उनके संस्कारों में रच-पच गई थी । इस कार्य को करने के कारण निराला महात्मा गांधी की श्रद्धा पूर्वक चर्चा करते है,' अन्त्यजों' की शिक्षा -दीक्षा तथा अधिकारों की वृद्धि भी क्रमशः होती जा रही है । महात्माजी ने भी अन्त्यजों के लिए बहुत कुछ कहा है।''[१] बाद में विवेकानन्द के वृहद आवाहन का वर्णन करते हैं । निराला भारतीय समाज एवं राष्ट्र की नींव के लिए ' मनुष्यता' के भाव को व्यापक धरातल पर स्थापित करने की बात करते हैं -,' भारत की विशाल राष्ट्रीयता यहीं हैं । यहाँ हिन्दू- मुसलमान वाला सवाल नहीं । ऐसे मनुष्य (छोटे व हीन) को कोई हिन्दू या मुसलमान, धर्म-विशेष में कैद रहने वाला मनुष्य- नहीं हज्म कर सकता । आप ही सोचिए, ऐसे भाव को कोई 'पन' क्या अपने में मिला सकता है ?आप समझें, सब'पन'- इसी भाव के आश्रय में है या नहीं ।''[२] और मानवता' को 'वाद' या 'पन' से अलग कर देते हैं।

राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम सम्बन्धी विचारों का प्रभाव

निराला के निबन्धों में राष्ट्र प्रेम का प्रखर भाव देखा जा सकता है । यह मापना जितन तीव्र रूप में निबन्धों में प्राप्त होती है, उतना अन्य किसी विधा में नहीं । उनके निबन्ध देश प्रेम के जीवंत छाया शब्द हैं, जिन्हें पढ़कर भारत की जनता और भारत के स्वरूप की वास्तविकता सामने आ जाती है । विवेकानन्द के विचारों का प्रभाव भी इतना विस्तृत पड़ा है कि कई जगह निराला के निबन्ध विवेकानन्द के ओजस्वी भाषणें के भावानुवाद ही प्रतीत होते हैं । निराला के अनुसार '' मनुष्य है । स्वाधीनता उसकी स्वाभाविक वृत्ति हैं जो जनसमूह पराधीन हो जाता है, उसकी पराधीनता के कुछ खास कारण होते हैं । इस समय हमारे देश में, उन प्रबल कारणों पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता, जितना उनके परिणाम के रूप से आने वाले उपद्रवों पर दिया जाता है।''[३] 'सुधा' मासिक लखनऊ से सम्पादित उन के लेखों में तत्कालीन राष्ट्रीय अभिव्यक्ति की व्यापक स्वीकारोक्ति देखी जा सकती है। स्वतन्त्रता के प्रश्न पर व्यापक बहस चल रही थी, स्वामी विवेकानन्द ने स्वतन्त्रता को एक वृहदार्थ व्यंजित करने वाले शब्द ' मुक्ति' से जोडा, जिससे

---

१. वर्तमान हिन्दू - समाज, प्रबन्ध प्रतिमा, निराला रचनावली -६ पृ० ११०
२. राजनीति के लिए सामाजिक योग्यता, वही पृ० ४०४
३. संगठन का एक रूप, वही पृ० ३२८

राजनीति के साथ ही साथ धर्म, समाज, अर्थ के क्षेत्र भी सम्बद्ध हैं और उससे समानता का बोध भी होता है । निराला अपने निबन्धों में इसी भाव को पुष्ट करते हुये दिखाई देते हैं । वे स्वतन्त्रता को ज्ञान से सम्बद्ध करते हैं, 'मित्र, हम मजाक नही उड़ा रहे। हम पत्थर नहीं हैं । देश की स्वतंत्रता सब को प्रिय है, और सबके हृदय की सुवर्ण कल्पना । हाँ पथ भिन्न-भिन्न हैं । शास्त्रों की अनुकूल महत्ता से मिलने के कारण ही महात्माजी आज संसार के सबसे बड़े मनुष्य हैं ।............. स्वतंत्रता ज्ञान से होगी, पृथ्वी से नहीं । बहुत बड़े-बड़े आदमियों का कहना है, ऐश्वर्य ने मनुष्य नहीं बनाये, मनुष्यों ने ही ऐश्वर्य पैदा किया है ।'' इसी बात को और स्पष्ट भी करते है ,' अस्तु, हम भारत के ही सिद्धान्तों के भीतर से, जो सभी अच्छे सिद्धान्तों से मिलते हैं- सदा सार्वदेशिक है, अपना पूर्ण सुधार करते हुये, अभीप्सित स्वतन्त्रता के लक्ष्य पर पहुँचा हुआ देखना चाहते हैं।''[१]

उसी व्यापक नववेदान्ती शब्द 'मुक्ति' को कई स्थानों पर परिभाषित करने का प्रयास निराला ने निबन्धों में किया है । वे इसे राजनीति केन्द्रित करने पर प्रश्नचिह्न उठाते है, '' इसमें सन्देह नहीं, इस समय की स्वाधीन-वृत्ति कहलाने के कारण अधिकांश मनुष्यों की स्वाधीनता की चिन्ता, राजनीति की परिधि के भीतर ही चक्कर काट रही है । हम इस सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द को प्रायः यह कहते हुये पाते है-' मेरे बच्चों, बहककर तुम चाहे जहाँ चले जाओ- कुछ काल के लिए चाहे जिसे अपना आदर्श मान लो, परन्तु अन्त में तुम्हें अपने-पूर्वाचार्यो के अनुशासनों , को उनके सिद्धान्तों को मानना पड़ेगा । इसके सिवा दूसरा उपाय कोई नहीं ।''[२] फिर इसी मुक्ति को व्यापक अर्थो से जोड़ते हुये आगे कहते है,'' देश की समष्टिगत स्वाधीनता की तो इस प्रसंग में आप मीमांसा ही जाती है, क्योंकि व्यक्तिगत स्वाधीनता ही समष्टिगत स्वाधीनता की जननी है और इस दृष्टि से आज भी भारत में अन्य देशें की अपेक्षा स्वाधीन मनुष्यों की संख्या अधिक होगी। स्वामी विवेकानन्दजी ने भारत की इस समष्टिगत स्वाधीनता के लिए कितने ही स्थानों पर भाषण करते हुये कहा है-'' हमें अग्निमन्त्र से दीक्षित केवल आठ युवकों की आवश्यकता है।'' परन्तु देश उन्हें कितने त्यागी दे सका ?''[३] इस तरह प्रत्यक्ष तौर पर विवेकानन्द के उदाहरण द्वारा हम निराला पर विवेकानन्द के अप्रतिम प्रभाव को समझ सकते हैं ।

---

१. संगठन का एक रूप , निराला रचनावली -६ पृ० ३२९-३०
२. शक्ति परिचय, वही पृ० ५५
३. वही पृ० ५८-५९

भारतीय जनमानस की कूपमंडूकता का विवेकानन्द ने घोर विरोध किया और कई स्थानों पर कुँआ और मेढक के प्रकरण को सुनाकर विशाल सागर में विचरण करने का सन्देश दिया । निराला भी इसी संकीर्णता को राष्ट्रीय पतन का एक बड़ा कारण मानते है,'' आज की अज्ञान के अन्धकार में डूबा हुआ हिन्दू समाज विदेश यात्रा का विरोध करता है । उन दिनों जब अँगरेजी शिक्षा का पहला दौर था, विलायत से लौटते हुये लोगों के लिए हिन्दू समाज में कहीं भी जगह न थी, शिक्षित लोग इस हृदय हीनता के कारण ईसाई हो जाते थे, अन्त तक, विलासिता के बढ़ने के साथ ही, बंगाल में अँगरेजी शिक्षित कालेजों के लड़के धड़ाधड़ ईसाई होने लगें, ।''[१]

मनुष्य की सभी प्रकार की परतन्त्रता का वास्तविक अन्त तभी हो सकता है, जब उसका सही स्वरूप न समझ में आ जाय । यह आधार न ज्ञात होने पर दासता बनी रहती है, जो कई ढंग की होती हैं । विवेकानन्द ने भी कई आधारों की पराधीनता बताया है, अर्थगत, समाजगत, असमानता के स्तर की । निराला वैदूषिक स्तर पर इसका समर्थन करते हैं,' कहा जा चुका है, गुलामों की एक जाति होती है, चाहे अँगरेजी ढंग से कह लीजिए या हिन्दूस्तानी ढंग से। पर जब गुलामों के भीतर भी गुलाम जातियाँ निकलती रहती हैं, तब समझना चाहिए कि गुलामी के कितने पेंच काटकर उससे निकलने की जरूरत है ।'[२] और दासता के एक दुश्चक्र की चर्चा करते है, जिससे उच्च वर्ग निम्न वर्ग को अधीन बनाये रखना चाहता है, परुष स्त्रियों को गुलाम बनाये रखना चाहता है, बहुसंख्यक अल्पसंख्यक पर आधिपत्य चाहता है और सभी जुड़कर वास्तविक पराधीनता का बोध दिलाते हैं और विचार व्यक्त करते हैं,' मैंने भी वस्तु और विषय की स्वतन्त्रता की तरफ ध्यान रखा है, एक साहित्यिक की तरह, एक कवि की तरह, एक दार्शनिक की तरह । मेरा उद्देश्य था और है, स्वतन्त्रता बहुमुखी है और साहित्य का मतलब है- वह सबको साथ लिए रहे । इस दृष्टि से दूसरे जाग्रत राष्ट्रों और उन्नतिशील साहित्यों के नमूने देखते हुये अपने गत और वर्तमान राजनीति और साहित्य को समझते हुये, देश के विभिन्न धर्मो, सम्प्रदायों, प्रान्तीय भाषाओं, लोगों के आचार विचारों के भीतरी रूप जानते हुये, बाहरी संसार से उनके सहयोग का रूप देखते हुये जो साहित्य का निर्माण करते हैं, वे साथ-साथ जाति और राष्ट्र का भी निर्माण करते हैं ।'[३]

---

१. वर्तमान हिन्दू - समाज, निराला रचनावली -६ पृ० १०९
२. हिन्दुओं का जातीय संगठन , वही पृ० ३७५
३. गाँधीजी से बातचीत, वही पृ० २११

आगे वही पर स्वतन्त्रता के बोध का ही प्रश्न वे गाधीजी से उठाते हैं और उसे हिन्दी से जोड़ देते हैं ,' हम लोगों के भाव इसीलिए प्रचलित नहीं होने पाये। देश की स्वतन्त्रता के लिए पहले समझ की स्वतन्त्रता जरूरी है। मैं आपसे निवेदन करने आया हूँ कि आप हिन्दी की इन चीजों का कुछ हिस्सा सुनें।''[१] इस तरह गाँधीजी से बातचीत में भी स्वतन्त्रता के बोध का प्रश्न उठाकर उसे नवीन आयाम देते हैं।

फिर इसी व्यापक समझ वाली स्वतन्त्रता का भाव नेहरूजी से हुई बात चीत में सम्प्राप्त होता है। स्वतन्त्रता की वहीं व्यापक दृष्टि, व्यापक समझ, व्यापक बोध ही भारत को सम्पूर्ण रूप में स्वतन्त्र बना सकता है। निराला का विचार है,'' यही दृष्टि जरूरी है, यही दृष्टि पतित का सार्वभौम सुधार कर सकती है गुलाम की बेड़ियाँ काट सकती है। हिन्दू- मुसलिम क ोमिला सकती है- यह निगाह आज तक की रूढ़ियों से जुदा है,.......... यह निगाह पूरब और पश्चिम को अच्छी तरह पहचानती है, यह निगाह ब्राह्मण और शूद्र नहीं मानती।''[२] इस निगाह को हम उनके ' दिव्यता और वेदान्त' टिपण्णी से जोड़कर देखें जहाँ वे लिखते ह,' वेदान्त स्वयं सत्य है, निर्लिप्त है, अक्लेद, अविनाशी पूर्ण, ओत-प्रोत। दिव्यता के आईने से उसका प्रकाश अधिक मधुर देख पडता है। यों सभी सृष्टियों से उसकी झलक निकलती रहती है।''[३] इस आईने की दिव्य झलक ही, नववेदान्त कही जा सकती है और उसी के माध्यम से विवेकानन्द की तरह निराला भी सभी समस्याओं का पूर्ण एवं सत्य हल निकालने की बात करते हैं।

विवेकानन्द का यही नववेदान्ती समाधान ही भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन को मौलिकता प्रदान करता है। निराला भी इसी से प्रेरित हो कर, लोगों और विशेष कर नेताओं की आलोचना करते हैं,' हमारे देश के अधिकांश नेता त्याग और मनुष्यता में बहुत आगे बढ़े हुये भी केन्द्रच्युत हैं ; इसलिए ऐसी आवाज नहीं उठाते, जिससे अधिकार वाद का मौलिक परिवर्तन हो। वे डरते हैं कि हम इतनी आजादी से काम लेंगे, तो देश हमारा साथ न देगा। जहाँ यह डर है, वहाँ वह केन्द्र नहीं जहाँ वह केन्द्र है, वहाँ यह डर नहीं। कुछ नेता योरप का स्वप्न देखते हैं। पर वहीं के

---

१. गाँधजी से बातचीत, निराला रचनावली - ६ पृ० २१५
२. नेहरूजी से दो बातें, वही पृ० २१९
३. दिव्यता और वेदान्त , वही पृ० ३५१

अधिकारवादों को वे देखें, तो देखेंगे, एक दूसरे से भिन्न हैं, दूसरे से मौलिक। यह मौलिक अधिकार भारतवर्ष का कैसा है,'राष्ट्रीयता' शब्द के पुनः- पुनः उच्चारण से इसका स्पष्टीकरण नहीं होता, सविशेष मनन से होता है।''[1] इस परानुकरण, परानुवाद और परापेक्षा को छोडकर भारतीय आदर्शो पर आधरित और उदात्त भाव से युक्त अधिकार ही हमारे लिए वांछनीय है।

विवेकानन्द ने संगठन को वर्तमान युग की महती आवश्यकता बताया और राष्ट्रीय चेतना के लिए उसे अभीष्ट माना। निराला उनके इस विचार से अनुप्रेरित थे। उनका सोचना था,''समय ऐसा आ गया है कि अब व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की अपेक्षा संगठित शक्ति का महत्व ज्यादा हो गया हैं। चिरकाल से हिन्दुओं की शक्ति बिखरी हुई थी। इसका कारण अनेकानेक समाजों का बढ़ना और परस्पर का विच्छेद है।''[2] इस प्रकार शक्ति के परिचय और एकीकरण के लिए संगठन ही एकमात्र विकल्प है। संगठन को प्राणवन्त युवा शक्ति ही बनाती है और विवेकानन्द का उद्घोष है,''मेरा विश्वास युवा पीढ़ी , नयी पीढ़ी में है, मेरे कार्यकर्ता उनमें से आयेंगे। सिंहों की भाँति वे समस्त समस्या का हल निकालेंगे। मैने अपना आदर्श निर्धारित कर लिया है और उसके लिए अपना जीवन दे दिया है।''[3] यही आवाहन निराला ने कई निबन्धों में यहीं भाव लिये हुये, किया है। इसे विश्व सन्दर्भ से जोड़ते हुये निराला लिखते भी हैं,'देश को हर तरह की पराधीनता के पाश से मुक्त करने वाली हमारी युवक-शक्ति ही है। अभी-अभी चीन का राष्ट्र विप्लव इसकी साक्षी दे चुका है। जिस देश में युवक जानदार नहीं, जिस देश के भावी उत्तराधिकार के युवकगण प्रयत्नशील नहीं , वह देश गुलामी की बेड़ियों को काट नही सकता।.............अबकी साल देश के सामने यह जो परिथिति आ गई है, उसके निर्वाह के लिए हम युवकों की ही अपराजित शक्ति का भरोसा रखते है। देश की मर्यादा तथा सम्मान की रक्षा के लिए हमारे युवक ही हृदय के अन्तस्तल से देश की मदद कर सकते हैं। कांग्रेसी की अनुकूलता तथा उसकी आज्ञा के पालन के लिए अबकी हमारे युवकों को तन-मन से कार्य क्षेत्र की ओर बढ़ आना चाहिए। संसार की आँखों को भारत के युवक ही वह दृश्य दिखा सकते है, जो भारत के अतीत गौरव के अनुकूल है। जिनकी मेधा परिस्कृत है, जिनका जीवन निष्पाप तथा उज्जवल है, जो देश के वर्तमान काल के गौरव और

---

१. अधिकार - समस्या , निराला रचनावली -६ पृ० ४२३
२. हिन्दुओं का जातीय संगठन , वही पृ० ३७३
३. विवेकानन्द साहित्य - ४ पृ० २६०

भविष्य की आशा है ।.............. अब की हमारे युवक- सम्राट, विजयी होकर ही रहे । ‘ वन्दे मातरम् ।’[१] वही भाषा, वही शैली, वही ओजस्विता, वही विश्वास, वही तेजस्विता; इस विस्तृत विवेचना में सबका उत्स निराला के आदर्श विवेकानन्द ही हैं ।

राष्ट्रीयता के समुचित विकास और स्वतन्त्रता के लिए निराला ने शिक्षा को सर्वव्यापी समाधान के विवेकानन्द के आदर्श रूप में अक्षरशः स्वीकार किया है । निराला का विचार है कि राष्ट्रीयता हेतु‘‘ पहले तो इसके लिए शिक्षा आवश्यक है । नयी लायी हुई मिट्टी से आप घड़े, कमोरे , नाँद और दिवालियाँ आदि कुछ गढ़ नही सकते, जब तक कि उसे मिट्टी को तैयार न कर लें। मिटटी तैयार हो जाने पर जो चाहे गढ़ सकते हैं। शिक्षा ऐसी ही मिटटी है ।’[२] इस तरह निराला के लिए शिक्षा बहु उपयोगी मिटटी है और विवेकानन्द के लिए जैसा कि हम पहले कह आए हैं कि वह एक जादुई शब्द है, जिससे सारी समस्या का हल हो जाता है । इस बिन्दु पर निराल एवं विवेकानन्द आपस में मिले हुये दिखाई देते हैं।

निराला शिक्षा के अभाव के लिए सरकार को दोषी ठहराते हैं,‘ देश की यह बहुत ही दयनीय दशा है । सरकार बेचारी भारतवर्ष की रक्षा के लिए सामरिक खर्च-भर का भी रूपया नही पाती, फिर देश के लिए शिक्षा को अनिवार्य करने का खर्च वह कहाँ से लाये। ’[३] विवेकानन्द ने भी आर्थिक संसाधनों के अभाव को एक मुख्य कारण मानते हुये अशिक्षा को गरीबी से जोड़ा था । इसके बावजूद शिक्षा मनुष्य के लिय अनिवार्य है और शिक्षित लोगों से बौद्धिक वर्ग से विवेकानन्द की तरह निराला भी आवाहन करते हैं कि शिक्षित एवं चेतना ग्रस्त व्यक्ति ही राष्ट्र के लिए मेरुदण्ड होंगे । ‘ यही से राष्ट्र की वृद्धि है, शक्ति है, उत्थान है । सब सुधार, सारी शिक्षा, कुल वैमनस्य का प्रतिरोध यहीं हैं।’[४] इस तरह निराला शिक्षा को सर्वप्रथम साधन के रूप में लेते हैं जिससे धर्म की बेड़ियों को, समाज की बेड़ियो को तोड़ा जा सकता है और मानव का वाह्याभ्यन्तर विकास भी हो सकता है, जो वास्तविक, चिरस्थायी और लोकग्राह्य भी होगा।

---

१. राष्ट्र की युवक - शक्ति ,निराला रचनावली -६ पृ० २५२-५३
२. संगठन का एक रूप - वही पृ० ३२८
३. सामाज और मनुष्य , वही पृ० २९३
४. राजनीति के लिये समाजिक योग्यता, वही पृ० ४०४

सामाजिक विचारधारा का प्रभाव

निराला के निबन्धों में सामाजिकता का स्वर बहुत मुखर रूप में व्यक्त हुआ है, उनके कई निबन्धों में समाज की सच्चाई और कटु यथार्थ अपने निपट नंगेपन में व्यक्त हुआ है । इनमें भी निराला के ऊपर विवेकानन्द का गहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है । विकोनन्द का सामाजिक संरचना सम्बन्धी विचार, जाति व्यवस्था सम्बन्धी दृष्टि, अस्पृश्यता व शूद्र शक्ति के उत्थान सम्बन्धी बातें, स्त्रियों की प्रगति सम्बन्धी विचारधारा को निराला ने अपने लेखें में जीवंतता के साथ उठाया है। निराला भी भारतीय समाज का केन्द्र धर्म को ही मानते हैं - और सामाजिक व्यवस्था के कालान्तर में अनके रूढ़ियों में बद्ध हो जाने की चर्चा करते है । सामाजिकता का स्वर और उस पर विवेकानन्द का इतना गहरा असर इतने व्यापक रूप में व्यक्त हुआ है कि विश्लेषण करना अनिवार्य हो जाता है।

'जातीय जीवन और श्रीरामकृष्ण ' निबन्ध में निराला भारतीय समाज के आधार की व्यापक चर्चा करते हैं और उसके स्थापित्य की बात को भी स्पष्ट करते हैं,'' भारत का जातीय प्रासाद किसी क्षणिक या अल्पकालिक अथवा नश्वर भित्ति पर नहीं उठाया गया । उसकी बुनियाद है सामाजिक लब्ध पूर्ण ज्ञान । भारत की जातीय विशिष्टता किसी पार्थिव वस्तु और भौतिक शक्ति अधिकारादि पर अवलम्बित नही है । वह मोक्षाभिमुख है ।''[१] उसके बाद भारतीय समाज की नींव में अनेक संकीर्णताओं के आ जाने से नींव के कमजोर पड़ने की जो आशंका आ पड़ी,उसके लिए वे मतछुओवाद को दोषी ठहराते हैं । ''हृदय का धर्म भारत के जातीय पतन का निर्भय सहायक हुआ । तिस पर वे संकीर्णता के घोतक हुआछूत के आचार विचार । धर्म की मेड़ बाँधते-बाँधते अन्त तक धर्म का सूत्र हो गया- हमें मत छूओ । सदा सशंक भाव ।''[२] यहाँ पर निराला जैसे विवेकानन्द के इस विचार का-' आपका समस्त दर्शन रसोई में है । आजकल भारत का धर्म मत छुओ- वाद है ।'- निराला सैद्धान्तिक स्तर पर समर्थन करते हुये उसकी अधिक व्याख्या करते हैं। इसी निबन्ध में मुसलमानों के आने के बाद भारत के जातीय श्रृंखला के और रूढ़िबद्ध हो जाने से अंग्रेजो द्वारा जातीय समीकरण का सच्चा हिसाब लगाया गया और राजशक्ति के निकट ब्राह्मण चाण्डाल में कोई भेद नहीं रह जाने का विवेचना है ।

---

१. जातीय जीवन और श्रीरामकृष्ण , निराला रचनावली -६ पृ० ४१
२. वही पृ० ४३

विवेकानन्द क्षणिक समाज सुधार के प्रचारक नहीं हैं, वे स्थायी तौर पर समाज की गतिशीलता और चैतन्यता के प्रति सुधार करना चाहते थे - 'समाज की आँखों पर बहुत दिनों तक पट्टी नहीं बाँधी जा सकती । समाज के ऊपरी हिस्से में कितना ही कूड़ा-करकट क्यों न इकट्ठा हो गया हो, परन्तु उस ढेर के नीचे प्रेमरूप निःस्वार्थ सामाजिक जीवन का प्राण-स्पन्दन होता ही रहता है।'' विवेकानन्द की इस विचार धारा का निराला के ऊपर व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है । निराला के कई निबन्ध उसी भाव से अनुप्राणित देखे जा सकते हैं । विवेकानन्द का देश की सामाजिक व्यवस्था के प्रति उदात्त भाव निराला में भी देखा जा सकता है ।' जब विचार की पहुँच किसी सत्य तक होती है, उस समय मस्तिष्क की तमाम विश्रृंखलताएँ दूर हो जाती हैं । जरा देर के लिए एक प्रकार की शान्ति मिलती है । भारतवर्ष को मुक्ति की ओर ले जाने वाले आज तक जितने भी विचार देखने में आये है, वे राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक किसी भी दिशा में , झुकाये गये हों, वैदान्तिक विचार की समता नहीं कर सकते । कोई भी 'मण्डल' ऐसा नहीं है, जिसमें कोई न कोई दोष न हो । कोई वाद ऐसा नहीं है, जो जाति , देश या समाज को पूर्ण स्वतन्त्रता तक पहुँचा सके- जहाँ किसी प्रकार का विरोध न हो। भारतवर्ष की समाज श्रंखला उसी वैदान्तिक धातु से मतबूत की गयी है कोई वर्णश्रम-धर्म को माने या न माने, पर अपनी प्रगति की व्याख्या में यदि वह वेदान्त को भी नही मानता, जैसा कि आज-कल अधिकांश शिक्षितों की शिरश्चरण विहीन युक्तियों में देखा जाता है, तो वह भारतीय कहलाने का दावा नहीं कर सकता ।''[1] इस तरह प्राचीन गौरव का उद्घोष करने के बाद अभिनव कल्पना पर भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हैं और समाज को धर्म के साथ जोड़े जाने और उस व्यवस्था क्रमशः रूढ़ हो जाने पर वांछित परिवर्तन की बात भी करते हैं,' यहाँ धर्म ही जीवन है और उसकी व्याख्या भी बड़ी विशद हैं यहाँ उसके व्यक्तित्व के बढ़ाने का उपाय हैं शिक्षा का सार्वभौमिक प्रसार।............ वृद्ध भारत की वृद्ध जातियों की जगह धीरे - धीरे नवीन भारत की नवीव जातियों का शुभागमन हो, इसके लिए प्रकृति ने वायुमण्डल तैयार कर दिया है ।''[2] भारतीय जाति व्यवस्था को अनेक त्रुटियों के बावजूद विवेकानन्द ने अपेक्षाकृत अच्छी व्यवस्था बताया। पैतृक कुशलता का संरक्षण और उसकी सातत्यता इसका एक प्रमुख सकारात्मक पक्ष है, निराला भी इस प्रभाव को नेहरू के भाषण से सिद्ध

---

१. वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति , निराला रचनावली -६ पृ० १००-१०१
२. वही पृ० १०७

करते हैं,' भारत की समाज - व्यवस्था संसार की आँखों में एक विस्मयकारी सृष्टि है । इतिहास में इससे ज्यादा विस्मय पैदा करने वाली घटनाएँ बहुत थोड़ी हैं । हजारों वर्ष की बाधाओं तथा विघ्नों का अतिक्रमण कर यह समाज जीवित है । इसका कारण यह है कि भारतीय समाज सम्पूर्ण परिवर्तनों को हजम कर पाने में समर्थ रहा है ।''[१] और इस दृष्टान्त के माध्यम से भारतीय समाज की अक्षुण्ण जीजिविषा को भी रेखांकित करते हैं ।

निराला सबसे पहले स्वतन्त्रता के लिए जनता को तैयार करने की बात करते हैं, क्योंकि अधिकार लेने के लिए भी व्यक्ति को मानसिक एवं सामाजिक स्तर पर तैयार रहना होगा । विवेकानन्द का भी कुछ ऐसा ही विचार था कि ऐसा न होने पर प्रजा को दबाना बन्द नहीं हो पायेगा । अतएव समाज को गतिशील होना होगा । निराला समाज के इसी महत्व को व्यापक दृष्टि देते है,'' पहले हमारे नेताओं के केवल आर्थिक और राजनीतिक लक्ष्य थे, जिनका सहयोग समाज के साथ न था । जो समाज पुराना और मरा हुआ है, वह कितनी भी प्राचीन विभूतियों से युक्त हो, वह नवीन युग के लिए मृत है । उसी से पहले हमें लड़ना था । लड़कर परास्त करना था । परास्त कर नये समाज को सजीव और बहुजनों वाला बनाना था। तब हम राष्ट्र का पहला सोपान तय करते। इसी समाज से राष्ट्रको बल मिलता । यहीं समाज राष्ट्र का समाज है ।''[२] इसी प्रकार एक जगह और इसका का वर्णन भारतीय इतिहास की सातत्यता के परिप्रेक्ष्य में हुआ है और इसके आधारभूत पक्षों को औदात्य और अपराजेय बताकर इसकी अप्रतिम शक्ति की व्याख्या की गई है ।

भारत की वर्णाश्रम व्यवस्था पर बहुत अधिक वाद विवाद की प्रवृत्ति पाई जाती है अपने उदात्त रूप में जहाँ यह कर्मानुसार था, समाज को संस्थापित करने में इसने अद्वितीय योग दिया । विवेकानन्द के इसी विचार को इस भाव में व्यक्त करते हुये निराला लिखते हैं,' वर्णाश्रम धर्म एक ऐसी सामाजिक स्थिति है, जो चिरन्तन है । स्वाधीन समाज की इससे अच्छी वर्णना हो नही सकती । कोई समाज इस धर्म को मानता भले ही न हो, पर वह संगठित इसी रूप से होगा । पर यह निश्चय है कि यह अधिकार सार्वभौमिक है, एकदेशिक, जातिगत या व्यक्तिगत नहीं।''[३] वे 'वर्तमान हिन्दू- समाज' निबन्ध मे विवेकानन्द के अवदान की प्रत्यक्ष चर्चा भी

---

१. लाहौर - कांग्रेस के सभापति पं०जवाहरलाल नेहरू, निराला रचनावली -६ पृ० २६३
२. हिन्दुओं का जातीय संगठन, वही पृ० ४०३
३. अधिकार समस्या , वही पृ० ४२३

करते है और उन्हें एक बहुत बड़े समाज सुधारक की दृष्टि से देखते हैं,क्योंकि उन्होंने सारी जड़ता को समाप्त कर समाज को पुनः गतिशील बनाया।' रामकृष्ण-मिशन इसी समय की कुछ पीछे से प्रतिष्ठित एक ऐसी ही संस्था है, जिसके नायक स्वामी विवेकानन्द जी हैं। श्रीरामकृष्ण----- उनके शिष्यों में प्रमुख स्वामी विवेकानन्दजी ने अमेरीका से लौटकर इस मिशन की स्थापना की। स्वामी विवेकानन्दजी की विचार श्रृंखला यहाँ सब धर्मों, सब सम्प्रदायों के अनूकूल है। वह अद्वैतवादी थे। पर उनकी द्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत सब विभागों में गति थी। वह तत्व दर्शी महापुरुष थे।------ स्वामीजी तमाम हिन्दू जाति के लिए कहते हैं-we are vendantists. यहाँ बहुत बड़ा भाव छिपा हुआ है। बहुत बडा सुधार इस उक्ति में है। यहाँ जाति पाँति का कोई भेद नहीं है। सब लोग परस्पर ज्ञान सम्बद्ध हो जाते हैं और सुधार की जो मुख्य बात है, वह भी आ गयी हैं यहाँ वर्णभेद नहीं है, कारण, सभी'' अमृतस्य पुत्राः हैं।''[१] इस प्रकार निराला प्रत्यक्ष रूप में विवेकानन्द को वर्णाश्रम की व्यवस्था का विचारक और सुधारक मानते हैं। इसके आदर्शात्मक एवं सैद्धान्तिक स्वरूप की वे प्रशंसा करते हैं और व्यवहार के स्तर पर वर्णाश्रम के क्रमिक परिवर्तन की बात भी करते हैं। वहाँ उनका स्वर अधिक तीखा एवं अर्थपूर्ण हो गया है।

विवेकानन्द ने जाति प्रथा के नकारात्मक पक्षों के बारे में कहा,' जाति का सबसे बुरा पक्ष यह है कि वह प्रतियोगिता को दबाती है और वास्तव में प्रतियोगिता का अभाव ही भारत की राजनीतिक अवनति, और विदेशी जातियों द्वारा उसके पराभूत होते रहने का कारण सिद्ध हुआ है।'' निराला भी इसी तरह का विचार रखते हैं और नवीन परिदृश्य में जाति प्रथा को असंगत एवं अनुपयोगी बताते हैं। किन्तु जिस तरह का विद्रोह इसके खिालफ उठ खड़ा हुआ था और जाति तोड़क मण्डलों की स्थापना हो रही थी, उसे निराला उचित नहीं समझते -'' जाति - पाँति तोड़क मण्डल'' को किसी हद तक सार्थक समझता यदि वह ''जाति-पाँति योजक मण्डल'' होता। '' तोड़'' ही हिन्दुस्तान को तोड़ रहा है। देश या जाति में आवश्यकता उस समय उठती है, जब किसी भाव, संगठन या कृति का अभाव होता है।''[२]

---

१. वर्तमान हिन्दू - समाज, निराला रचनावली-६ पृ० ११०
२. वर्णाश्रम - धर्म की वर्तमान स्थिति, वही पृ० १००

विवेकानन्द ने क्रमशः जातियों के प्रभुत्व या शासन का वर्णन करते हुये भावी युग को शूद्र शासन के प्रभाव का काल माने के लिए कहा था। निराला उन्हीं की बात को अपने निबन्ध का विषय बनाते हैं,' स्वामी विवेकानन्दजी ने बड़े जोरदार शब्दों में कहा है-'' ऐ भारत के उच्चवर्ण वालों, तुम्हें देखता हँ तो जान पड़ता है, चित्रशाला में तस्वीरें देख रहा हूँ। तुम लोग छायामूर्तियों की तरह विलीन हो जाओ, अपने उत्तरधिकारियों को (शूद्रो को) अपनी तमाम विभूतियाँ दे दो नया भारत जग पड़े।''[१] इसी निबन्ध में आगे लिखते हैं,' स्वामी विवेकानन्द के कथनानुसार उनमें सेवा करते अपार धैर्य और अविचल श्रद्धा के भाव भर गये है। भारत अभी तक पराधीन है, जब तक वे नहीं जागतीं। उनका कर्म के क्षेत्र में उतरना भारत का स्वाधीन होना है।''[२] इस प्रकार शूद्र शक्ति के उत्थान और उसके परिणाम के सम्बन्ध में निराला द्वारा प्रत्यक्ष तौर पर विवेकानन्द विचार व्यक्त करना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इससे उनके ऊपर विवेकानन्द का प्रभाव प्रत्यक्ष, सजीव एवं स्पष्ट होकर व्यक्त हो जाता है।

'वर्णाश्रम - धर्म की वर्तमान स्थिति ' निबन्ध मे निराला ने क्रमशः इसी शूद्र शक्ति के उत्थान की बात की है। इन्हीं की अजेय शक्ति भविष्य में भारत को स्वतन्त्र करेगी।''[३] वही आगे इसकी विस्तृत व्याख्या लिखते हैं,'' इस समय देश की जो स्थिति है, देश में शूद्र के सिवा दूसरी और कोई जाति नहीं। प्रकृति ने दृप्त हिन्दू- समाज की जैसी मार, उसके दर्प की प्रतिक्रिया के रूप से दी है, उससे अब सब लोग बराबर जमीन पर आ गये हैं। एक शूद्र से एक ब्राहमण का कर्म से कोई फर्क नहीं रह गया, और शासकों की निगाह में भी इस समय का प्रचलित भेद गुणजन्य कोई महत्व नहीं रखता।........... यदि वे लोग समाज को विवेक के अनुसार कायम रखते तो कुछ उलझने सुधर जाय, और बराबर जमीन पर रहकर अपने-अपने गुणों तथा कर्मो के अनुसार एक बार सब लोगों को तरक्की करने के समान अधिकार प्राप्त हों, समाज का आमूल संस्कार हो जाय।''[४]

---

१. वर्तमान हिन्दू समाज , निराला रचनावली -६ पृ० ११०
२. वही पृ० ११४
३. निराला रचनावली -६ पृ० १०८
४. सामाजिक व्यवस्था, वही पृ० ३०३

शूद्रों के उत्थान की और सुस्पष्ट व्याख्या करते हुये निराला लिखते है,' भारतवर्ष की तमाम सामाजिक शक्तियों का यह एकीकरण -काल शूद्रों और अन्त्यजों के उठने का प्रभात काल है। प्रकृति की यह कैसी विचित्र क्रिया है, जिसने युगों तक शूद्रों से ऊपर तीन वर्णों की सेवा करायी और इस तरह उनमें एक शक्ति का प्रवाह भरा और अब अनेकानेक विवर्तनों के भीतर से गुजरती हुई, उठने के लिए उन्हें एक विचित्र ढंग से मौका दिया है। भातरवर्ष का यह युग शूद्र शक्ति के उत्थान का युग हैं और देश का पुनरुद्धार उन्हीं के जागरण की प्रतीक्षा कर रहा है।''[१] इसी बात को और अधिक तर्कसंगत एवं स्वाभाविक बताते हुये उसे क्रमशः विवेचित किया है,' जो लोग प्रतिभाशाली थे, वे जानते थे कि भविष्य में जाति की बागडोर ब्राह्मण - क्षत्रियों के हाथ में नहीं रह सकती। क्योंकि यह जातीय समीकरण का युग है। अब सब जातियाँ सम्मान और मर्यादा में बराबर हैं जो सदियों से सेवा करती आ रही है। उन्हीं जातियों में यथार्थ मनोबल है जब तक उनका उत्थान न होगा, भारत का उत्थान नहीं हो सकता। देश के लिए सच्चे सेवा भाव से ये ही जातियाँ काम कर सकती हैं।''[२] इस तरह लगता है कि विवेकानन्द ने इस सम्बन्ध में जो सूत्र दिया, निराला ने उसी की कई ढंग की व्याख्या कर दी, जो उन पर व्यापक प्रभावों को अभिव्यंजित करता है।

निराला का नारी से सम्बन्धित दृष्टिकोण कई निबन्धों में व्यक्त हुआ है, जिस पर विवेकानन्द का प्रभाव भी दिखलाई पड़ता है। विवेकानन्द कहते हैं कि 'स्त्रियों की अवस्था को बिना सुधारे जगत के कल्याण की कोई सम्भावना नहीं है। पक्षी के लिए एक पंख से उड़ना असम्भव है।'' निराला भी सिद्धान्ततः इससे पूर्ण सहमत हैं। वे लिखते हैं ,' हमारे देश के लोग इस समय आधे हाथों से काम करते हैं। उनके आधे हाँथ निष्क्रिय हैं जब स्त्रियों के भी हाथ काम में लग जायेंगे, कार्य की सफलता तभी हमें प्राप्त होगी। अभी जो काम स्त्रियाँ करती हैं, वह काम नहीं संस्कारों का प्रवर्तन है। इससे मेधा और नष्ट होती है। ''[३] आधुनिक परिप्रेक्ष्य में स्त्रियों के परावलम्बन को हटाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता पर निराला अधिक जोर देते हैं। इसके लिए प्रथम आवश्यक साधन है शिक्षा। हमारे देश में स्त्रियों की शिक्षा के अभाव से जैसी दुर्दशा हो रही

---

१. वर्णाश्रम -धर्म की वर्तमान स्थिति, निराला रचनावली -६ पृ० १०३
२. हिन्दुओं का जातीय संगठन वही पृ० ३७३-७४
३. बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ वही पृ० १२१

है, उसकी वर्णना असम्भव है। उनका लांछन देखकर पाषाण भी गल जाते है। प्रतिदिन .... घर की छोटी सी सीमा में बँधी हुई स्त्रियाँ आज अपने अधिकार, देश तथा समाज के प्रति अपना कर्तव्य सब कछ भूली हुई हैं । इनके साथ जो पाशविक अत्याचार किये जाते हैं, उनका कोई प्रतिकार नहीं होता। वे चुपपाच आँसुओं को पीकर रह जाती है। उनका जीवन एक अभिशप्त का जीवन बन रहा है ।........... शिक्षा से यह सब दूर होगा । देवियाँ अपना दिव्य रूप पहचानेंगी ।''[१] विवेकानन्द का विचार भी यही सूत्र रूप में है,'' पर हमारा हस्तक्षेप करने का अधिकार केवल शिक्षा का प्रचार कर देने तक ही सीमित है। हमे नारियों को ऐसी स्थिति में पहुँचा देना चाहिए, जहाँ वे अपनी समस्या को अपने ढंग से स्वयं सुलझा सकें । '' अवदशा और समाधान का एक ही दृष्टिकोण निराला और विवेकानन्द में मिलता है । निराला उसी विचार सूत्र की व्याख्या करते हुये ही आगे एक निबन्ध 'समाज और महिलाएँ' में लिखते हैं - ' महिलाओं की स्वतन्त्रता ही उनके जीवन की सब दिशाओं का विकास करेगी। हमें सिर्फ उनकी स्वतन्त्रता का स्वरूप बतलाना है और यह भी सत्य है कि पुरुषों के निरादर करने पर भी स्त्री शक्ति का विकास रुक नही सकता न वह अब तक कहीं रुका है।.......... मूर्ख, पीड़ित और पराधीन माता से तेजस्वी, स्वतन्त्र और मेधावी बालक - बालिकाएँ नही पैदा हो सकतीं, जिससे राष्ट्र का सर्वांग जर्जर रह जाता है ।''[२]

भारतीय महिलाओं का आदर्श पार्वती, दमयन्ती, सीता आदि को बताते हुये विवेकानन्द आधुनिक युग में नारी के केन्द्रीय भाव में माँ के रूप की बड़ी प्रशंसा की हैं, निराला भी इन रूपों की ही विवेचना करते है,' भारतीय नारी की वर्तमान जागृति मातृशक्ति की दुर्गा-मूर्ति, बहन की रण विजयिनी शक्ति इन प्रश्नों का पर्याप्त उत्तर देगी ।''[३] निराला पुरुषों की कुण्ठा और संकीर्णता को स्त्रियों की पराधीनता का मूल कारण मानते हैं -' हम लोग स्वयं जिस तरह गुलाम हैं, उसी प्रकार अपनी स्त्रियों को भी गुलाम बना रखा है, बल्कि उन्हें दासों की दासियाँ कर रक्खा है । इस महादैन्य से उन्हें शीघ्र मुक्ति मिलनी चाहिए ।''[४] और निराला इसके लिए ' महान्

---

१. बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ , निराला रचनावली पृ० १२१
२. समाज और महिलाएँ , वही पृ० ३६१
३. हिन्दू - अबला, वही पृ० २६२
४. बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ वही पृ० १२१

विप्लव ही हर एक का मूल है ।''[1] का दृष्टिकोण आपनाकर स्त्रियों को राष्ट्र के निर्माण में सक्रिय रूप से लगा सकते हैं । 'राष्ट्र और नारी' निबन्ध में निराला ने स्त्रियों को मौलिक कल्पना प्रदान किया है । 'यदि एक ही शब्द में स्वाधीनता की परिभाषा की जाय तो वह ज्ञान ही होगा । यह ज्ञान राशि भी यदि हर तरफ से हमारे राष्ट्र की नारियों को पराश्रित कर रखे तो उनके हृदय से निकला हुआ स्वतन्त्रता का स्रोत भी पर- राष्ट्र - सागर - वाही होगा, उसका प्रवाह कभी भी अपने ज्ञान के महासागर की ओर नहीं हो सकता । यह दार्शनिक सत्य है । हमारा अभिप्राय यह है कि हम अपने राष्ट्र की महिलाओं के लिए चाहते हैं कि वे दूसरों को अपनी आँखों से देखें, अपने को दूसरों की आँखों से नहीं ।''[2] इस प्रकार निराला का दृष्टिकोण परानुवाद एवं परानुकरण-परक न होकर भारत की अपनी मौलिकता और संस्कृति बोध से जुड़ा विचार भी विवेकानन्द की विचारधारा से जुड़ जाता है ।

---

१. समाज और स्त्रियाँ , निराला रचनावली -६ पृ० ४१
२. राष्ट्र और नारी, वही पृ० २७५

उपसंहार

उपसंहार

निराला की सम्पूर्ण रचनाओं का विशद अवलोकन एवं परीक्षण करने के उपरान्त विदित होता है कि उनके रचना- संसार पर विवेकानन्द का अद्वितीय प्रभाव पड़ा । तीन दशक से अधिक के बंगाल- प्रवास ने निराला के अन्तः करण को पूर्णतः आच्छादित कर वेदान्तवादी बना दिया । उनके अन्दर की विचारधारा ने एक प्रवाह का रूप ग्रहण किया, जो जीवन- प्रर्यन्त रहा। यह कभी भी बन्द अवरुद्ध नहीं होता, वेग न्यूनाधिक्य अवश्य होता रहा । उनके साहित्य की हर एक विधा पर इसकी स्पष्ट छाप देखी जा सकती है । निराला की कविताओं, उपन्यासों, कहानियों निबन्धों और यहाँ तक कि आलोचनाओं में भी स्वामी विवेकानन्द की वाणी सुनी जा सकती है। विवेकानन्द की सत्य,सनातन, शाश्वत वाणी का सम्यक विवेचन करते हुये विचारधारा के कुछ बिन्दुओं के रूप में देखने पर निराला की रचनाओं पर उसकी मौलिक परिणति देख सकते हैं ।

निराला का साहित्य विविधमुखी और युगापेक्षी हैं। उनकी रचनाओं में सम्पूर्ण युग बोलता है। उनके काव्य साहित्य में आध्यात्मिक विचारों का एक अखण्ड प्राणवान स्रोत प्रवाहित है, जिसके मूल में निराला के आदर्श विवेकानन्द हैं । फलतःनिराला भारतीय संस्कृति के निष्ठावान चारणों के प्रतिनिधि बन जाते हैं, जिन्होंने समय-समय पर इहलोक में रहकर परलोक के विश्व के बारे में स्वानुभूत एवं गहरा चिन्तन प्रस्तुत किया है उनकी आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता के अंकुर जब वे - 'श्रीरामकृष्ण मिशन' में थे, तभी पनपने लगे थे । मिशन की ही पत्रिका ' समन्वय' में एक दार्शनिक के नाम से कुछ लेख प्रकाशित हुये, जिस पर विवेकानन्द के दर्शन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। वेदान्त दर्शन की उत्प्रेरणा- स्वरूप ही उनकी कविताओं में अनन्त के प्रति जिज्ञासा और जीव, जगत, ब्रह्म, प्रकृति, माया, मुक्ति आदि के सम्बन्ध में व्यापक विचारणा पाई जाती है। दार्शनिक अवधारणा का उत्स विवेकानन्द का दर्शन ही है, जिसको निराला ने साहित्यिक धरातल पर अवस्थित किया ।श्रीरामकृष्ण परमहंस, स्वामी प्रेमानन्द, स्वामी माधवानन्द, श्री अखण्डानन्द और स्वामी सारदानन्द सभी विवेकानन्द की विचारधारा के प्रतिनिधि हैं । इन सभी का व्यापक सन्देश निराला के साहित्य का मेरुदण्ड है । निराला की कई कविताएँ सीधे- सीधे दार्शनिक विवेचना करती हैं, ' पंचवटी प्रसंग' को तो हम दर्शन का संक्षिप्त इतिहास मान सकते हैं ।

निराला की कविताओं का मुख्य स्वर मानवतावादी है । दलितों, भूखों, भिक्षुकों, किसानों और श्रमिकों के प्रति उनके अन्तर्मन में विशेष प्रेम था। मानव को केन्द्र में रख कर ही निराला का काव्य सृजन होता है । मानवता का अपमान उन्हें असह्य था और दीन-हीन मानवों पर करुणा करने का सन्देश उनकी कविताओं का ध्येय था । विवेकानन्द के नववेदान्त और उनका मानवतावाद निराला की मानवीय भावना का उत्प्रेरक है । मानव के प्रति करुणा, मानव से प्रेम और मानव की सेवा निराला के साहित्य का केन्द्रीय भाव है। सम्पूर्ण विश्व को प्रेम के उदात्त धरातल पर अवस्थापित करना उनका स्वप्न था, जिसे वे साकार देखना चाहते थे । इसी विश्वव्यापी भावना के तहत निराला बार-बार कविताओं में जग के कल्याण और सुख का आवाहन करते हैं ।

निराला की राष्ट्रीयता के पीछे उनका आध्यात्मिक चिन्तन, एवं विवेकानन्द के विचारों का प्रभाव परिलक्षित है। निराला विवेकानन्द से अत्यधिक प्रभावित थे, जिन्होंने देश को सुन्दर से सुन्दरतम बनाने में बहुत बड़ा कार्य किया । निराला भी देश को सुन्दर से सुन्दरतम बनाना चाहते थे । विवेकानन्द के लिए उनका देश ही सर्वस्व था, निराला के लिए भी देश ही सर्वस्वथा। निराला के लिए भी देश ही सभी गतिविधियों का केन्द्र है । उनकी अनेकानेक कविताएँ राष्ट्रीयता के रंग से रँगी हुई है । राष्ट्रीय चेतना के अभाव और उसे दूर करने के उपाय, स्वाधीनता से सम्बन्धित दृष्टिकोण और स्वतन्त्रता का व्यापक भाव सभी के मूलाधार स्वामी विवेकानन्द हैं ।

निराला की कविताओं में सामाजिकता का उचित समावेश हुआ है । विवेकानन्द स्थायी समाज के सुधारक थे, वे आदर्श की परिकल्पना को बेहतर यथार्थ के लिए आवश्यक समझते थे । निराला भी इसी भावना का परिपाक करते दिखाई देते हैं । इसीलिए विवेकानन्द की तरह निराला के काव्य में खण्डन की प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती । सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा का सकरात्मक चिन्तन निराला की कविताओं में भी मुखरित हुआ है । जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं का उत्सर्जन कर मौलिक दृष्टिकोण को ग्रहण कर लेना ही सामाजिक संरचना को समरसता प्रदान कर सकता है ।

निराला का काव्य कभी भी विवेकानन्द के रचनात्मक आदर्शों से अवनत नहीं हुआ। कविताओं के रचनाकाल का नैरन्तर्य सर्वेक्षण करने पर यह बात सिद्ध होती है । उत्तरवर्ती रचनाओं

के दौर में विवेकानन्द की विचारधारा से परे हटने की बात को स्वीकार नहीं किया जा सकता। विचाराधारा की व्यापकता के कारण निराला कविताओं में दर्शन की स्पष्ट विवेचना है और वे बार-बार अद्वैतवाद की भावना का संप्रसार करते हैं । कवि बराबर इसी सन्देश को दुहरा नहीं सकता था, फिर इसका चरम भी तो निराला ने स्पर्श कर लिया था । इसके बाद राष्ट्रीयता और देश प्रेम की विचारधारा को सृजनात्मक भावबोध प्राप्त हुआ, जिसे अनेकों कविताओं और प्रार्थनाओं में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । सामाजिकता एवं मानवतावाद की धारा निराला की कविता-कामिनी को बहुआयामी धरातल प्रदान करता है । यह कभी अन्तर्मुखी होता है तो कभी बहिर्मुखी, पर बन्द कभी नहीं होता । इस तरह निराला के काव्य को किसी वाद से बँधकर नही देखा जा सकता । उसमें इतनी व्यापकता है, इतनी विशालता है, इतनी विविधता है कि वहाँ' वाद' की संकीर्णता को कोई स्थान नहीं है ।

निराला की गद्य रचनाएँ भी उनके ऊपर विवेकानन्द के व्यापक प्रभाव को अभिव्यंजित करती हैं । विवेकानन्द के प्रत्यक्ष प्रभाव का निर्धारण भी इन्हीं के सन्दर्भो से जोड़ने पर किया गया है । निराला के उपन्यासों में विवेकानन्द के सन्देशों का प्रकारान्तर प्रभाव फलीभूत हुआ है । संन्यासी पात्रों के प्रति विशेष आकर्षण, नायकों का बहुआयामी स्वरूप और व्यापक चिन्तन, वातावरण एवं परिस्थिति की संकल्पना और गरिमामय उद्देश्य सभी मिलकर विवेकानन्द की विचाराधारा को ही परिपोषित करते हैं । 'चोटी की पकड़' उपन्यास स्वामी विवेकानन्द को ही समर्पित किया गया हैं ।

विवेकानन्द की विचार धारा की सम्पूर्ण छाप निराला की कहानियों में देखी जा सकती है। 'भक्त और भगवान' एवं 'स्वामी सारदानन्द महाराज और मैं','अर्थ' कहानियों को आत्मघटित कहानी भी स्वीकार किया जाता है, जहाँ विवेकानन्द दर्शन का निरूपण हुआ है । कई अन्य कहानियों को भी विचारधारा ने मौलिक आयाम देने का कार्य किया है। निराला की आलोचनाओं पर भी विवेकानन्द के सन्देशों की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती हैं साहित्य की समतल भूमि पर भी अद्वैतवाद की स्थापना का प्रयास करते हुये निराला साहित्यजन्य समस्या को मानव मात्र की समस्या से जोड़ देते हैं और उसके समाधान को वेदान्त की मौलिक उद्भावना से सम्पृक्त करते हैं।

निराला के निबन्ध विवेकानन्द की विचार धारा की तेजस्विता, ऊर्जस्विता, ओजस्विता को उसी रूप में व्यक्त करते हैं। कहीं-कहीं तो ऐसा लगता है कि निराला का निबन्ध विवेकानन्द के भाषणों का अनुवाद हैं। 'सुधा' के सम्पादकीय नोट्स या टिप्पणी इस परिप्रेक्ष्य में विशेषतः उल्लेखनीय है; वहाँ पर निराला का समेकित व्यक्तित्व मुखर हो उठा है और उनकी भाषा, शैली आदि में मौलिक शक्ति का आभास मिलता है, जिसकी चरम परिणति 'राम की शक्तिपूजा' के रूप में देखी जा सकती है। दार्शनिक निबन्धों प्रवाह, बाहर-भीतर शक्ति परिचय आदि निबन्धों में स्पष्ट तौर पर विवेकानन्द के अद्वैत वादी विचारों का समर्थन करते हुये निराला 'वेदान्त' को आधुनिक समय का एकमात्र रास्ता घोषित करते हैं। तत्कालीन वातावरण में इससे सहज, सरल एवं मानवीय कोई समाधान नही हो सकता था, जो धार्मिक समन्वय, मानवतावाद, विश्वप्रेम, राष्ट्रीयता एवं सामाजिक व्यवस्था का नवीनीकरण कर उस की स्थापना कर सकता हो।

स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा इतनी व्यापक है कि जीवन का प्रत्येक पक्ष इसमें प्रतिबिम्बित होता है। धर्म और दर्शन की विराट विवेचना है ,इसके माध्यम से मानव को अपनी संकल्पना भी प्राप्त हुई। मानवीय सेवा और करुणा को विवेकानन्द की विचारधारा का मेरूदण्ड कहा जा सकता है इन तत्वों के साथ ही साथ देश प्रेम और राष्ट्रीय संचेतना का उद्घोष विचारधारा को अधिक सजीव एवं प्राणवन्त कर देता है। देश का सर्वतोमुखी विकास ही विवेकानन्द का लक्ष्य था। वे सम्पूर्ण धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियों और विडम्बनाओं का त्याग कर देशवासियों को कर्मशीलता के लिए उत्प्रेरित करते है वे भारतवर्ष को परानुवाद परानुकरण एवं परापेक्षा के स्थान पर अपनी गौरवपूर्ण संस्कृत के उदात्त तत्वों की अभिनव व्याख्या के माध्यम से संघर्षो से जूझने का संकल्प प्रदान कर विचार धारा को नवीन आयाम प्रदान करते हैं। विवेकानन्द भारतवर्ष को एक सजीव, सचेतन प्राणी के रूप में स्वीकार करते हैं।

निराला की रचनाओं पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव इतना सघन और व्यापक है कि वे विवेकानन्द का सारा वर्क हजम कर लेते हैं। वे जब इस तरह बोलते है तो कहते है कि समझ

लो विवेकानन्द बोल रहे हैं । निराला के अचेतन मन पर विवेकानन्द का प्रभाव बार-बार चेतन साहित्य में अभिव्यक्त दिखाई पड़ता है । वेदान्त को लोक संग्रह से जोड़ देने की अभिप्रेरणा निराला को विवेकानन्द से ही प्राप्त होती है । वेदान्त और शक्ति का अन्तर्प्रवाह निराला की कविताओं में सदैव ही होता रहता है । प्रारम्भिक काव्य में दर्शन का उचित विस्थापन होता है । इस क्षेत्र का चरम स्पर्श करने के बाद निराला का कवि मन अर्चना और आराधना की और मुड़ जाता है; जहाँ पर ईश्वर के प्रति अनन्य समर्पण का भाव व्यक्त करते हुये निराला सम्पूर्ण जगत के कल्याण की कामना करते है ।

निराला की रचनाओं पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव दिखलाते हुये विवेकानन्द की विचारधारा के मूलभूत तत्वों की पुनरावृत्ति होना अवश्ंयभावी बन जाता है। विराट विचारधारा को निराला की कविताओं, उपन्यासों, कहानियों, आलोचनाओं और निबन्धों में अनुसन्धान के क्रम में देखने पर कई बार रूपायित करना आवश्यक प्रतीत होता है। इसके अभाव में प्रभाव विवेचना के जटिल, अस्पष्ट एवं दुरूह हो जाने की सम्भावना थी ।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि स्वामी विवेकानन्द के सन्देशों और विचारधारा ने निराला को बहुत गहरे रूप में प्रभावित किया । साहित्य सृजन की सभी विधाओं पर इस प्रभाव को बहुत स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है । विशेष रूप से कविताओं और निबन्धों में तो यह अपने पारदर्शी स्वरूप में दिखाई देता है । कई कविताओं में विवेकानन्द प्रत्यक्ष हो उठे हैं,और अनेकानेक निबन्ध विवेकानन्द की विचारधारा के भावान्तरण दिखाई पड़ते हैं । वस्तुतः निबन्धों और कविताओं पर विवेकानन्द का इतना व्यापक प्रभाव है कि उस पर स्वतन्त्र रूपसे कार्य किये जाने की आवश्यकता है । 'सुधा' की सम्पादकीय टिप्पणियों को हम परिव्राजक रूपधारी स्वामी विवेकानन्द के भाषणों से जोड़कर देख सकते हैं । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विवेकानन्द के विचारों को हिन्दी साहित्य में पूर्णतः प्रतिष्ठित कर सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने उन्हें ' वेदान्त - केशरी' से ' साहित्य-केशरी' बना दिया ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) आधार ग्रन्थ

१. निराला रचनावली, भाग - १ से भाग ८ तक,
सम्पादक-नन्द किशोर नवल
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८३

२. अनामिका
३. परिमल
४. गीतिका
५. अनामिका- नवीन
६. तुलसीदास
७. कुकुरमुत्ता
८. अणिमा
९. बेला
१०. नये पत्ते
१०. अपरा
१२. अर्चना
१३. आराधना
१४. गीत-गुंज
१५. सान्ध्य काकली
१६. अप्सरा
१७. अलका
१८. प्रभावती
१९. निरुपमा
२०. चोटी की पकड़
२१. कुल्ली भाट
२२. बिल्लेसुर बकरिहा
२३. काले कारनामें
२४. लिली
२५. सखी
२६. सुकुल की बीवी
२७. देवी
२८. चतुरी चमार
२९. प्रबन्ध- पद्म
३०. प्रबन्ध-प्रतिमा
३१. चाबुक
३२. चयन
३३. संग्रह

३४. युगनायक विवेकानन्द भाग -१ से भाग ३ तक,
लेखक - स्वामी गम्भीरानन्द
प्रकाशक: स्वामी ब्रहमस्थानन्द, रामकृष्ण आश्रम - धन्तौली, नागपुर,
तृतीय संस्करण

३५. विवेकानन्द साहित्य भाग १ से भाग १० तक
प्रकाशक- स्वामी मुमुक्षानन्द
प्रकाशन : श्रीरामकृष्ण आश्रम धन्तौली, नागपुर
तृतीय संस्करण - १९९३

(ख) सहायक ग्रन्थ

१. निराला की साहित्य साधना, भाग १ से भाग ३ तक
लेखक राम विलास शर्मा
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण- १९६९ ई०

२. विवेकानन्द चरित- सत्येन्द्रनाथ मजूमदार
श्रीरामकृष्ण आश्रम धन्तौली, नागपुर - २९ संस्करण, १९४८

३. शिक्षा, संस्कृति और समाज स्वामी विवेकानन्द, ग्रन्थमाला संख्या-६
प्रभात प्रकाशन, दिल्ली , प्रथम संस्करण

४. जाति, संस्कृति और समाजवाद स्वामी विवेकानन्द, श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर
प्रकाशक : स्वामी भाष्करेश्वरानन्द, अध्यक्ष धन्तौली, प्रथम संस्करण

५. निराला और नवजागरण डॉ० राम रतन भटनागर
साथी प्रकाशन, सागर, प्रथम संस्करण- १९६५

६. निराला काव्य में मानव - मूल्य और दर्शन डॉ० देवेन्द्रनाथ त्रिवेदी
सुलभ प्रकाशन, लखनऊ प्रथम संस्करण

७. महाप्राण निराला गंगा प्रसाद पाण्डेय
साहित्यकार संसद, प्रयाग , प्रथम संस्करण

८. महाकवि निराला- विश्वम्भरनाथ उपाध्याय प्रथम संस्करण
सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा २०१० वि०

९. निराला: व्यक्तित्व एवं कृतित्व- डॉ प्रेमनारायण टण्डन प्रथम संस्करण

१०. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास- सम्पादक डा० नगेन्द्र भाग- दस
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०२८ वि० प्रथम संस्करण

११. निराला: अतंस्तात्विक अध्ययन- डॉ० राम प्रवेश सिंह
भारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण

१२. निराला- काव्य में सांस्कृतिक चेतना-जगदीश चन्द्र
अभिनव प्रकाशन, प्रथम संस्करण १९७९ ई०

१३. निराला-काव्य में दार्शनिक चेतना- अवधेश नारायण मिश्र 'दीपक' प्रथम संस्करण

१४. निराला की सामाजिक चेतना -डॉ० सुरेश आचार्य प्रथम संस्करण

१५. निराला का गद्य साहित्य - डॉ०निर्मल जिन्दल
आर्य बुक डिपो नई दिल्ली, प्रथम संस्करण इलाहाबाद- १९७१ई०

१६. निराला: आत्म-हन्ता आस्था - दूधनाथ सिंह नीलाभ
प्रकाशन, प्रथम संस्करण- १९९३ ई०

१७. निराला - राम विलास शर्मा, पी०पब्लि० हा० दिल्ली १९५९ ई०

१८. महाकवि श्री निराला' अभिनन्दन ग्रन्थ'- सम्पादक- ऋषि बरुआ- १९५३ ई०

१९. निराला स्मृति ग्रन्थ- ज्ञानालोक प्रकाशन सम्पादक- अखिलेश मिश्र आदि

२०. निराला साहित्य सन्दर्भ- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
प्रकाशक - सुधाकर पाण्डेय, प्रथम संस्करण- १९७३

२१. निराला काव्य का अध्ययन- भगीरथ मिश्र,
राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण १९६५

२२. ज्ञान योग- स्वामी विवेकानन्द, श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर

२३. प्रेम योग- स्वामी विवेकानन्द, श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर १९३६

२४. क्रान्तिकारी कवि निराला- बच्चन सिंह- प्रथम संस्करण

२५. भारत में विवेकानन्द - अनु० निराला , श्रीरामकृष्ण आश्रम नागपुर १९४८ ई०

२६. पत्रिकाएँ १- समन्वय २- विवेक ज्योति (विशेषांक)